# भारतीय साहित्य

(आगरा विश्वविद्यालय कन्हैयालाल मुंशी हिन्दी विद्यापीठ का मुखपत्र)

अक्टूबर १९५७

[ वर्ष–२ : अंक–४ ]

सम्पादक

डा० विश्वनाथ प्रसाद

संचालक

आगरा विश्वविद्यालय कन्हैयालाल मुंशी हिन्दी विद्यापीठ आगरा

प्रकाशक

**डा० विश्वनाथ प्रसाद**

संचालक, आगरा विश्वविद्यालय कन्हैयालाल मुंशी हिन्दी विद्यापीठ आगरा

मुद्रक

एच० के० कपूर, **आगरा यूनीवर्सिटी** प्रेस, आगरा

**[ प्रकाशन तिथि, मार्च १९५८ ई० ]**

# विषय-सूची

# भारतीय साहित्य

**आगरा विश्वविद्यालय क० मुं० हिन्दी विद्यापीठ का मुखपत्र**

वर्ष २ | अक्टूबर १९५७ | अंक ४

# आगरा विश्वविद्यालय क० मुं० हिन्दी विद्यापीठ का वार्षिक विवरण [१९५६–५७ ई०]

इस विद्यापीठ की स्थापना को हम आगरा विश्वविद्यालय के इतिहास में एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण घटना कह सकते हैं। यह शुभ कार्य सम्पन्न हुआ—१४ दिसम्बर, १९५३ ई० को। इसका उद्‌घाटन किया विश्वविद्यालय के तत्कालीन कुलपति श्री कन्हैयालाल माणिकलाल मुंशी ने और इसका शिलान्यास किया उत्तर प्रदेश के तत्कालीन मुख्यमंत्री तथा भारत-सरकार के वर्तमान गृहमंत्री पंडित गोविन्द वल्लभ पन्त ने।

विश्वविद्यालय ने इस विद्यापीठ की स्थापना के द्वारा प्रथम-प्रथम अपनी कोरी परीक्षाबद्ध वृत्त की सीमा के बाहर निकलकर उच्चस्तरीय प्रशिक्षण के उज्ज्वल आदर्श की ओर ठोस कदम उठाया और राष्ट्रभाषा हिन्दी तथा भाषा-विज्ञान के स्नातकोत्तर अध्ययन-अध्यापन की योजना को अपनाकर हमारे राष्ट्रीय जीवन की अनेकरूपता में एकरूपता और एकरसता की ओर अग्रसर होने के लिए एक नवीन प्रशस्त पथ का निर्माण किया। मनुष्य की समाजिक व्यवस्थाओं में भाषा का सर्वप्रमुख और अग्रगण्य स्थान है। इसलिए हमने जिस भाषा को अपने देश की राजभाषा के रूप में चुना है, उसमें ऐसी क्षमता का विकास आवश्यक है कि वह समस्त भारतीय समाज का प्रतिनिधित्व कर सके और संसार की भाषाओं में सम्मान का स्थान प्राप्त कर सके। यह तभी संभव है जब कि एक ओर अपने देश की समृद्ध प्राचीन भाषा संस्कृत से, दूसरी ओर विदेशों की प्रमुख भाषाओं से, तीसरी ओर अपने यहाँ की अन्य वैभवशालिनी भगिनी भाषाओं

से और चौथी ओर साधारण जनवर्ग की लोक-भाषाओं से शक्ति अर्जित करके हमारी हिन्दी ऐसे उदार और व्यापक धरातल पर प्रतिष्ठित की जा सके, जिसमें हमारे देश और युग की सभी चिन्ताधाराओं का समन्वयन और आत्मीयकरण हो सके। इसी महान् उद्देश्य को सामने रखकर जुलाई १९५६ ई० से हम ने विद्यापीठ में विधिवत् अध्ययन-अध्यापन आरम्भ किया। हमारे लिए यह बहुत बड़े गौरव की बात है कि हिन्दी के साथ पूर्व-पश्चिम और उत्तर-दक्षिण की हिन्दीतर भाषाओं को परस्पर निकट लाकर एक अखिल भारतीय स्तर पर उनके सद्भावपूर्ण समन्वित अध्ययन और अनुशीलन की साधना में संलग्न हमारा यह विद्यापीठ देश में अपने ढंग की पहली और अभी तो एकमात्र संस्था है।

हमारे बी० लिट्० के पाठ्यक्रम में हिन्दी भाषा-भाषियों के लिए संस्कृत और अँग्रेजी के साथ कम से कम किसी एक हिन्दीतर भाषा और इसी प्रकार हिन्दीतर भाषा-भाषियों के लिए हिन्दी भाषा का अनिवार्य अभ्यास तथा उन सबके समानान्तर साहित्यिक आन्दोलनों, प्रवृत्तियों और प्रेरणाओं के तुलनात्मक अध्ययन एवं अनुशीलन का आयोजन है। हमारी एम० लिट्० कक्षा में बी० लिट्० और एम० ए० परीक्षा में उत्तीर्ण विद्यार्थी ही सम्मिलित हो सकते हैं। उसके पाठ्यक्रम में भाषा-विज्ञान के अध्ययन का आयोजन है, जिसके द्वारा विद्यार्थियों को विविध भाषाओं और बोलियों के ऐतिहासिक विकास और उनके मूल तत्वों के वैज्ञानिक विश्लेषण की प्रणालियों का ज्ञान कराया जाता है। ध्वनिविज्ञान की शिक्षा के लिए प्रयोगशाला की भी व्यवस्था है। भाषा और बोलियों की पृष्ठभूमि में जन-चेतना के विविध स्वरूपों, प्रक्रियाओं तथा सामाजिक व्यवहारों के सजीव अध्ययन का अवसर और योग्यता प्रदान करना हमारे भाषा-वैज्ञानिक अध्ययन और अनुशीलन का प्रधान लक्ष्य है। पी-एच० डी० और डी० लिट्० के शोध-निबंधों के अनुशीलन के विषय भी भारतीय भाषाओं और हिन्दी तथा हिन्दीतर भाषाओं के साहित्य के तुलनात्मक अध्ययन से ही संबंधित रहते हैं। इसके अतिरिक्त लोकवार्ता-साहित्य का अध्ययन और अनुशीलन तथा नवीन वैज्ञानिक प्रणालियों के अनुसार प्राचीन हस्तलिखित ग्रंथों का पाठशोध—ये हमारे अनुशीलन और अनुसंधान के विशेष क्षेत्र हैं।

हमारे कार्यकाल का अभी यह दूसरा ही वर्ष है। विद्यापीठ ने इस वर्ष अपने सभी क्षेत्रों में सन्तोषजनक प्रगति की है। प्रसन्नता की बात है कि हमारे विद्यापीठ का विद्याभवन हमारे उपकुलपति महोदय श्रद्धेय श्री कालिकाप्रसाद जी भटनागर के सत्प्रयासों के फलस्वरूप पूर्ण हो गया और अब हम अपने पठन-पाठनादि कार्यक्रमों का संचालन अपने ही भवन में कर रहे हैं। भवन का उद्घाटन १७ मई १९५७ ई० को उत्तर प्रदेश के तत्कालीन राज्यपाल तथा विश्वविद्यालय के कुलपति श्री कन्हैयालाल माणिकलाल मुंशी द्वारा सम्पन्न हुआ। मुंशी जी की सत्प्रेरणाओं और सद्भावनाओं से यह विद्यापीठ प्रारम्भ से ही अनुप्राणित होता रहा है।

हमारे नये कुलपति श्री वी० वी० गिरि ने भी हमारे विकास में काफी दिलचस्पी दिखाई है। हमें उनसे भी वैसे ही आश्रय की आशा है। विद्यापीठ की परामर्श-समिति में इस वर्ष यहां के लब्ध-प्रतिष्ठ साहित्यकार आदरणीय बाबू गुलाबराय जी की नियुक्ति हुई है। उनके परामर्श का लाभ प्राप्त करके हम विशेष उपकृत होंगे। हमें इसका परम आनन्द है कि हमारे विश्वविद्यालय ने उनके सम्मानार्थ डी० लिट् की उपाधि प्रदान करके उनकी साहित्यिक सेवाओं का समुचित समादर किया है। अपनी शिक्षक-मंडली में इस वर्ष हमें मराठी तथा संस्कृत के लब्धप्रतिष्ठ विद्वान् डाक्टर हर्षे को सम्मिलित करने का सुयोग मिला। हमारे तमिल के प्राध्यापक श्री चन्द्रकान्त जी मद्रास के गवर्नमेन्ट आर्ट कालेज में हिन्दी के प्राध्यापक होकर चले गये। आप उत्तर प्रदेश माध्यमिक शिक्षा बोर्ड की तमिल समिति के सदस्य निर्वाचित हुए हैं। श्री वी० वी० आर० शर्मा बोर्ड की तेलुगु तथा कन्नड़ समितियों के सदस्य चुने गये हैं। बड़े हर्ष की बात है कि डाक्टर गौरीशंकर 'सत्येन्द्र' का 'हिन्दी के प्रेमगाथा तथा भक्ति काव्य में लोकवार्ता तत्त्व' विषयक थीसिस विश्वविद्यालय की डी० लिट्० उपाधि के लिए स्वीकृत हो चुका है और कल के कनवोकेशन में उन्हें विधिवत् डिग्री प्रदान की जावेगी। हमें इस बात का भी गर्व है कि श्री गोलोक बिहारी धल को केन्द्रीय सरकार की प्रौढ़ शिक्षा-साहित्य-निर्माण-प्रतियोगिता में उनके 'नोआ गांव नोआ संसार' नामक पुस्तक पर ५०० रुपये का प्रथम पुरस्कार मिला है। मैं अपने इन विद्वान् सहकर्मियों को उनकी सफलता के उपलक्ष्य में बधाई देता हूँ।

इस वर्ष विद्यापीठ में निम्नलिखित क्षेत्रों में कार्य हुआ:—

१ बी० लिट्०, एम० लिट्०, पी-एच० डी०, डी० लिट्० उपाधियों के लिए अध्यापन।

२ अनुसंधान—भाषाविज्ञान, तुलनात्मक साहित्य, लोकवार्ता तथा वैज्ञानिक पाठानुसंधान-संबंधी विषय।

३ प्रकाशन तथा सम्पादन—ग्रंथवीथिका, भारतीय साहित्य तथा अन्य शोध-ग्रंथ।

४ हस्तलिखित ग्रंथों का संग्रह तथा प्रकाशन।

५ लोकवार्ता विभाग।

६ भाषा-विज्ञान विषयक अध्ययन।

७ विशेष व्याख्यान-माला।

## १ अध्ययन-अध्यापन

### बी० लिट्०

बी० लिट्० में हिन्दी, मराठी, गुजराती, तमिल, कन्नड़, तेलुगू, उड़िया, संस्कृत तथा अंग्रेजी के अध्ययन और अध्यापन की सुविधा इस वर्ष विद्यापीठ में दी गयी।

भारत के विभिन्न सुदूर प्रदेशों से इन विषयों के विद्वान् प्राध्यापक बुलाए गए हैं। इस वर्ष हमारी बी० लिट्० की प्रथम परीक्षा में हमारे सबके सब विद्यार्थी उत्तीर्ण हुए। उनमें दो प्रथम श्रेणी में और तीन द्वितीय श्रेणी में आए।

विषय के अनुसार इन विद्यार्थियों की संख्या इस प्रकार थी :

| | |
|---|---|
| १. गुजराती | २ |
| २. कन्नड़ | १ |
| ३. तामिल | ३ |
| ४. हिन्दी | ६ |
| ५. अंग्रेजी | ६ |
| ६. संस्कृत | ६ |

इस वर्ष का सत्र अगस्त ६ से आरम्भ हुआ। इस समय बी० लिट्० कक्षा में जो विद्यार्थी अध्ययन कर रहे हैं, उनका भाषानुसार ब्यौरा इस प्रकार है :—

| | |
|---|---|
| १. तेलुगू | १ |
| २. मराठी | १ |
| ३. हिन्दी (हिन्दीतर भाषा भाषी) | २ |
| ४. गुजराती | १ |

गत वर्ष बी० लिट्० में दक्षिण का केवल एक विद्यार्थी सम्मिलित हुआ था। इस वर्ष दक्षिण से दो विद्यार्थी आये हैं।

१९५६-५७ ई० में बी० लिट्० के लिए जो अध्यादेश स्वीकृत हुए थे, उनमें कुलपति महोदय के परामर्श से कुछ महत्त्वपूर्ण संशोधन हुए, जिनके अनुसार बी० लिट्० का पाठ्यक्रम दो वर्षों का कर दिया गया। प्रथम वर्ष में प्रश्नपत्रों द्वारा परीक्षा लेने की व्यवस्था की गयी है और द्वितीय वर्ष में शोध-प्रबंध प्रस्तुत करने की। इस प्रकार बी० लिट्० की उपाधि भी शोध-विषयक उपाधि कर दी गयी है, क्योंकि विदेशों में बी० लिट्० की स्नातकोत्तर उपाधि अनुसंधानपरक उपाधि है।

भारत की सांस्कृतिक और साहित्यिक एकता को व्यवहारतः पुष्ट करने के लिए ही यह बहुभाषान्वित अध्ययन उपयोगी नहीं, वरन् शुद्ध सारस्वत दृष्टि से भी इसका बड़ा महत्त्व है, क्योंकि साहित्य का मर्म किसी एक भाषा की सीमा में आबद्ध करके नहीं प्राप्त किया जा सकता। अभी हमारे यहाँ बी० लिट्० में बहुत कम विद्यार्थी सम्मिलित हुए प्रतीत होते हैं, किन्तु हमें विश्वास है कि दो तीन वर्षों में यह परीक्षा बहुत लोकप्रिय होगी और आगरे में हिन्दी विद्यापीठ अखिल भारतीय साहित्य का संगम तीर्थ हो जाएगा।

## एम० लिट्०

जैसा कि ऊपर उल्लिखित है एम० लिट्० कक्षा में भाषा-विज्ञान की विविध शाखाओं का अध्ययन कराया जाता है। कुलपति के आदेश से एम० लिट्० के अध्यादेशों में भी परिवर्तन किया गया और इसके दो रूप कर दिये गये, एक केवल प्रश्नपत्रों द्वारा और दूसरा तीन प्रश्नपत्र तथा शोध-प्रबंध द्वारा ।

अध्ययन के क्षेत्र में इस वर्ष हमने नीचे लिखी योजनाएँ और प्रस्तुत की हैं।

१. विविध भारतीय भाषाओं तथा फ्रान्सीसी, जर्मन तथा रूसी भाषा में सार्टिफिकेट तथा डिप्लोमा के पाठ्यक्रम ।

२. भाषा-विज्ञान में एम० ए० ।

३. तुलनात्मक साहित्य में एम० ए० ।

विश्वविद्यालय के विविध अधिकारी संस्थाओं द्वारा इनकी स्वीकृति हो जाने पर इनके पाठ्यक्रमों का पठन-पाठन प्रारम्भ किया जायेगा ।

भाषा-विज्ञान तथा तुलनात्मक साहित्य के एम० ए० के प्रस्तावित पाठ्यक्रमों में हमने इस बात का ध्यान रखा है कि हमारे विद्यार्थियों में ऐसी व्यावहारिकता आ जाय, जिससे वे केवल सरकारी या विश्वविद्यालय की नौकरियों पर ही निर्भर न रहकर, शिक्षा तथा अन्यान्य साहित्यिक वृत्तियों को अपना कर समाज की मांग की पूर्ति करते हुए अपने पैरों पर खड़े हो सकें और सम्मान सहित जीवकोपार्जन कर सकें ।

## पी-एच० डी० और डी० लिट्०

इन उपाधियों के लिए हमारे यहाँ नियमित रूप से अध्यापन की व्यवस्था है। विद्यार्थियों के स्वाध्याय के लिए क्यूबिकल बने हुए हैं, जहां बैठकर वे निश्चिन्त अध्ययन कर सकते हैं ।

इस समय कुल मिलाकर हमारे यहां ५० विद्यार्थी हैं। इससे अधिक अनुसंधित्सु विद्यार्थी हम अभी ले भी नहीं सकते, क्योंकि हमारे विद्यापीठ में प्राध्यापकों की संख्या अभी केवल सात है। विश्वविद्यालय अनुदान आयोग की दृष्टि में इससे अधिक अनुसंधित्सु विद्यार्थियों का लेना हमारे लिए वाँछनीय नहीं होगा ।

## २. अनुसंधान

इस वर्ष विद्यापीठ ने निम्नलिखित अनुसंधान योजनाओं को हाथ में लिया :

(अ) विशिष्ट अनुसंधान कार्य ।

(आ) बी० लिट्०, एम० लिट्०, पी-एच० डी० तथा डी० लिट्० उपाधियों के लिए अनुसंधान ।

(इ) विद्यापीठ के अध्यापकों द्वारा अनुसंधान।

(ई) सहायक अनुसंधान।

अ—विशिष्ट अनुसंधान कार्य

अनुसंधान सहायकों की सहायता से तीन विशिष्ट योजनाओं पर काम किया गया।

१. प्राचीन नाममालाओं के आधार पर मध्ययुगीन हिन्दी साहित्य का शब्द कोष।

२. आगरे के लल्लू लाल कवि के ग्रन्थों का सम्पादन।

३. लोक-साहित्य।

लोक-वार्ता की निम्नलिखित सामग्रियाँ फीते पर ली गईं:—

देवी के जागरण के गीत, होली और रसिया, ३० गांवों से ४० कहानियाँ और बोली विषयक नमूने।

आ—बी० लिट्०, एम० लिट्० पी-एच० डी० तथा डी०लिट्० उपाधियों के लिए अनुसंधान

इस वर्ष एम० लिट्० के दो विद्यार्थियों ने आगरा शहर की बोलियों के सर्वेक्षण का काम लिया है। उन्होंने लगभग ११२ मुहल्लों में जाकर १०० व्यक्तियों से बोली के नमूने एकत्र किए हैं। अन्य दो विद्यार्थियों ने बल्लभ-सम्प्रदाय की लालजी शाखा के दो ग्रंथों के पाठानुसन्धान का काम संभाला है।

डी० लिट्०, पी-एच० डी० और एम० लिट्० में इस वर्ष तेतीस नये विद्यार्थी काम कर रहे हैं, जिनका विवरण यों है:

| | |
|---|---|
| भाषा विज्ञान | १० |
| तुलनात्मक साहित्य | १७ |
| लोकवार्ता | ३ |
| पाठानुसन्धान | ३ |

विद्यार्थियों तथा उनके विषयों की सूची परिशिष्ट में दी गई है।

इन अनुसंधित्सुओं में से के० सी० एस० नायर को केन्द्रीय सरकार ने छात्रवृत्ति देकर हिन्दी विद्यापीठ में पी-एच० डी० के लिए अध्ययन और अनुसंधान करने के लिए भेजा है।

## (ई) विद्यापीठ के अध्यापकों के द्वारा अनुसंधान

प्राध्यापकों के शोधपरक लेख समय पर विभिन्न शोधपत्रिकाओं में छपते रहे।

डाक्टर विश्वनाथ प्रसाद

१. 'य'-कार और 'व'-कार के श्रुति-रूप (भारतीय साहित्य अप्रैल १९५७ ई०)

२. कृषि-कोष भाग १ (बिहार राष्ट्रभाषा परिषद पटना १९५७ ई०)

३. हिन्दी का उदय। ७५०–१२५० ई०

| | |
|---|---|
| | (श्री रामचन्द्र दिवाकर द्वारा संपादित बिहार थ्रू द एजेज के लिए) |
| डाक्टर सत्येन्द्र | १. सूर की झांकी |
| | २. जाहरपीर : गुरुगुग्गा (भारतीय साहित्य) |
| | ३. लोकमानस (भारतीय साहित्य अक्टूबर, १९५६ ई०) |
| | ४. हिन्दी के प्रेमगाथा तथा भक्ति काव्य में लोकवार्त्ता तत्त्व (विश्वविद्यालय की डी० लिट्० उपाधि के लिए स्वीकृत प्रबन्ध) |
| श्री गोलोक बिहारी धल | १. उड़ीसा की भाषाएँ और बोलियाँ |
| | २. उड़िया भाषा पर अँग्रेजी का प्रभाव |
| | ३. प्रेमचन्द के प्रसिद्ध उपन्यास 'गोदान' का उड़िया में अनुवाद |
| डाक्टर आर० जी० हर्षे | १. गोल्डस्मिथ पर फ्रेंच प्रभाव |
| | २. मुकुन्द राजहृन गद्यसप्तक |
| श्री रमेश चन्द्र दुबे | १. ढोलामारू रा दूहा में उपलब्ध काव्य रूढ़ियाँ |
| | २. काव्य कल्पलता में काव्य रूढ़ियाँ |
| श्री ० वी० वी० आर० शर्मा | १. तेलुगु और कन्नड के व्याकरणों का तुलनात्मक अध्ययन। |
| श्री एन० ए० व्यास | १. वेदान्ती कवि अखो। |
| श्री चन्द्र कान्त | १. तमिल भाषा के संघ साहित्य में भक्ति के विविध स्वरूप |
| | २. तमिल भाषा और साहित्य का परिचय |

## (ई) सहायक अनुसंधान

हिन्दी विद्यापीठ अपना पुनीत कर्त्तव्य समझ कर अन्य विश्वविद्यालय तथा महाविद्यालयों में अनुसंधान करने वाले छात्रों को भी अनुसंधान में पूरी सहायता पहुँचाता है। इस प्रकार इस वर्ष विभिन्न विश्वविद्यालयों के लगभग दस छात्रों को विविध प्रकार की सहायता प्रदान की गई।

## ३. प्रकाशन तथा सम्पादन

१—भारतीय साहित्य का प्रकाशन जनवरी सन् ५६ से प्रारम्भ हुआ है। वर्ष १ में चार अंक प्रकाशित हुए, जिनमें ८०० पृष्ठ की अनुसंधानपरक सामग्री प्रकाशित हुई जिसका विवरण नीचे दिया जाता है।

२५७ पृष्ठ विद्यापीठ के अध्यापक एवं अनुसंधित्सुओं द्वारा ।

१६१ पृष्ठ विभिन्न भारतीय भाषाओं पर उन भाषाओं के विद्वानों द्वारा ।

३५२ पृष्ठ भाषा-विज्ञान एवं साहित्य सम्बन्धी विषयों पर अन्य विशिष्ट विद्वानों द्वारा ।

वर्ष २ में अब तक दो अंक प्रकाशित हो चुके हैं और तीसरा अंक प्रेस में है। दूसरे अंक में भारतीय साहित्य में बारहमासा संबंधी शोध-लेखों का प्रकाशन किया गया है।

२—ग्रन्थ-वीथिका (वार्षिक अंक)

'बिब्लोथिका इंडिका' के आदर्श पर इस वीथिका के प्रकाशन की योजना है जिसके अन्तर्गत प्राचीन प्रामाणिक पांडुलिपियाँ जो अभी तक अप्रकाशित थीं, तथा अन्य महत्त्वपूर्ण प्रकाशन जो अब अप्राप्य हैं, प्रकाशित किए जाते हैं।

१९५६ के प्रथम अंक में उपर्युक्त प्रकार की दस कृतियाँ प्रकाशित की गई हैं।

(अ) नवीन प्राप्त हस्तलिखित ग्रन्थ—८।

(आ) लोक साहित्य, लोहबन से प्राप्त सामग्री के आधार पर जाहरपीर के गीत।

(इ) महत्वपूर्ण अप्राप्य पुस्तक—ब्रजभाषा व्याकरण।

## अन्य प्रकाशन

१ जाहरपीर या गुरू गुग्गा : डाक्टर सत्येन्द्र पृष्ठ १६० जिसमें लोहबन से प्राप्त जाहरपीर के गीत के आधार पर लिखी गई आलोचनात्मक एवं शोधपूर्ण भूमिका सम्मिलित है।

२ धातु संग्रह : हार्नले पृष्ठ ५४ (हिन्दी विद्यापीठ द्वारा हिन्दी रूपान्तर)

३ भारतीय साहित्य में ऐतिहासिक उपन्यास : पृष्ठ ६० जिसमें विभिन्न विद्वान लेखकों द्वारा आसामी, बंगाली, तमिल, तेलुगु, मराठी, मलयालम, हिन्दी, उड़िया, कन्नड़ और गुजराती भाषाओं से संबंधित लेख सम्मिलित हैं।

प्रेस में :—

१ **लोरकहा** इसके लेखक सूफी कवि मुल्ला दाऊद जायसी से कोई डेढ़ सौ वर्ष पहले चौदहवीं शताब्दी में हुए थे। मैंने पटना से इसकी एक प्राचीन एवं प्रामाणिक, हस्तलिखित प्रति की फोटोग्राफ प्रति प्राप्त की थी उसी के आधार पर यह पुस्तक मध्यकालीन साहित्य के विशेषज्ञ डाक्टर माताप्रसाद गुप्त द्वारा संपादित कराई गई है।

## ४. हस्तलिखित ग्रंथ-विभाग

एक अनुभवी सहायक श्री उदयशंकर शास्त्री इस विभाग के लिए नियुक्त किये गये हैं। उन्होंने हस्तलिखित ग्रंथों की प्राप्ति के लिए ग्वालियर, दतिया, भरतपुर तथा धौलपुर आदि स्थानों की यात्रा की। ४२ हस्तलिखित ग्रंथों की टीप ली गई,

८ हस्तलिखित ग्रंथों का विस्तृत विवरण तैयार किया गया तथा दतिया के जिला पुस्तकालय के ८०० ग्रंथों की सूची तैयार की गई ।

हम लोग हस्तलिखित ग्रंथों की खोज में मथुरा, वृन्दावन, तथा बरसाने की यात्रा को गए और वल्लभ सम्प्रदाय की एक प्रमुख शाखा की खोज की, जो डेरा गाजीखाँ में विकसित हुई थी। अब यह प्रदेश पाकिस्तान में है। इस शाखा के लगभग २५ हजार अनुयायी थे। यह शाखा लालजी सम्प्रदाय के नाम से विख्यात है। इसके प्रमुख गोस्वामी अब अपने ठाकुरजी के साथ वृन्दावन आगए हैं। इनके पास हस्तलिखित ग्रंथों का विशाल भंडार है। विद्यापीठ को इस सम्प्रदाय से निम्न-लिखित हस्तलिखित पुस्तकें प्राप्त हुईः :—

| हिन्दी | संस्कृत |
|---|---|
| १. हृदय प्रकाश | १. वृत्तरत्नाकर सेतु |
| २. वृत्तार्णव | २. वृत्तरत्नाकर |
| ३. लघुपिंगल | ३. श्रुतबोध |
| ४. छंदसार | ४. वृत्तरत्नावली |
| ५. भाषा भूषण | ५. वृत्तिमाला |
| ६. बावनाक्षरी | |

इस संप्रदाय के संस्थापक श्री लालजी तथा इसके महाकवि श्री केवलराम के हस्त-लिखित ग्रंथों का अध्ययन मैंने तथा डाक्टर सत्येन्द्र ने किया। मथुरा म्यूजियम के क्यूरेटर श्री कृष्णदत्त बाजपेयी से इस कार्य में हमें विशेष सहायता मिली, जिसके लिए हम उनके आभारी हैं।

विद्यापीठ के अनुसंधित्सु श्री चन्द्रभान रावत ने श्रीरंगजी के मंदिर के पुस्तकालय के हस्तलिखित ग्रंथों की टीप ली। हमारे अनुसंधान सहायक श्री कैलाशचन्द्र भाटिया ने कई हस्तलिखित ग्रंथ विद्यापीट के लिए प्राप्त किए। हस्तलिखित ग्रंथ सहायक श्री उदय शंकर शास्त्री ने विद्यापीठ को संस्कृत का हस्तलिखित ग्रंथ भट्टकेदार का 'वृत्तरत्नाकर' भेंट किया।

इस विभाग की ओर से हस्तलिखित ग्रंथों की एक प्रदर्शनी का आयोजन किया गया था। १७ मई १९५७ ई० को उ० प्र० के राज्यपाल श्री क० मा० मुंशी ने प्रदर्शनी को देखा तथा गीता की टीका की एक अलभ्य प्रति को देखकर सुझाव दिया कि गीता की टीकाओं का तुलनात्मक अध्ययन और उन पर अनुसंधान-कार्य होना चाहिए। १३ जुलाई, ५७ को श्री आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी और महापंडित" राहुल सांकृत्यायन ने प्रदर्शनी को देखा और संगृहीत ग्रंथों की सराहना की। १ अक्टूबर ५७ को विश्वविद्यालय-अनुदान आयोग के अध्यक्ष श्री देशमुख ने प्रदर्शनी को देखा। सम्प्रति संग्रहालय में उड़िया कृष्णकाव्य के दो पत्र, मराठी गुरुचरित और फारसी की दीवान ए जामी तथा हिन्दीतर भाषाओं के

कुछ अन्य दुर्लभ ग्रंथ भी सुरक्षित हैं। नीचे लिख अप्राप्य ग्रंथों की माइक्रोफिल्म प्रतियाँ प्राप्त की जा चुकी हैं।

१. पद्मावत
२. मुन्तखाबत-ए-हिन्दी
३. किस्सा चहार दरवेश
४. एन्ट्रोडक्शन टू हिन्दी
५. तोता कहानी
६. बाग-ओ-बहार
७. अनवर-उ-सुहेली

लंदन के इंडिया आफिस की लाइब्रेरी से निम्नलिखित दो ग्रंथों की माइक्रोफिल्म प्रतियाँ खरीद कर प्राप्त की गई हैं।

१. किस्स ए गुलो हुर्मज
२. न्यू टैस्टामैंट

डेरागाजीखां के संत श्री केवलराम और श्री लाल जी के ग्रंथों की माइक्रोफिल्म भी तैयार की गई हैं जिन पर विद्यापीठ के विद्यार्थी कार्य कर रहे हैं।

हस्तलिखित ग्रंथ विभाग निम्नलिखित उपकरणों से सुसज्जित है :

१. माइक्रो फिल्म कैमेरा तथा रीडर
२. फोटोस्टैट मशीन
३. मैगनीफाइंग ग्लास
४. फोटो केमरा

## ५. लोकवार्ता विभाग

निम्नलिखित मौखिक लोक-गीतों को टेप पर अंकित किया गया है।

१. देवी के जागरण के लिए गाए जाने वाले गीत।
२. लोक-कथाएँ तथा मथुरा जिले के ३० गांवों से लोकवार्ता के नमूने।
३. विवाह के गीत—लड़की के विवाह का पूरा कार्यक्रम।
४. यज्ञोपवीत के समय गाए जाने वाले घोड़े बन्ने आदि।
५. देवी के गीत—सोहले, भजन, भेंटें, अरदास, गनेस, लांगुरा।
६. जगदेव—पाषंड के गीत—मवासे
७. होली के गीत—(एक गीत में फिरंगी साहब व मेम को भी होली खेलनें के लिए आमंत्रित किया गया है)
८. विभिन्न गीत—गोने की गीत, गुड़ बाँटने के गीत, ननद को उलाहना दिए जाने के गीत आदि।

९. कीर्तन, भजन, कजली, दु:ख के दिन मिलकर काटने के गीत, उर्दू कवि के—सुदामा चरित के कुछ अंश।

१०. रुक्मिणी मंगल, मोरध्वज लीला।

संग्रहालय—इस वर्ष इस विभाग में एक संग्रहालय की स्थापना भी की गई है, जिसमें लोक तत्त्वों से संबंधित लगभग २० वस्तुएँ तथा ५० चित्र संगृहीत किए गए हैं।

उपकरण—इस विभाग में निम्नलिखित उपकरण हैं :

१. टेप रिकर्डर—बिजली से संचालित

२. ,, ,, बैटरी से संचालित (क्षेत्र-कार्य के लिए)

३. मूवी कैमेरा ( " ")

भ्रमण—लोकतत्त्व-सामग्री के संग्रहार्थ विद्यापीठ का दल बरसाना, मथुरा, लोहबन, सहेता आदि गांवों में गया।

## ६. भाषा-विज्ञान विषयक अध्ययन

भाषा-विज्ञान विषयक स्नातकोत्तर अध्ययन के लिए इस संस्था का एक अपना विशिष्ट स्थान है। एम० लिट्० तथा पी-एच० डी० की उपाधि के लिए किए गए शोध-कार्य से इतर इस वर्ष भाषातत्त्व संबंधी विशेष सर्वेक्षण तथा क्षेत्रीय कार्य का आयोजन भी निम्नलिखित रूप में किया गया।

१. ब्रज बोलियों का सर्वेक्षण।

२. भाषातत्त्व की दृष्टि से खुरपल्टा का सर्वेक्षण।

३. आगरे की बोलियों पर एम० लिट् के दो छात्र शोध-कार्य कर रहे हैं। उन्होंने आगरा नगर के मुहल्लों का सर्वेक्षण करके आवश्यक सामग्री एकत्र करली है।

श्री गोलोक बिहारी धल के प्रयत्नों से विद्यापीठ में भाषाविज्ञान-मंडल की स्थापना हुई है। इस मंडल का उद्घाटन अखिल भारतीय लिंग्विस्टिक सोसायटी के अध्यक्ष डाक्टर बाबूराम सक्सेना ने २३-२-१९५७ ई० को किया। इस वर्ष निम्नलिखित लेख पढ़े गए।

| दिनांक | विषय | वक्ता | सभापति |
|---|---|---|---|
| २३-२-५७ ई० | उद्घाटन | डाक्टर बाबूराम सक्सेना | डाक्टर विश्वनाथ प्रसाद |
| १५-४-५७ ई० | भाषा तथा संस्कृति | डाक्टर लुई लेविन अमेरिकन विश्वविद्यालय | ,, ,, |
| २२-४-५७ ई० | भाषा तथा सामाजिक संस्कृति | डाक्टर रामविलास शर्मा | ,, ,, |

भाषाविज्ञान प्रयोगशाला विभाग इन उपकरणों से सुसज्जित है :—

१. साउण्ड रिप्रोड्यूसर

२. डिस्क रिकार्डर

३. टेप रिकार्डर

## ७. विशेष व्याख्यान-माला

बाहर से आमंत्रित विद्वानों के इस वर्ष निम्नलिखित विशेष व्याख्यान हुए :—

| | |
|---|---|
| भारत की सामान्य लिपि तथा प्रान्तीय लिपियाँ | श्री एम० सत्यनारायण |
| राष्ट्र भाषा के रूप में हिन्दी | डाक्टर रघुवीर |
| मानस में उक्ति-सौष्ठव | डाक्टर बलदेव प्रसाद मिश्र |
| भाषा—औपचारिक तथा वास्तविक | डाक्टर बाबूराम सक्सेना |

इसके अतिरिक्त एक विचार-गोष्ठी का भी आयोजन किया गया था। इसमें भाग लेने के लिए देश के निम्नलिखित लब्धप्रतिष्ठ विद्वान आमंत्रित किए गए थे :—

१. श्री एम० सत्यनारायण एम० पी० (दक्षिण)

२. डाक्टर बलदेव प्रसाद मिश्र, डी० लिट० (मध्य प्रदेश)

३. श्री मजूमदार (बड़ौदा, गुजरात)

## पुस्तकालय

प्रयत्न यह रहा है कि पुस्तकालय के लिए महत्त्वपूर्ण, प्राचीन एवं अप्राप्य पुस्तका का प्राप्त किया जाय। इस समय पुस्तकालय में लगभग ७०००) के मूल्य की पुस्तकें हैं, जिनकी संख्या इस प्रकार है :—

हिन्दी ८७५, संस्कृत ६४, तमिल २७३, मराठी ८६, प्राच्य १४ अँग्रेजी प्राच्य पुस्तकें ६, भाषा-विज्ञान संबंधी २५, उड़िया १०६, गुजराती १८७, तेलुगू ४७, विविध भाषाओं के शब्द कोष ३७, पत्रपत्रिकाएँ ३०।

हस्तलिखित ग्रंथों के पुस्तकालयों की सूची :

यह प्रयत्न किया जा रहा है कि विद्यापीठ में विभिन्न पुस्तकालयों में प्राप्त हस्तलिखित ग्रंथों की सूची तैयार रक्खी जाय जिससे अनुसंधान कार्य में सहायता ली जा सके। अब तक देश की दस प्रसिद्ध संस्थाओं से इस प्रकार की सूची मंगा ली गई है।

विद्वद्जनों की सूची :

देश की विभिन्न भाषाओं के विद्वानों की एक सूची भी विद्यापीठ में रखी जा रही है तथा इन विद्वानों से संबंध स्थापित करने का प्रयत्न भी किया जाता है। हमें देश के इन विद्वानों से सहयोग का आश्वासन प्राप्त हुआ है।

## अन्य योजनाएँ

विद्यापीठ की निम्नलिखित योजनाएँ हैं :—

१ हिन्दी साहित्य के विश्वकोष का हिन्दी में सम्पादन। इसके लिए प्रारंभिक तैयारियाँ हो चुकी हैं।

२ लोकवार्ताकोष—इसका विवरण प्रस्तुत कर लिया गया है ।

३ अन्य क्षेत्रीय भाषाओं के काव्यों की देवनागरी लिपि में सानुवाद आलोचनात्मक भूमिका तथा टिप्पणियों सहित प्रकाशन ।

४ विद्यापीठ में पढ़ाई जाने वाली क्षेत्रीय भाषाओं के हिन्दी माध्यम से अध्ययन के लिए सुन्दर पाठ्य पुस्तकों और चार्टों का प्रकाशन ।

केन्द्रीय सरकार की हिन्दी के उन्नयन की पंचवर्षीय योजना में हमारे विद्यापीठ तथा हमारे यहाँ के प्राध्यापकों को निम्नलिखित कार्य सौंपे गये हैं :—

१. फोर्ट विलियम कालेज के लेखकों की ग्रंथावली का शोध और सम्पादन ।
२. कृष्णभक्ति शाखा के गौण कवियों के ग्रंथों का शोध और सम्पादन ।
३. श्रीधर पाठक की कृतियों का शब्द-सूचीकरण ।
४. अयोध्यासिंह हरिऔध के प्रियप्रवास का शब्द-सूचीकरण ।

इसके अतिरिक्त योजना समिति ने यह भी निर्णय किया था, कि दिल्ली के भाषा सर्वेक्षण के लिए कार्यकर्त्ताओं का प्रशिक्षण हमारे ही विभाग में हो ।

## हमारी आवश्यकताएँ

एक सुप्रसिद्ध अमेरिकन शिक्षा विशेषज्ञ का कथन है कि किसी आवासीय विद्यापीठ के लिए विद्या-भवन बनने से पूर्व छात्रावास और शिक्षकों के लिए आवास-गृहों का बन जाना नितान्त आवश्यक है। हर्ष की बात है कि इस बार विश्वविद्यालय की ओर से छात्रावास के लिए एक विस्तृत जमीन खरीद ली गई है और भवन के निर्माण के लिए भारत सरकार से आवश्यक द्रव्य की माँग की गई है। उसका शिलान्यास आज ही हमारे शिक्षा-मंत्री जी के द्वारा हुआ है। हमें आशा है कि छात्रावास का निर्माण शीघ्र ही हो सकेगा। हमारे विद्यापीठ के शिक्षक सुदूर प्रदेशों से यहाँ आये हैं और आवास के अभाव के कारण बड़े कष्ट से इधर उधर टिके हुए हैं। उनके निवास के लिए भी समुचित प्रबन्ध शीघ्र किया जाना चाहिए, जिससे कि वे निर्विघ्न और निश्चिन्त भाव से अपने स्वाध्याय में लगे रहें। कहने की आवश्यकता नहीं कि हिन्दी के विद्यार्थियों को हिन्दीतर भाषाएँ सीखने के लिए तथा हिन्दीतर भाषा-भाषियों को हिन्दी सीखने के लिए प्रोत्साहित करना हमारे राष्ट्रीय और सांस्कृतिक ऐक्य के पुष्टीकरण के लिए आवश्यक है। इसके लिए पर्याप्त संख्या में छात्रवृत्तियों का आयोजन होना चाहिए, जिससे विद्यार्थी ऐसे अध्ययन की ओर आकर्षित हो सकें। हमारे यहाँ के जो विद्यार्थी ऐसे अध्ययन में लगे हुए हैं, उनके लिए हमें इस आवश्यकता का बोध होता है कि उनके भाषा-ज्ञान को व्यावहारिक रूप देने के लिए उनकी अधीन भाषा के क्षेत्र में उन्हें कुछ महीनों के लिए भेजा जाय। परन्तु यह तभी संभव है जबकि हम उनके लिए उचित आर्थिक अनुदान प्राप्त कर सकें। अपने प्रकाशनों की बिक्री के लिए भी हमें उत्तर प्रदेश की सरकार तथा केन्द्रीय सरकार एवं

अन्य प्रादेशिक सरकारों से निवेदन करना है कि वे अपने विविध विभागों के लिए उन्हें पर्याप्त संख्या में खरीदकर हमारी कुछ सहायता करें। अपने उपाधिधारियों तथा उनकी उपाधियों की समुचित मान्यता के सम्बन्ध में भी हमें अपने विश्वविद्यालयों तथा अन्य विश्वविद्यालयों एवं सरकार से प्रार्थना करनी है। उनकी विज्ञप्तियों में हमारी उपाधियों का भी सन्निवेश होना चाहिए और स्नातकोत्तर अनुसंधान की मर्यादा के अनुरूप उनका मूल्यांकन होना चाहिए।

अर्थाभाव के कारण हम अपने अध्ययन और शोध-विषयक कई योजनाओं को कार्यान्वित नहीं कर सके हैं। हमारी ध्वनिविज्ञान की प्रयोगशाला तथा उसका 'साउंड-प्रूफ स्टूडियो' अभी अधूरा पड़ा हुआ है। हम अब तक अपने यहाँ बँगला जैसी समृद्ध भाषा के शिक्षण का कोई प्रबन्ध नहीं कर सके हैं। मलयालम की भी कोई व्यवस्था नहीं की जा सकी है। पर अब जबकि स्वयं हमारे विद्वान् तथा अनन्य हिन्दी-सेवी शिक्षा-मंत्री श्री कमलापति त्रिपाठी जी की ही कृपा और अवलंब हमें प्राप्त है तो द्रव्याभाव के कारण हमारा कौन सा कार्य-क्रम रुका रह सकता है?

इस विवरण का उपसंहार मैं श्रद्धेय त्रिपाठी जी के प्रति कृतज्ञता ज्ञापित किए बिना नहीं कर सकता। आपने हमारे ऊपर विशेष कृपा करके यहाँ पधारने का कष्ट उठाया है और अपने अमूल्य समय का यथेष्ट भाग देकर हमें प्रोत्साहित किया है। हिन्दी के नाते आपसे हमें बड़ी बड़ी आशाएँ हैं। हमें पूरा भरोसा है कि आपके अनुग्रह, संरक्षण और निर्देशन का लाभ हमें बराबर प्राप्त होता रहेगा। अपने उप-कुलपति आदरणीय श्री कालकाप्रसादजी भटनागर के भी हम बहुत आभारी हैं। हमारे सभी प्रयासों में आप हमारी शक्ति के आधार रहे हैं। हमें आगे बढ़ाने और हमारी आवश्यकताओं की पूर्ति की चिन्ता आपसे अधिक और किसे होगी? विश्वविद्यालय के कर्म-सचिव डाक्टर लक्ष्मीप्रसाद माथुर भी अपने अनुभव-सिद्ध सत्परामर्शों से हमारी सहायता करते रहे हैं। आर्ट फैकल्टी के डीन प्रोफेसर धर्मेन्द्रनाथ शास्त्री ने भी हमारी प्रगति में पर्याप्त सहयोग दिया है। इसके अतिरिक्त यहाँ के स्थानीय कालेजों के अपने कई सहयोगियों के सक्रिय सद्भाव का भी हमने लाभ उठाया है। आप सबके प्रति अपना हार्दिक आभार प्रकट करना हमारा कर्तव्य है।

विद्यापीठ के अपने सभी सहकर्मियों, कार्यकर्त्ताओं तथा विद्यार्थियों से भी मुझे अपने कार्यों में सविशेष सहायता और सक्रिय समर्थन मिलता रहा है। आप सब लोगों की सेवाओं का मूल्यांकन मैं औपचारिक धन्यवाद के शब्दों द्वारा नहीं कर सकता।

इस शिशु संस्था ने अपने अल्पकालीन जीवन में जो कुछ किया है, वह आपके सामने है। हमारा यह विद्यापीठ केन्द्रीय और प्रान्तीय शासन तथा देश की जनता से प्रोत्साहन और सहयोग की कामना करता है। हमें आप सबका सहारा चाहिए

अपने हितैषियों की शुभेच्छाओं से बल प्राप्त करके यह विद्यापीठ अपने उद्देश्य और आदर्श की ओर उमंग और विश्वास के साथ बढ़ सकेगा ।

**विश्वनाथप्रसाद**
संचालक

# परिशिष्ट

## भाषा-विज्ञान

### डी० लिट्०

| | |
|---|---|
| १ डाक्टर ब्रजवासीलाल श्रीवास्तव | हिन्दी वाक्य रचना |

### पी-एच० डी०

| | |
|---|---|
| १ श्री कैलाशचन्द्र भाटिया | हिन्दी में आँग्ल आगत शब्दों का वैज्ञानिक अध्ययन |
| २ श्री चन्द्रभान रावत | मथुरा जिले की ब्रज-बोलियों का तुलनात्मक और वर्णनात्मक अध्ययन । |
| ३ श्री मक्खन लाल शर्मा | हिन्दी भाषा के रागात्मक तत्त्व |
| ४ श्री भूदेव शास्त्री | भाषा-विज्ञान के आधार पर हिन्दी भाषा-शिक्षण की समस्याएँ तथा उनके समाधान । |
| ५ श्री के० आर० परांजपे | देवनागरी लिपि का उद्गम और विकास । |
| ६ सुश्री अमृतप्रभा धमीजा | जौनसारी और सिरमौरी भाषा और उसका साहित्य । |
| ७ श्री उमापति राय चन्देल | नाममाला साहित्य के आधार पर मध्यकालीन कोष । |

### एम० लिट्०

| | |
|---|---|
| १ श्री मोहनलाल शर्मा | आगरा शहर की बोलियों का सर्वेक्षण । |
| २ श्री मुरारी लाल उप्रेतिः | आगरा की खड़ी बोली का सर्वेक्षण । |

## तुलनात्मक साहित्य

### पी-एच० डी०

| | |
|---|---|
| १ सुश्री सुशीला धीर | हिन्दी और गुजराती के निर्गुण संत काव्य का तुलनात्मक अध्ययन । |
| २ सुश्री मालती देवी अग्रवाल | संस्कृत शिलालेखों पर संस्कृत के महाकवियों का प्रभाव । |
| ३ श्री के० सी० एस० नायर | मलायलम और हिन्दी के ऐतिहासिक उपन्यास । |

| | |
|---|---|
| | (वृन्दावनलाल वर्मा तथा सी० वी० रमन पिल्लई के विशेष अध्ययन के सहित) इन्हें केन्द्रीय सरकार ने छात्रवृत्ति देकर हिन्दी विद्यापीठ में भेजा है । |
| ४ श्री एम० जार्ज । | तुलसी और एषुतच्छन का तुलनात्मक अध्ययन । |
| ५ श्री सूबदारसिंह (ब्रह्मानंद) | हिन्दी का बँगला को योगदान । |
| ६ श्री नारायण सिंह दुबे | हिन्दी तथा गुजराती के ऐतिहासिक उपन्यास । |
| ७ श्री चन्द्रपाल शर्मा | जैन गद्य लेखकों की हिन्दी साहित्य को देन । |
| ८ श्री शत्रुघ्न भार्गव | ब्रज की १६वीं शताब्दी के हिन्दी कृष्णभक्ति काव्य में भारतीय संस्कृति का चित्रण । |
| ९ श्री राजेन्द्रसिंह कुशवाहा | अष्टछाप के कवियों के आधार पर मध्यकालीन भारत के सामाजिक एवं सांस्कृतिक इतिहास का अध्ययन । |
| १० श्री राधेश्याम त्रिपाठी | डिंगल का गद्य साहित्य । |
| ११ श्री टी ० सुब्बण भट्ट | प्रसाद जी के काव्य में ध्वनि के स्वरूप का शास्त्रीय और वैज्ञानिक विवेचन । |
| १२ सुश्री विद्या टोपा | भारतीय महाकवियों की परंपरा में कामायनी । |
| १३ सुश्री विमला गौड़ | मीराबाई के काव्य-स्रोतों का अनुसंधान । |
| १४ श्री राम बाबू शर्मा | १५वीं से १७वीं शती तक के हिन्दी काव्य-रूपों का अध्ययन । |
| १५ श्री रवीन्द्र कुमार जैन | बनारसीदास जैन का जीवन और कृतित्व । |
| १६ श्री आदित्य स्वरूप कौशिक | हिन्दी नाट्यशास्त्र का ऐतिहासिक विकास । |
| १७ श्री गोपी बल्लभ नेमा | रामानंदी संप्रदाय के कुछ अज्ञात कवि और उनकी रचनाएँ । |

## लोकवार्ता

### पी-एच० डी०

| | |
|---|---|
| १ सुश्री चन्द्रकला त्यागी । | संस्कार संबन्धी लोकगीत ( बुलन्दशहर के मध्य और निम्नवर्ग से प्राप्तगीतों के आधार पर ) |
| २ श्री रामसिंह यादव | एटा के देवी देवताओं संबंधी लोकगीतों का अध्ययन । |
| ३ श्री महेन्द्र सागर प्रचंडिया । | हिन्दी और गुजराती बारहमासा साहित्य का तुलनात्मक अध्ययन । |

## वैज्ञानिक पाठानुसंधान

### पी-एच० डी०

| | |
|---|---|
| १ सुश्री पद्मा द्रोण । | वाचस्पति मिश्र के आचार-चिन्तामणि का आलोचनात्मक अध्ययन एवं संपादन । |

### एम० लिट्०

| | |
|---|---|
| १ श्री रमेशचन्द्र जैन | श्री केवलराम के ज्ञानदीपक का वैज्ञानिक संपादन |
| २ श्री रमेश चन्द्र महरोत्रा । | श्री लालदास की कृतियों का वैज्ञानिक संपादन |

माननीय शिक्षा-मन्त्री

**श्री कमलापति त्रिपाठी**

# हिन्दी और हिन्दी विद्यापीठ[1]

देवियो और बन्धुओ,

मुझे कुछ ऐसा लगता है कि अब आप थक चुके हैं और अगर कहीं एक बहुत लम्बा-चौड़ा भाषण मैंने भी ठोंका आपके सिर पर तो आप शायद परेशान हो उठें। पर बात यह है कि मुझको भी कुछ थोड़ा-सा बोलने का रोग है और जब हिन्दी का प्रश्न छिड़ जाता है तो जैसे होम्योपैथी की गोलियाँ कभी-कभी रोग को बढ़ा देती हैं, मेरा यह रोग भी बढ़ जाता है। ऐसी स्थिति में चाहे आप परेशान हों फिर भी बिना कुछ कहे मैं मानूँगा नहीं। जहाँ तक हिन्दी विद्यापीठ का सम्बन्ध है, मैं इसकी स्थापना के काल से ही इसका समर्थक और बड़ा पक्षपाती रहा हूँ। जब इसकी स्थापना का प्रश्न उपस्थित था उस समय हममें से बहुतों को इस पर विचार करने का और परस्पर परामर्श करने का अवसर मिला था। मैं व्यक्तिगत रूप से इस प्रकार की संस्था की स्थापना कई दृष्टियों से अत्यन्त ही वांछनीय और आवश्यक समझता था। बड़ी प्रसन्नता की बात है कि उत्तर प्रदेशीय सरकार की सहायता से, आगरा विश्वविद्यालय के उपकुलपति तथा यहाँ के अन्य संचालकों, प्रबन्धकों, अध्यापकों और सभी अन्य कार्यकर्ताओं के सहयोग से जो यहाँ कार्य करते हैं, इस संस्था की स्थापना हो सकी। इसके जीवन का अभी केवल एक वर्ष बीता है। दूसरे वर्ष में इसने पदार्पण किया है। यह एक ऐसी संस्था है, जो नवजात है, अभी उसका जन्म हुआ है और नवजात शिशु के स्वरूप पर ही आप निश्चित रूप से कुछ नहीं कह सकते, क्योंकि सद्यःसंभूत बालक का एक ऐसा स्वरूप होता है, जो जैसे-जैसे जीवन की गति बढ़ती है, निखरता जाता है। जो एक वर्ष के बच्चे का स्वरूप होता है वह दस वर्ष के बाद नहीं रहता, उसमें बड़ी भिन्नता आ जाती है। आज तो अभी यह छोटा-सा अंकुर है, जिसका बीजवपन हुआ और जिसका अभी अँकुवा निकला है। हम आशा करते हैं कि यह हमारी पौध उत्तरोत्तर समस्त कठिनाइयों

१. दिनांक १५-११-५७ को वार्षिकोत्सव के अवसर पर दिया गया भाषण।

और बाधाओं का सामना करते हुए भी विकसित होती चलेगी और वह दिन शीघ्र ही आयेगा जब एक विशाल वृक्ष के रूप में यह संस्था न केवल उत्तर प्रदेश प्रत्युत समस्त देश की सेवा करने में समर्थ होगी तथा उस बहुत बड़े प्रश्न का समाधान प्रस्तुत करेगी जो आज हमारे राष्ट्रीय जीवन और उसकी धारा को बड़े वेग से आन्दोलित कर रहा है।

हिन्दी का प्रश्न कोई साधारण प्रश्न नहीं है जैसा हमारे भाई व्रजराजजी[1] ने कहा। यह एक गम्भीर विषय है। भाषा का प्रश्न छोटा प्रश्न नहीं हुआ करता। संसार का इतिहास इस बात का साक्षी है कि बहुत सी भावनाएँ ऐसी होती हैं, जो समाज के बहुत बड़े अंश को अपने मूल से हिला देती हैं और भावनाओं का और आवेश का उत्पादन कर देती हैं, जिसका परिणाम सारे इतिहास पर पड़ता है। ऐसे कुछ प्रश्न होते हैं। उनम से एक प्रश्न भाषा का प्रश्न है। जगत का इतिहास इस बात का साक्षी है कि जिस प्रकार धर्म के प्रश्नों को लेकर और जिस प्रकार राष्ट्र के प्रश्नों को लेकर एक राष्ट्र का राष्ट्र नीचे से ऊपर तक भाव के आवेश में अभिभूत होता रहा है, वैसे ही जब कभी भाषा का प्रश्न कहीं उठा है तो बड़े से बड़ा राष्ट्र ऊपर से नीचे तक आन्दोलित हो उठा है। अभी हमारे देश की घटनाएँ ताजा हैं। अभी कल की बात है कि भाषा के आधार पर प्रान्तों के पुनर्गठन में किस प्रकार की स्थिति उत्पन्न हुई, उसे हमने और आपने देखा। हाँ, कल की बात है। भाषा के आधार पर प्रान्तों का पुनर्गठन हो, प्रदेशों और राज्यों का पुन.संगठन हो, और उस आधार को ग्रहण करते ही कन्याकुमारी से ले करके हिमालय के उत्तुंग शिखर तक सारे भारतीय जन-जीवन में एक प्रचंड, उत्ताल तरंग उठे? अब आप देखें, कि सारा देश प्रकम्पित हो गया वहाँ से ले करके यहाँ तक। ऐसा भी लगने लगा कि क्या इस प्रश्न को उठा कर हमने गृह-युद्ध की अग्नि भड़का दी? क्या इस प्रश्न को उठा करके स्वतन्त्रता के अंकुर का जो अभी सद्यः प्रतिष्ठित हुआ, जिसका अभिसिंचन आवश्यक है, हम उन्मूलन करने चले हैं और उसी स्थान पर उसे अपनी इस अग्नि में झोंक देने के लिए तैयार हैं? वह स्थिति हमारे सामने आई। फिर शताब्दियों से साथ रहने वाले जिनका खानपान, उठना-बैठना, बोलचाल साथ-साथ हुआ करती थी, पड़ोस में जो एक दूसरे के रहते थे, वे भाषा का प्रश्न उठते ही ऐसा लगा मानों दो हो गये। मराठी और गुजरातियों का प्रश्न देखिए और दूसरों को देखिए। उनकी चर्चा मैं नहीं करता। हम और आप उनको जानते हैं। मराठी और गुजराती बहुत दिनों से एक स्थान पर रहते आए हैं। वह सारा बम्बई का प्रदेश था, उसमें अगल बगल रहते थे, कभी उनमें यह भावना भी नहीं हुई थी कि यह दूसरे हैं, हम दूसरे हैं, परन्तु इस प्रश्न के उठते ही वह स्वरूप उन्होंने ग्रहण किया और वह कितना भयावना, कितना बीभत्स, रक्त से कितना लाल, उसमें कितनी अरुणिमा क्रोध की और रक्त की थी, यह आपने देखा।

---

१ श्री व्रजराजसिंह (फीरोजाबाद से निर्वाचित लोक-सभा के सदस्य) का भाषण श्री शिक्षा-मन्त्री से पूर्व हो चुका था।

ये प्रश्न ऐसे नहीं हैं जिन पर हम साधारण प्रकार से विचार कर लें और टाल दें। ये प्रश्न संबंधित हैं भाषा से। और भाषा भावों का वाहन है, अभिव्यक्ति है और अभिव्यक्ति का माध्यम है, साधन है—आपकी समस्त आत्मा की, समस्त जीवन की, आपके अन्तर और भावजगत् की अभिव्यक्ति की। इसका महत्त्व जीवन में वैसा ही होता है जैसे माता के दूध का होता है। जिस भाषा को लेकर हम चलते हैं उसी भाषा के साथ-साथ जीवन-संग्राम करते हैं। माता का दूध पीते चलते हैं और उस दूध के साथ साथ भाषा हमारे भीतर प्रवेश करती चलती है, उसका तो तादात्म्य हो जाता है और समस्त जीवन उससे ओत-प्रोत हो जाता है। भाषा का प्रभाव वही होता है जैसा मैंने आपसे कहा कि माँ के रक्त का होता है। यही कारण है कि भाषा से हमारे जीवन में आन्दोलन उत्पन्न हो जाता है। हिन्दी को राष्ट्रभाषा हमने बनाया। मैं उन लोगों में से हूँ जो हिन्दी के एक छोटे से सेवक और कार्यकर्ता के रूप में कार्य करते हैं। हिन्दी को राष्ट्र भाषा के पद पर प्रतिष्ठित करने के लिये जब इस देश के विचारों में संघर्ष आरम्भ हुआ तो कुछ थोड़ा-बहुत मुझे भी उस क्षेत्र में कार्य करने का अवसर मिला। पत्रों के स्तम्भों से, सभा-मंचों से, विधान-सभा के अधिवेशनों में, संविधान-सम्मेलन में, जिस संस्था का मैं एक कार्यकर्ता हूँ, उसकी विचार-गोष्ठियों में सर्वत्र इस प्रश्न के उपस्थित होने पर जब विचारों में संघर्ष शुरू हुआ तो हिन्दी को राष्ट्रभाषा के पद पर प्रतिष्ठित करने के पक्ष में थोड़ी-बहुत अपनी शक्ति, जो कुछ भी मेरी योग्यता और क्षमता थी, लगाता गया। अपने नेताओं तक से उसमें विरोध हुआ। विचारों में मतभेद होने के कारण उन नेताओं तक से जिनके चरण की धूल को मस्तक पर लगाता रहा, विरोध करना पड़ा। मैं चाहता रहा हूँ और मानता रहा हूँ कि हिन्दी राष्ट्र-भाषा के पद पर प्रतिष्ठित हो। इसका कोई दूसरा कारण नहीं है। कोई यह समझे कि इसमें कोई साम्प्रदायिकता की वृत्ति थी, तो वह हमारे साथ अन्याय करता है। जैसे हमारे भाई ब्रजराज जी ने कहा कि जो हिन्दी का विरोध करते हैं उन्हे देश का द्रोही न समझें वैसे ही मैं भी कहता हूँ कि जो हिन्दी का समर्थन करते हैं उन्हें यह न समझें कि उनके अन्दर कोई साम्प्रदायिकता है, कम्यूनलिज्म है। यह बात समझना अनुचित है। इसलिए कि जिन लोगों को ३७-३७, ४०-४०, ५०-५०, वर्ष काम करने का अवसर मिला—देश की सेवा का, जिन्हें गांधी जी के चरणों के पीछे चलने का अवसर प्राप्त हुआ और इस राष्ट्रीयता के युग से प्रभावित हुए वे देश की एकता और उसकी स्थिरता के नाम पर किसी भी बड़े से बड़े पदार्थ का बलिदान करने के लिये तैयार हैं। हिन्दी को हम राष्ट्रभाषा बनाते हैं इस विचार से नहीं कि राष्ट्र की शक्ति को या उसके मूल को किसी भी प्रकार दुर्बल करें। हिन्दी को राष्ट्रभाषा बनाना चाहते थे इसलिये कि उससे राष्ट्र की एकता के बन्धन प्रौढ़ एवं दृढ़ हों। भाषा के आधार पर एकता होती है। इतिहास इस बात का साक्षी है।

भारतवर्ष में बहुत कुछ राष्ट्रीयता का उदय अपनी पराधीनता के काल में हुआ। पराधीनता ने वैसे सब तरह से हमारा विनाश किया पर उसकी

कुछ देन है। एक देन उसकी नेशनलिज्म है जिसे कहें राष्ट्रवाद। इसको अनेक ऐतिहासिक कारणों से प्रोत्साहन मिला। हमारी राष्ट्रवाद की वह कल्पना प्रतिदिन जड़ पकड़ती गई और पुष्ट होती चली गई। इसमें एक बहुत बड़ा कारण अँग्रेजी का भी है। विभिन्न भाषा-भाषी अँग्रेजी के माध्यम से एक दूसरे के निकट आए और भारतीयता का उससे प्रबोधन हुआ। राष्ट्रीयता की जो धारा हमारे जीवन में बही उसमें प्रखरता आई, स्पष्टता आई, इसमें कोई सन्देह नहीं। फिर भाषा के नाम पर राष्ट्र की एकता स्थापित हुई। इसी उद्देश्य से हम हिन्दी को राष्ट्रभाषा बनाना चाहते थे और चाहते हैं। हिन्दी हमारी राष्ट्रीयता और राष्ट्र की एकता को छिन्न करे, उसका उन्मूलन करे, तो फिर उस लक्ष्य का ही विनाश हो जायगा, जिस लक्ष्य को लेकर हमने हिन्दी को राष्ट्रभाषा के पद पर प्रतिष्ठित किया। सुनीति बाबू की बात की अभी चर्चा हुई। वे विद्वान हैं, पंडित हैं। मैं आपसे कहता हूँ कि हठधर्मी हैं। देश के प्रति अनुराग में कोई कमी नहीं है। पर एक आवेश है एक ऐसा आग्रह है कि जिसका कोई आधार नहीं। हिन्दी को राष्ट्रभाषा के पद पर प्रतिष्ठित हमने किया या करने की चेष्टा की इस विचार से कि आज हमारे देश के १८ करोड़ १६ करोड़ व्यक्तियों की बोलचाल की भाषा हिन्दी है। यह सही है, कि बहुत सी दूसरी प्रादेशिक भाषाएँ हैं जिनके बोलने वाले भी अधिक हैं। लेकिन प्रदेश की जो सैकड़ों भाषाएँ हैं, उन सब को मिलाकर बोलने वाले पचास फीसदी से कम होंगे। देश की जनसंख्या के और एक भाषा के बोलने वाले जिसे आप हिन्दी कहते हैं, हिन्दी की संज्ञा प्रदान करते हैं, ५० प्रतिशत से अधिक हैं। यह क्या कम तर्क की बात थी और फिर हिन्दी के विषय में यह ऐतिहासिक तथ्य है कि वह सांस्कृतिक परम्परा और उसकी एक अविच्छिन्न शृङ्खला के रूप में हमें प्राप्त हुई है। देश ने आखिर इतिहास और संस्कृति के दिन तो देखे हैं और उसमें सफलता भी प्राप्त की है। संस्कृति की एक आत्मा होती है जिसकी अभिव्यक्ति भी भाषा के द्वारा होती है। जिस भाषा में देश की संस्कृति की, उस देश के पौरुष की, उस देश की वीरता की और उस देश की चिन्तन-धारा की, उस देश की विचार-परम्परा की, उस देश के जीवन और जगत के प्रति दृष्टिकोण की, उस देश के दर्शन, विज्ञान और कला की, उस देश की समस्त भावुकता, अनुभूति और भावना की अभिव्यक्ति हुई उस भाषा की अविच्छिन्न परम्परा में हिन्दी आई, इतिहास इस बात का साक्षी है। स्वभावतः हमारी यह धारणा हुई कि इसे हम राष्ट्र-भाषा के पद पर प्रतिष्ठित करें। किसी दूसरी भाषा से इसका विरोध नहीं। प्रादेशिक भाषाओं से इसका विरोध हो नहीं सकता। उसके स्वभाव के विपरीत है। क्यों हो, हो नहीं सकता। उसका विरोध अँग्रेजी से भी नहीं है। पर वह स्वतन्त्र भारत में अपना उचित स्थान ग्रहण करना चाहती है स्वतन्त्र भारत की भारतीय भाषा, राष्ट्रभाषा अँग्रेजी बनी रहे यह उस देश के लिये अपमान की बात है जिस ने भाषा-विज्ञान को जन्म दिया कि जिसकी तुलना में संसार का कोई व्याकरण नहीं टिकता। भाषा के, वर्ण के, अक्षरों के, ध्वनि के, समस्त वाक्यरचना के, वाक्यों के,

मूलों के, उन समस्त प्रश्नों को लेकर जिनका सम्बन्ध भाषा से होता है, भाषा का गंभीर विवेचन करके सहस्रों वर्ष पूर्व जिन सूत्रों की रचना की उन तक जगत का कोई व्याकरण आज तक पहुँचा नहीं। उस भाषा में ऊँचे से ऊँचे विचार व्यक्त करने की और शब्दों की रचना की क्षमता थी। आप संस्कृत को ले लीजिए प्रत्यय लगाते चलिए और उसकी धातुओं में कुछ विशेषता करते चलिए, शब्द के बाद शब्द बनते चलेंगे, एक ही रूप को लेकर उसमें अनेक प्रकार के उपसर्गों को लगाकर सारे भाव व्यक्त हो जायँगे; ऐसी भाषा जिस देश में रही हो, पनपी हो, उस देश के लोग कहें कि हम दरिद्र हैं, अकिंचन हैं, राष्ट्रभाषा का निर्माण नहीं कर सकते, यह राष्ट्र के अपमान की बात है। इसलिए आवश्यकता थी कि अपने देश की किसी न किसी भाषा को राष्ट्र-भाषा बनाते। बनाया उसी को जो ऐतिहासिक दृष्टि से इस पद पर प्रतिष्ठित हो सकती है और जो इतने लोगों की बोलचाल की और साथ ही लिखने पढ़ने और समझने की भाषा है जिनकी संख्या हमारे देश की जनसंख्या की ५० फीसदी से अधिक है और उस भाषा के द्वारा हिन्दी का स्थान राष्ट्र-भाषा के रूप में प्रतिष्ठित करके देश की एकता का स्वप्न देखा कि हम देश को एक सूत्र में बाँधेंगे। यदि भाषा के आधार पर राष्ट्रीय एकता हो सकती है तो उस एकता का संपादन करने के लिए सिवाय हिन्दी के और किसी में यह क्षमता नहीं, किसी का यह अधिकार भी नहीं है। इसीलिए उसे वहाँ प्रतिष्ठित कर दिया गया।

यह हमारा दुर्भाग्य है कि हिन्दीके प्रति विरोध उत्पन्न हो गया है। बहुत से स्थानों में हो गया और उसे हम दुःख की बात मानते हैं। बहुत सी बातों में विरोध हो गया है। यह सही है कि जो हमारी दक्षिण की भाषाएँ हैं, उनका मूल संस्कृत नहीं कदाचित् संस्कृत से भी प्राचीन भाषाएँ हैं। पर इसमें भी सदेह नहीं है कि उन भाषाओं के ऊपर संस्कृत का अमिट प्रभाव है और व्यापक और प्रचूर प्रभाव है। इन भाषाओं को आप देखिए मलयालम, एक ऐसी भाषा है जिसमें ७५ प्रतिशत संस्कृत के शब्द हैं। संस्कृत का प्रभाव हुआ, आदान-प्रदान हुआ और बंगला, गुजराती इत्यादि जितनी आपकी प्रादेशिक भाषाएँ हैं वह तो उसी स्रोत से, उसी मूल से आई हैं। वर्णमाला हमारे देश की एक है और इसी देश में नहीं इस देश से बाहर तक वर्णमाला पहुँच चुकी है। कोई कारण नहीं था कि विरोध उत्पन्न हो। लेकिन जैसा मैंने आपसे कहा कि कुछ हमारे भाग्य में ही ऐसा लिखा है कि हमेशा कुछ न कुछ विरोध उत्पन्न हो जाता है। अब दक्षिण में जो विरोध उत्पन्न हो गया है वह ऐसा नहीं जिसकी उपेक्षा की जाय। हमारे व्रजराज जी ने ठीक कहा है कि जो साहित्यिक यहाँ से दक्षिण गये उनको यह पता नहीं था कि कन्नड़ के किसी भी कवि का नाम बता सकें, यह हमारी दुर्बलता है, हमारी कमजोरी है। यह सही बात है। पर मैं आपसे यह निवेदन करूँ कि इससे कुछ यह न समझिए कि उन भाषाओं के प्रति हमारी कुछ उपेक्षा है। आज बात यह है कि कन्नड़ के कवियों के नाम तो जाने दीजिए हिन्दी के बहुत से कवि हुए हैं, स्कूल कालिजों के लड़कों से जरा पूछने तो दीजिए

मुझे, क्या वे हिन्दी कवियों के नाम जानते हैं और मैं आपसे कहता हूँ कि उनसे पूछिए आप कि भारत के छ: दर्शन के लेखक कौन थे, और यह उनसे पूछिये कि वेद के छ: ऋषियों के नाम बोलिए जो मंत्रों और ऋचाओं के ऋषि और सृष्टा माने जाते हैं। एक सलेक्शन बोर्ड में बैठे हुए, मैंने एक विद्यार्थी से पूछा कि गीता की रचना किसने की ? उन्होंने कहा श्रीकृष्ण ने। मैंने पूछा कि गीता किस ग्रथ का अंग है ? उन्हें इसका पता नहीं। और मैं आप से कहता हूँ कि यह पूछा गया। एक से पूछा कि त्रिवेणी क्यों नाम पड़ा ? उन्होंने कहा गंगा, यमुना और घाघरा मिलती हैं। अब यह हमारी शिक्षा की पद्धति का दोष है। नहीं जान सके, नहीं समझ पाते। अच्छे विद्यार्थियों से यह पूछ लीजिए कि चारों वेदों के नाम क्या हैं और नास्तिक दर्शन का हमारे यहाँ कोई आचार्य रहा है तो नाम क्या है ?

मैं एक जेल में था। वहाँ एक सज्जन मुझे मिले। वह आगरे के ही निवासी थे। यह सन् ४२-४३ नैनी की जेल की बात करता हूँ। उन्होंने हमसे कहा कि त्रिपाठी जी 'कालिदास वाज़ ए ग्रेट पॉयट' (Kalidas was a great poet)। हमने कहा क्या कोई नई रिसर्च की है आपने। आपको यह पता नहीं था। हमने पूछा—आज कैसे मालूम हो गया। तो उन्होंने किसी अँग्रेज लेखक का नाम बताया कि जिसकी किताब पढ़ रहे थे उसमें लिखा हुआ था कि 'अनपैरेलल' है वह कवि-आज तक नहीं हुआ। उसी पुस्तक में पढ़ा कि 'कालिदास' वाज़ ए ग्रेट पोयट्' तो आए हमको सुनाने के लिए कि 'कालिदास वाज़ ए ग्रेट पोयट्' यह हमारे देश की स्थिति है। संस्कृत जानना तो दूर रहा ग्रन्थों को ही पूछ लीजिए किसने लिखा। जो बड़े विद्वान भी हों, उनसे ही इन ग्रन्थों के ही नाम पूछ लीजिए कोई शायद खासतौर से इतिहास का विद्वान् हो तो जाने दीजिए। इन परंपराओं के संबंध में जितना अज्ञान हमारे देश में है उतना संसार के किसी देश के किसी नौजवान को अपने देश की परंपरा से नहीं होगा। लेकिन है तो उसमें उपेक्षा की बात नहीं है। वह है कि हम नहीं समझ सके हैं। हमारी पद्धति ने ही इस प्रकार का दोष उत्पन्न कर दिया है।

अब छोड़िए उन लोगों को, विरोध हो गया तो, आज हमारे भारतीय संविधान को जलाया जाय। अखबारों में आपने पढ़ा होगा कि वहाँ का एक दल भारत के संविधान की कापियाँ बाँट रहा है और कहता है जलाओ—तुलसीदास जी की रामायण जला दो। मैं एक बार मद्रास गया था, देश के दुर्भाग्य की बात है कि वहाँ रावण का मन्दिर बनाकर पूजा करते हैं क्योंकि आर्यों ने कहीं उपनिवेश बनाया था और यह विरोध खड़ा हुआ दक्षिण में। अब मालूम नहीं कि त्रेता में राम हुए भी कि नहीं हुए। इतिहास कहाँ तक उसके पीछे है। क्या हुआ क्या नहीं हुआ। आज उन गड़े हुए मुर्दों को उखाड़कर रावण को भी ले आये। हमारे संविधान को जलाया जा रहा है। इसके जलाने में हमें कोई आपत्ति नहीं लेकिन उसके पीछे जो भाव है—एक विघटनात्मक प्रवृत्ति, वह चिन्त्य है। अब मैं इस बात को स्वीकार करता हूँ कि यह वृत्ति है और यह भी स्वीकार करता हूँ कि इस वृत्ति का समाधान और इस वृत्ति की शान्ति का उत्तरदायित्व हिन्दी भाषा-भाषियों पर जितना है उतना किसी

दूसरे पर नहीं है। यदि हिन्दी को राष्ट्रभाषा के पद पर प्रतिष्ठित करके हम राष्ट्रीय एकता की स्थापना नहीं कर सकते तो हिन्दी को उसके पद पर प्रतिष्ठित करने का हमारा लक्ष्य ही विफल हुआ। मैं आपसे कहता हूँ कि मैं हिन्दी का परम भक्त हूँ, लेकिन मैं उन लोगों में से हूँ यदि हिन्दी के कारण हमारे देश की एकता विछिन्न हो रही हो, राष्ट्र की स्वाधीनता खतरे में पड़ रही हो तो एक नहीं हजार हिन्दी की बलिदान कर सकते हैं।

आपसे निवेदन कर रहा था कि यह बहुत महत्त्वपूर्ण बात है कि हमारा यह प्रयास होना चाहिए कि हमने अपनी भाषा को राष्ट्रभाषा के पद पर प्रतिष्ठित किया है, तो उस राष्ट्रीय एकता को प्रौढ़ करने वाला, स्थिर करने वाला उसका रूप बनायें। यह उत्तरदायित्व हमारे ऊपर है कि भाषा के नाम पर जो हृदय में उत्तेजनात्मक एवं आवेशात्मक भावनाओं का उद्रेक हुआ करता है, उसे हम न होने दें और उसके लिये यदि लोगों में कुछ भ्रान्तियाँ भी हमारे संबंध में हों तो भ्रान्तियों के निराकरण का उत्तरदायित्व भी हमारे ऊपर है। अपने कार्य से, अपने व्यवहार से तथा अपने ढंग से उन भ्रान्तियों का निराकरण करना हमारा कर्तव्य है। उन समस्त लोगों के ऊपर, जो हिन्दी भाषा-भाषी हैं और जिन्हें यह सौभाग्य प्राप्त हुआ है कि १८ करोड़ नरनारियों की भाषा इस देश की राष्ट्रभाषा बन सकी जो स्वयं उनकी मातृभाषा है, उसका उत्तरदायित्व है। इसी कारण मैं यह समझता हूँ कि जब तक हिन्दी के लिये संघर्ष करने की बात थी अपने नेताओं से भी मतभेद हुआ, उनके रोष का, क्रोध का भी थोड़ा भागी बना तब भी उनसे अपनी बात कहता गया नम्रतापूर्वक; और उनके मत से अलग ही होता रहा। क्योंकि मैं समझता था कि देश के राष्ट्रीय विकास, और राष्ट्रीय जीवन की अभिवृद्धि और उसकी प्रतिष्ठा के लिये यही मार्ग उचित है। मैं समझता था कि जो उसके विरुद्ध बात कर रहे हैं वह सही नहीं कह रहे। इस विचार से उनके मत के विरुद्ध भी चलने का साहस किया जो बड़ा भारी दुस्साहस था।

राष्ट्र-भाषा के प्रतिष्ठित हो जाने के बाद हिन्दी के प्रति मैं यह समझता हूँ कि आज हमारे दृष्टिकोण में आवश्यक परिवर्तन होना चाहिये। हिन्दी को अपने दुराग्रह और हठ का स्रोत नहीं बनाना चाहिए। आज हिन्दी के भक्तों के सामने, हिन्दी भाषाजनों के सामने बड़ा भारी काम है। खेद की बात है कि जब तक हम स्वतन्त्र नहीं हुए थे, हिन्दी राष्ट्रभाषा नहीं बनी थी, तब तक हिन्दी भारतीय राष्ट्रीय विद्रोह का प्रतीक थी। जब कभी आवाज उठाई जाती थी कि हिन्दी हमारी राष्ट्र भाषा है तो अँग्रेज का कान खड़ा होता था कि इसके पीछे भी कोई विद्रोह है। हिन्दी भी एक प्रतीक था हमारे देश की चेतना, प्रतिरोधात्मक भावना, सत्य और क्षमता का। युग का प्रभाव भी उस पर था। वह हमारी विद्रोहात्मक प्रवृत्ति को प्रोत्साहन देने वाली प्रबोधिनी शक्ति के रूप में आई, पर जब से देश स्वाधीन हो गया और हिन्दी राष्ट्रभाषा के पद पर प्रतिष्ठित हो गई, मैं हिन्दी के एक सेवक के नाते आपसे कहना चाहता हूँ कि हिन्दी की गति कुंठित हो गई। ऐसा लगता है कि उस विरोध काल में जो उसकी प्रतिभा रही आज जब उसे

बिना किसी बाधा के आगे बढ़ने का अवसर प्राप्त हुआ है, तो उसकी वह गति शिथिल हो गई। यह भी हमारे लिए एक दुःख की बात है। आज हमको इतना काम करना है और कई समस्याओं का समाधान करना है। हिन्दी राष्ट्रभाषा बन सके, उसके विरोध की प्रवृत्तियों का सम्मानपूर्वक समाधान हो। उसके अन्तर का हम समाधान कर सकें। इन कार्यों को हमें करना है। हिन्दी वस्तुतः राष्ट्रभाषा बने अपने स्वरूप से यह कार्य करना है। कानून बना देने से कोई भाषा राष्ट्रभाषा नहीं बना करती। संविधान में एक नहीं हजार धारा आप लगा दें कि हिन्दी हमारी राष्ट्रभाषा हो लेकिन उससे हिन्दी राष्ट्रभाषा नहीं बनेगी। राष्ट्र-भाषा को वह स्वरूप प्रदान करना पड़ेगा, जो राष्ट्रभाषा के लिए आवश्यक है। एक ऐसे बड़े देश के लिये जैसा भारत है राष्ट्रभाषा के स्वरूप में यह आवश्यकता होगी कि राष्ट्र का प्रत्येक अंग अपने को हिन्दी के निकट समझे। यह हमारी आवश्यकता है। यह कैसे हो ? बहुत बड़ी समस्या है। हिन्दी को आदान-प्रदान करना ही होगा। उसके द्वार को खोलना होगा। जितनी प्रादेशिक भाषाएँ हैं उनके निकट हिन्दी जाय। उन भाषाओं के भावों को, उनकी ध्वनियों को, उनके तत्त्वों को, उनके शब्दों को वह पचाने की कोशिश करे, जिससे उनकी समझ में यह आए कि हिन्दी जिस प्रकार के राष्ट्र-भाषा के स्वरूप में हमारे सामने आई है वह हमारी भाषा के अत्यन्त निकट है। हमारे लिए यह कठिन नहीं क्योंकि जैसा हमने कहा कि दक्षिण की भाषाओं के ऊपर भी संस्कृत का बड़ा अमिट प्रभाव है। हिन्दी की मूल भित्ति संस्कृत रहेगी। कोई कितना भी कुछ कहे सिवाय इसके दूसरी गति नहीं है कि संस्कृत मूल भित्ति में रहे। हम कह सकते हैं कि हिन्दी बंगला के निकट जाय, गुजराती के निकट जाय, मराठी के निकट जाय, उड़िया के निकट जाय, आसामी के निकट जाय, तेलुगू, तामिल, कन्नड़, मलयालम, सब के निकट जाय। उनके भावों को ले, उनके शब्दों को भी पचाने की चेष्टा करे और अपने शब्दों को उनकी भाषा में दे। इस आदान-प्रदान से हिन्दी एक अपेक्षित स्वरूप ग्रहण करेगी, यह एक दिन की बात नहीं होती है। ये प्रयास आज हिन्दी वाले करें जिससे कि जो अहिन्दी भाषा-भाषी हैं उनकी आत्मा का सान्निध्य आपकी आत्मा करे। ये अनुभव उनके अन्दर हो कि यह भाषा हमारे अत्यन्त निकट है। हमारे भावों की अभिव्यक्ति कर सके, हमारी वृत्तियों का प्रतिनिधित्व करने की शक्ति उसमें हो। हम जो चाहें विचारें जो चाहें अनुशीलन करें, यह उसी का एक स्वरूप है यह भाव उनके अन्दर से आये तब राष्ट्रभाषा बन सकेगी। वैसे ही राष्ट्रभाषा कानून बना देने से नहीं बनेगी। उसके लिये कई मार्ग हैं, उनमें से एक है, जो इस हिन्दी इन्स्टिट्यूट ने अपनाया है। यह आवश्यक है कि हमारी संस्था में समस्त प्रदेश की प्रादेशिक भाषाओं का अध्ययन-अध्यापन हो और हिन्दी भाषा-भाषी लोग अध्ययन करें।

आज हिन्दी भाषा-भाषियों को मिशनरी होने की जरूरत है। सब काम को छोड़कर के एक साधक की भाँति उन्हें हिन्दी के कार्य को ले करके अहिन्दी भाषा-भाषियों के सामने अत्यन्त नम्रता के साथ जाना है

उनके समक्ष अपनी भाषा को रखना है और इस प्रकार की भाषा का निर्माण करके चलना है कि बिना आपके कहे हुए कि हम हिन्दी तुम्हारे सिर पर लादने आ रहे हैं वे हिन्दी के पीछे चलें। ये चेष्टा हमारे इतिहास के प्राचीन काल में हुई हैं यदि न हुई होतीं तो इस प्रकार हमारे देश की भाषा सम्मुन्नत नहीं हुई होती। आखिर संस्कृत किसी समय समस्त भारत के लिखने-पढ़ने की और साहित्य की भाषा थी। आज वह प्रयास करने की आवश्यकता है। दूसरी प्रादेशिक भाषाओं के साहित्य की तुलना में हमको खड़े होने की आवश्यकता है। मैं स्वयं जानता हूँ कि दक्षिण की अनेक भाषाओं का साहित्य हमारे हिन्दी के साहित्य से कहीं अधिक समुन्नत है। इसे कौन स्वीकार नहीं करता। बंगाल का साहित्य इससे कहीं अधिक समुन्नत है। न भी समुन्नत हो तो भी आज हमको अहंकार या अभिमान करने की क्या आवश्यकता है। कहिये कि हाँ आपकी भाषा बहुत समुन्नत है। नम्रतापूर्वक हम जायें और हिन्दी का द्वार उदारतापूर्वक खुला रखें। मैंने देखा कि एक प्रयास होता है कि उर्दू के शब्दों को भी निकालो। आज मत्स्य-क्रय-विक्रय अधिकारी का दफ्तर देखा। और न जाने किस प्रकार के अनुवाद हम कर लेते हैं। कोई आवश्यकता नहीं है। क्यों न हम उन प्रचलित शब्दों को लें। अब द्विचक्रिय यंत्र बाइसिकल का अनुवाद करने से कोई फायदा है? बाइसिकल ठीक है। कोई इस प्रकार की आवश्यकता नहीं है। भाई, हिन्दी के द्वार को खोले रहो। जब भाषा का भंडार भरता है तब भाषाएँ विकसित होती हैं। जैसे आपने अभी पं० हरीशंकर जी की बात सुनी; कितने प्रकार के शब्दों को ग्रहण करके हिन्दी ने अपना विकास किया है। वह द्वार आज हम क्यों न खोले रहें, उदार बनें।

हिन्दी इंस्टिट्यूट से, मैं कहता हूँ, कि समस्त प्रादेशिक भाषाओं के कोश प्रकाशित होने चाहिए। तामिल के कोश हिन्दी में, कन्नड़ के कोश हिन्दी में, मलयालम के कोश हिन्दी में, गुजराती के, मराठी के बंगला के, आसामी के, उड़िया के कोश हिन्दी में प्रकाशित हों। हम देखें हिन्दी के पर्याय हैं, जहाँ कहीं इस प्रकार के शब्द हमारे बैठते हों भाव हमारा व्यक्त कर सकते हों उन शब्दों का हम प्रयोग करें। हिन्दी भाषा-भाषी जितने हैं वे इस प्रकार की भाषाओं का अध्ययन करें और वहाँ अपनी हिन्दी के समर्थन में उनकी भाषाओं में बोलने जाएँ। यदि हममें यह क्षमता हो जाय कि तामिल प्रदेश में जा करके तामिल भाषा में हम हिन्दी के पक्ष में अपने तर्क उपस्थित करें तो उसका कहीं अधिक प्रभाव होगा इसमें कहीं सन्देह है क्या? बंगला में बंगालियों के सामने हिन्दी के सम्बन्ध में अपने तर्क उपस्थित करें। इन भाषाओं को हम सीखें। उनके हृदय में यदि हिन्दी विषयक भ्रान्तियाँ उत्पन्न हो गई हों तो उन भ्रान्तियों के परिहार का यही प्रकार है। दूसरा उसका कोई तरीका नहीं। और उन भ्रान्तियों को हमें दूर करना चाहिए इस दृढ़ विश्वास के साथ कि सिवाय हिन्दी के राष्ट्रभाषा के पद पर दूसरी भाषा प्रतिष्ठित नहीं हो सकती। शीघ्र से शीघ्र हिन्दी को राष्ट्रभाषा का स्वरूप भी प्रदान करना है। स्थान तो हम प्रदान कर चुके। केवल

स्थान प्रदान कर देने से कोई राज्यभाषा राष्ट्र-भाषा नहीं हो जायगी । जब तक स्वरूप भी आप उसको प्रदान न करें । उसमें आत्मा की, प्राण की प्रतिष्ठा न कीजियेगा तब तक राष्ट्रभाषा नहीं हो सकती । यह प्रतिष्ठा हमको करनी है और उसका उत्तरदायित्व हमें उठाना है और यह हम तभी कर सकेंगे जब हम उदार बनें । आज हिन्दी-रक्षा के नाम पर एक आंदोलन चल रहा है । गुरुमुखी में जो भाषा लिखी गई है, मैं कहता हूँ कि गुरुनानक ने जो कुछ लिखा है वह हिन्दी में नहीं है क्या ?

नानक नन्हा ह्वै रह्यो जैसी नन्हीं दूब ।
और घास सूख जायेंगी दूब खूब की खूब ।।

यह लिखी गई गुरुमुखी है । अब वहीं हिन्दी की रक्षा का झगड़ा शुरू हो गया । आन्दोलन क्या है, जहाँ मौका मिले वहाँ लड़ो । मुसलमान मिले मुसलमान से लड़ो, तामिल मिले तो तामिल से लड़ो । जहाँ कोई न मिले तो अपनों से लड़ो और देश को छिन्न-भिन्न करके रख दो । यह कोई हिन्दी की सेवा है । भाषा को भाषा के स्थान पर प्रतिष्ठित करना है । राष्ट्र की एकता के लिए अथवा जो राष्ट्रभाषा स्थापित हो गई जिसे हमारी पराधीनता ने हमको दिया उसकी भी एक एक कड़ी एक एक शृङ्खला तोड़ कर विच्छिन्न कर दी जाय । यह प्रश्न है, जिस पर गम्भीरता के साथ विचार करना है और हमारे विद्वानों को इसमें नेतृत्व ग्रहण करना है । हिन्दी इंस्टिट्यूट की, आपके विद्यापीठ की सब से बड़ी विशेषता यह है और इस दिशा में इसको काम करना है । अब मैं चाहता हूँ कि इस दिशा में यह चले । आपका अनुसंधान होता रहे तथा हमारा प्रोत्साहन और हमारी सहायता आपको मिलती रहे । उच्चस्तरीय अध्ययन, अनुशीलन, पाठनपठन, गंभीर विवेचन वह सब आपका चलता रहे । हिन्दी के साहित्य के सम्बन्ध में, उसकी विभिन्न बोलियों के सम्बन्ध में, भाषा के विज्ञान के सम्बन्ध में, लोक-वार्ता के स्वरूप और साहित्य के सम्बन्ध में यह सारा कार्य आपका चलता रहे पर एक दिशा हमको यह ग्रहण करनी चाहिए कि किस प्रकार हिन्दी को उनके निकट ले जायें, जिनसे हम चाहते हैं कि स्वीकार कर लें कि हिन्दी राष्ट्रभाषा है । उसके उपाय पर विचार करना और उस दिशा में हमको कार्य करना है । भारत सरकार की हमको सहायता मिले । मैं आपको बताऊँ, अभी भारत सरकार के शिक्षा-मंत्री श्रीमाली जी लखनऊ गये थे । उनसे मुझे बातचीत करने का अवसर मिला, अभी कल ही की बात है । मैंने उनसे यह निवेदन किया कि इस दिशा में वे हिन्दी इंस्टिट्यूट की सहायता करें । हमारे यहाँ ऐसे लोग भी तैयार हो जायें जिन्हें हम भेजें तामिल प्रदेश में, तेलगू प्रदेश में, कन्नड़ प्रदेश में, गुजराती प्रदेश में, महाराष्ट्र प्रदेश में, आसाम में । यहाँ से हम अपने मिशनरी भेजें और वे हिन्दी का शिक्षण करने के लिए, हिन्दी का स्वरूप दिखाने के लिए, हिन्दी की भाषा उदार बना करके उसका उन्मुक्त द्वार लिये हुए ग्रहणशील बनकर उनके भावों और भावनाओं को ग्रहण करने के लिए जायें, और यह तब संभव है जब उन भाषाओं को सीख कर जायें । ऐसे लोगों को हम शिक्षित करें, उसके लिए हमें मदद मिले । निश्चय है कि जो लोग इस प्रकार शिक्षित होकर निकलेंगे हिन्दी के प्रसार में और

विकास में इसी प्रकार का कार्य करने के लिए भेजे जायें। इसके लिए हमें भारत सरकार से भी सहायता मिले। यह हमने उनसे कहा। कोश की भी एक बात है। हिन्दी में समस्त भाषाओं के कोश बन जायें। हमको मालूम तो हो और बुढ़उती में ५४...५५ वर्ष की उम्र में आप हमको पढ़ावें तब हमें ... पढ़ने का मौका न मिले लेकिन अगर आप कोश बनादें तो कदाचित् बहुतों को अवसर मिल जाय और हमारे ऐसे लोगों को भी अवसर मिल जाय कि कुछ तो भाषा के निकट आवें और आ सकेंगे। उन स्थानों से जो लोग हमारे पास आए हैं उनको हिन्दी की शिक्षा दें यह स्वीकार करते हुए कि उनका साहित्य बड़ा ऊँचा है। अगर आपका साहित्य ऊँचा है, तो उनका साहित्य ऊँचा मान लेने से वह नीचा न हो जायगा। यह मान्यता लेकर और मिथ्या अहंकार अथवा मिथ्या न भी हो सच्चा अहंकार भी बुरा है, जिससे अपने को दूर रखना ही है। नम्रता में बड़े गुण हैं हम नम्र रहें। झगड़े के रूप में, विरोध के रूप में, इस रूप में कि नहीं मानते हो तो उसे बलपूर्वक मनवालें. इस दृष्टि को छोड़करऔर दोष देने की रीति कि नहीं स्वीकार करते हो तो तुम बड़े भारी देशद्रोही हो गये बड़े विरोधी हो गये को छोड़कर यह कहने की आवश्यकता नहीं है। जैसा वातावरण है हमारे देश में उस में इस प्रकार की गलतियाँ भी हो जाती हैं तो उसके परिहार का उत्तरदायित्व अपना है, अकारण किसी को दोष देने से और उसके सिर पर कोई उत्तरदायित्व लादने से कोई फायदा नहीं है। इस प्रकार हिन्दी की दिशा में हम काम करें। इन्स्टिट्यूट की कल्पना यह है कि उधर के लोग आयें हिन्दी के निकट आयें, हिन्दी सीखें, अपने ग्रंथों का हिन्दी में अनुवाद करें। हमारे हिन्दी के लोग उनकी भाषा को सीखें हमारे हिन्दी के ग्रन्थों का अनुवाद वहाँ के विद्वान् अपनी भाषा में करें और हमारे यहाँ के विद्वान् उनकी भाषा के ग्रन्थों का अनुवाद अपनी भाषा में करें। सब जगह क्लासिक है हिन्दी की दिशा में कितना काम करना है। मैं आपसे कहता हूँ कि दशों वर्ष यदि अपना जीवन आप लगा दीजिए, तो भी हिन्दी के क्षेत्र में काम करने की कमी नहीं। कुछ तो ऐसी संस्थाएँ हैं, जिनको आज काम करना चाहिए वह लड़-लड़ कर तबाह हो गईं। मैं नाम नहीं लेता, अखिल भारतीय स्तर पर ही वह संस्था है। जब से स्वराज्य हो गया, हिन्दी राष्ट्रभाषा हो गई तब से यहाँ सिवाय झगड़े के कुछ नहीं। वे लड़ रहे हैं, जिन्हें यह काम उठाना चाहिए, जिनका नेतृत्व प्राप्त होना चाहिए था---हिन्दी की दिशा में। अब सरकार ने कुछ संस्थाएँ बनाई हैं। हिन्दी इन्स्टिट्यूट है ही। हमने अभी हिन्दी समिति की रचना की है। हिन्दुस्तानी एकेडेमी बहुत दिनों से पड़ी हुई थी, उसको पुनर्जीवित करने की चेष्टा कर रहे हैं। और सब के सामने काम बँटे हैं। तेजी के साथ काम करें, जिससे हिन्दी का साहित्य समुन्नत हो, हिन्दी का द्वार उन्मुक्त हो। हिन्दी उदारवृत्ति वाली, उदारचेता तथा उदारभावों वाली बने, प्रादेशिक भाषाओं के निकट जाय, वास्तव में राष्ट्रभाषा का स्वरूप ग्रहण करे, उसके द्वारा जीवन की समस्त वृत्तियों का अनुरंजन हो सके और उसके माध्यम से दुनियाँ के समस्त ज्ञान को प्राप्त करने की क्षमता

उत्पन्न हो । यह समस्त काम करना है और उसके पीछे बड़ा जीवन, बड़ी तपस्या और बड़ी साधना लगानी है । बड़ी नम्रतापूर्वक, उदारतापूर्वक हम उस कार्य को कर सकते हैं । आपने हिन्दी को यदि राष्ट्र-भाषा का स्वरूप प्रदान कर दिया और वस्तुतः वह राष्ट्रभाषा के रूप में स्वीकार कर ली गई तो भारत की एकता और राष्ट्रीयता अभेद्य हो जायगी । भारत यदि राष्ट्रीयता के एक सूत्र में आबद्ध हुआ तो इस धरित्री के विरुद्ध संसार की किसी शक्ति को आँख उठाने की क्षमता नहीं रहेगी । आज वही अवसर है और उसका उत्तरदायित्व हिन्दी भाषा-भाषियों पर होगा । हमारा यह विद्यापीठ इस दिशा में सहायक हो । आपके अध्यक्ष जी से मैं स्वयं इस विषय में कुछ बात करनेवाला हूँ । मैं चाहता हूँ कि कम से कम संस्था का एक स्वरूप ऐसा बने, जिससे हम सबको प्रेरणा मिले । और यह हिन्दी का बड़ा भारी कार्य है । अब हिन्दी का कार्य हिन्दी का कार्य नहीं है । राष्ट्रभाषा का कार्य है । भावी संतति का कार्य है । देश की स्वाधीनता के प्रश्न का कार्य है । हमारे सम्मान, हमारे वैभव, हमारी स्वतंत्रता के संरक्षण का कार्य है । उस कार्य का हम सम्पादन कर सकें और इस प्रकार आज इतिहास जिस बात की हमसे माँग कर रहा है उस माँग की हम पूर्ति कर सकें, यह हमारा लक्ष्य है । हम समझते हैं कि इस दिशा में हिन्दी विद्यापीठ आप लोगों के सहयोग से, भगवान की कृपा से सफल होगा और यह चेतना उसे उपलब्ध होगी, जिसका प्रबोधन उन समस्त हिन्दी भाषा-भाषियों और राष्ट्र-प्रेमियों के हृदय में होना आवश्यक है, जिनकी मातृभाषा हिन्दी नहीं है और जो इस बात के इच्छुक हैं कि राष्ट्रभाषा हिन्दी राष्ट्रीय एकता का सम्पादन करने में और उस लक्ष्य को सिद्ध करने में समर्थ हो ।

मैंने आपका बहुत समय ले लिया, जिसके लिये मैं क्षमा चाहता हूँ और यह आशा करता हूँ कि विद्यापीठ के कार्य में आप सबकी सहायता मिलेगी तथा अधिकाधिक लोगों को यह आकृष्ट करेगा । हमारे विद्वानों को भी, पंडितों को भी, छात्रों को भी, विद्यार्थियों को भी—न केवल इस दृष्टि से कि हम भाषा-विज्ञान का अध्ययन करें—वह तो रहेगा ही—पर इस दृष्टि से भी अध्ययन करेंगे कि हमारी राष्ट्रभाषा राष्ट्रभाषा का स्वरूप ग्रहण कर सके और उसके माध्यम से देश की प्रभुता, उसकी स्वतन्त्रता स्थिर और सुदृढ़ हो सके । मैं आपको पुनः धन्यवाद देता हूँ ।

डॉ० व्रजवासीलाल श्रीवास्तव

# करुणरस की मनोविज्ञानाश्रित शास्त्रीय समीक्षा

खाद्यरस जिस प्रकार शरीर का पोषण तथा रसना की तृप्ति का साधन होता है उसी प्रकार काव्यरस ग्राभ्यंतर मानस का पोषक तथा हृदय की रसना की तृप्ति करता है।[1] इस प्रकार भौतिक खाद्यसामग्री के साथ मानसिक भाव सामग्री मानव जीवन के लिए समान रूप से अपेक्षित है। भाव सामग्री मानस की आनन्दानुभूति का साधन है जिसे जीवन की झलक, जीवन का आधार, जीवन की पूर्णता आदि नामों से प्रकट किया जा सकता है। जीव सच्चित् स्वरूप है और सच्चिदानन्द स्वरूप होने की उसकी लालसा है। इस आनन्द प्राप्ति को ही यदि जीवन का लक्ष्य कह दिया जाय तो कोई अत्युक्ति न होगी। रसानुभूति के समय मन लौकिक राग-द्वेष से विरत होकर सत्त्व स्थिति को प्राप्त कर लेता है जिसे शास्त्रकारों ने रजोगुण और तमोगुण से अस्पृष्ट मन की स्थिति कहा है।[2] आचार्य शुक्ल ने इसी को हृदय की मुक्तावस्था नाम दिया है।

"मैं इस दशा को हृदय की मुक्त दशा मानता हूँ—ऐसी मुक्त दशा जिसमें व्यक्ति बद्ध घेरे से छूट कर अपनी स्वच्छंद भावात्मिका क्रिया में तत्पर रहता है।"[3]

आनन्दानुभूति मूल रूप में अविभाज्य होती है। अतः रस के विभेद—शृंगार, हास्य, करुण आदि उस आनन्दानुभूति के प्रकारान्तर मात्र हैं। जिस प्रकार

१—'यथा हि गुडादिभिर्द्रव्यैर्व्यञ्जनैरौषधिभिश्च षाडवादयोरसा निर्वर्त्यन्ते, तथा नानाभावोपगता अपि स्थायिनो भावा रसत्वमाप्नुवन्ति............यथा हि नाना व्यञ्जन-संस्कृतमन्नं भुञ्जाना रसानास्वादयन्ति सुमनसः पुरुषा हर्षादींश्चाप्यधिगच्छन्ति तथा नाना भावाभिनयव्यञ्जितान् वागङ्ग सत्त्वोपेतान् स्थायिभावानास्वादयन्ति सुमनसः प्रेक्षकाः। "नाट्यशास्त्र छठा अध्याय, श्लोक ३१ के बाद उद्धृत। पृ० २८७-२८९ गायकवाड़ सं० ५६

२—"रजस्तमोभ्यामस्पृष्टं मनः सत्त्वमिति स्मृतम्" सा० द०—तृ० परि० श्लोक २६ के बाद उद्धृत पृ० ८७ क्षेमरान सं० १९७३।

३—चिंतामणि दूसरा भाग प्र० सं०—पृ० २०५

लौकिक षट् व्यंजनों की आस्वादजन्य भिन्न-भिन्न नामरूपात्मकता है किन्तु मूलतः उनके द्वारा उनके उपभोक्ता को एक रस अथवा एक आनन्द की ही प्राप्ति होती है, ठीक उसी प्रकार साहित्य के रसों की विभिन्नता भी एक रस या एक आनन्द की प्राप्ति कराती है। यहाँ भी लक्ष्य आनन्द प्राप्ति है। अतएव करुणरस के द्वारा रसनिष्पत्ति के साधनों में अन्य रसों के साधनों से स्पष्ट भेद मिलेगा किन्तु करुण रस के साधनों द्वारा जो आनन्दानुभूति संभव होगी वह अन्य रसों से प्राप्त आनन्दानुभूति से किसी प्रकार भी भिन्न नहीं हो सकती। अस्तु करुणरस के इन साधनों की व्याख्या ही करुणरस की परिभाषा का क्षेत्र है।

करुण रस की विभिन्न परिभाषाएँ आचार्यों द्वारा समय समय पर दी गई हैं। ऐतिहासिक कालक्रम में उनका अवलोकन यहाँ अप्रासंगिक न होगा।

भरत के अनुसार इष्टवध दर्शन से अथवा प्रतिकूल वचनों के श्रवण आदि विशेष भावों से करुण उत्पन्न होता है।[४]

अश्रुमोचन, रोदन, मोह प्राप्ति, विलाप, दैवनिन्दा आदि के द्वारा करुण रस का अभिनय होना चाहिए।[५]

भरत ने व्याख्या करते हुए आगे लिखा है—

शोक स्थायी भाव से करुण रस उत्पन्न होता है। यह शाप, क्लेश, इष्ट नाश, वियोग, वैभवनाश, वध, बन्धन, विप्लव, विनाश, दुख-प्राप्ति आदि विभावों से उत्पन्न होता है। अश्रुपात, विलाप, मुखसूखना, विवर्णता, अंग-शिथिलता, दीर्घ श्वास-प्रश्वास, स्मृतिलोप आदि अनुभावों द्वारा अभिनय करना चाहिए। निर्वेद, ग्लानि, चिन्ता, औत्सुक्य, आवेग, भ्रम, मोह, श्रम, भय, विषाद, दैन्य व्याधि, जड़ता, उन्माद, अपस्मार, त्रास, आलस्य, स्तम्भ, वेपथु, विवर्णता, अश्रु, स्वरभेद आदि इसके व्यभिचारी हैं।[६]

काव्यादर्शकार दण्डी के अनुसार इष्टनाश आदि के कारण चित्त की व्याकुलता ही शोक कहलाती है।[७]

---

४—"इष्टवधदर्शनाद्वा विप्रियवचसा संश्रवाद्वापि।
एभिर्भावविशेषैः करुणरसो नाम संभवति।। ना० शा० ६/६२ वही पृ० ३१८

५—"सस्वन रुदितैर्मोहागमैश्च परिदेवितैर्विलपितैश्च।
अभिनेयः करुणरसो देहायासाभिघातैश्च।। ना० शा० ६/६३ वही पृ० ३१८

६—"अथ करुणो नाम शोकस्थायिभावप्रभवः। स च शापक्लेशविनिपतितेष्टजन विप्रयोगविभवनाशवधबन्धविद्रवोपघातव्यसनसंयोगादिभिर्विभावैः समुपजायते। तस्याश्रुपातपरिदेवनमुखशोषणवैवर्ण्यस्रस्तगात्रतानिश्वासस्मृतिलोपादिभिरनुभावैरभिनयः प्रयोक्तव्यः। व्यभिचारिणश्चास्य निर्वेदग्लानिचिन्तौत्सुक्यावेगभ्रममोहश्रम भयविषाद दैन्यव्याधिजड़तोन्मादापस्मारत्रासालस्यमरणस्तम्भवेपथुवैवर्ण्याश्रुस्वर भेदादयः।" ना० शा० वही पृ० ३१७

७—"इष्टनाशादिभिश्चेतोवैक्लव्यं शोकः उच्यते" पृ० २६८ भण्डारकर' ३८

दशरूपककार धनंजय के अनुसार इष्टनाश अथवा अनिष्ट की प्राप्ति से शोक संतप्त आत्मा करुण रस अनुभव करती है। निश्वास, उच्छ्वास, रोदन, स्तम्भ, प्रलाप, अपस्मार, दैन्य, व्याधि, मरण, आलस्य, संभ्रम, विषाद, जड़ता, उन्माद, चिन्ता आदि व्यभिचारी होते हैं।[८]

सरस्वतीकण्ठाभरणकार श्री भोज के अनुसार (रस जो) मूर्च्छा को उत्पन्न करता है, विलाप को उत्पन्न करता है, मृत्यु के लिए मन को प्रेरित करता है तथा चित्त में दुःख उत्पन्न करता है करुण कहलाता है।[९]

काव्यानुशासनकार श्री हेमचन्द्र के अनुसार इष्टनाशादि विभाव, दैवनिन्दा आदि अनुभाव तथा दुःखमय व्यभिचारियों से उत्पन्न शोक करुण है।[१०]

साहित्यदर्पणकार श्री विश्वनाथ कविराज के अनुसार इष्टनाश एवं अनिष्ट प्राप्ति से करुण नामक रस होता है। इसका वर्ण कपोत तथा इसके देवता यम कहे गए हैं। शोक स्थायी भाव है। शोच्य आलंबन, दाहादि उद्दीपन दैवनिन्दा, भूमिपतन, क्रन्दन आदि अनुभाव, वैवर्ण्य, उच्छ्वास, निश्वास, स्तम्भ, प्रलाप, निर्वेद, मोह, अपस्मार, व्याधि, ग्लानि, स्मृति, श्रम, विषाद, जड़ता, उन्माद, चिन्ता आदि व्यभिचारी होते हैं।[११]

रसगंगाधर प्रणेता पण्डितराज जगन्नाथ कहते हैं कि पुत्र आदि के वियोग या मृत्यु आदि से उत्पन्न चित्त की व्याकुलता शोक कहलाती है।[१२]

---

८—"इष्टनाशादनिष्टाप्तौ शोकात्मा करुणोऽनुतम्
निःश्वासोच्छ्वासरुदितस्तम्भप्रलपितादयः।" ४/८१ पृ० १०९ पाण्डुरंग' ४१

९—"मूर्च्छा विलापौ कुरुते कुरुते साहसे मनः।
करोति चित्तं दुःखेन योऽसौ करुण उच्यते॥" पंचम परि०/७६

१०—"इष्टनाशादि विभावो दैवोपालम्भाद्यनुभावो दुःखमय व्यभिचारी शोकः करुण" अ० २ सू० १२

११—"इष्टनाशादनिष्टाप्तेः करुणाख्यो रसो भवेत्।
धीरैःकपोत वर्णोऽयं कथितो यमदैवतः॥ ... २५२ पृ० २६७ वही
शोकोऽत्र स्थायिभावः स्याच्छोच्यमालम्बनं मतम्।
तस्य दाहादिकाऽवस्था भवेदुद्दीपनं पुनः॥ ... २५३
अनुभावा दैवनिन्दा भूपातक्रन्दितादयः।
वैवर्ण्योच्छ्वासनिःश्वास स्तम्भप्रलपनानि च॥ ... २५४
निर्वेदमोहोपस्मार व्याधिग्लानिस्मृतिश्रमाः।
विषादजड़तोन्माद चिन्ताऽऽद्या व्यभिचारिणः॥ ... २५५

१२—"पुत्रादिवियोगमरणादिजन्मा
वैक्लव्याख्यश्चित्तवृत्तिविशेषः शोकः। "पृष्ठ १३० विद्याभवन बनारस" ५५

वाग्भटालंकारकार वाग्भट्ट के अनुसार करुण रस शोक से उत्पन्न होता है। भूपात, रोदन, वैवर्ण्य, मोह, निर्वेद, प्रलाप, अश्रु व्यभिचारी होते हैं।[१३]

रामचन्द्र तथा गुणचन्द्र नाट्यदर्पणकारों के अनुसार—मृत्यु, बन्ध, धनभ्रंश शाप और आपत्ति से करुण उत्पन्न होता है। अश्रु विवर्णता, दैवनिन्दा आदि से उसका अभिनय होता है। अश्रु विवर्णता, निश्वास, मुखसूखना, स्मृतिनाश, शरीरशिथिलता आदि अनुभाव होते हैं। दैवनिन्दा निर्वेद, ग्लानि, चिन्ता, औत्सुक्य, मोह, श्रम, भय, विषाद, दैन्य, व्याधि, जड़ता, उन्माद, अपस्मार, आलस्य, मरण, स्तम्भ, कम्प, वैवर्ण्य, स्वर-भेद आदि व्यभिचारी भाव होते हैं।[१४]

आचार्य केशव—कहते हैं कि सुख के सब उपाय जहाँ छूट जाते हैं, वहाँ करुणरस स्वतः ही आकुल होकर उत्पन्न होता है।[१५]

देव—कहते हैं कि इष्टनाश तथा अनिष्ट को सुनकर मन में शोक उत्पन्न होता है, चार प्रकार से आशा छूट जाती है इस स्थिति को करुण कहते हैं।[१६]

महाराजकुमार श्री बाबूसिंह हिन्दूपति—कहते हैं कि जिसके सुनने से शोक चित्त करुणामय हो जाता है उस कविता को कवि करुणरस की कविता कहते हैं।[१७]

---

१३—"शोकोत्थः करुणो ज्ञेयस्तत्र प्रणतरोदने।
वैवर्ण्यमोहनिर्वेदप्रलापाश्रूणि कीर्तयेत्॥
५/२१ खेमराज सं० १९९२

१४—"मृत्यु बन्ध धनभ्रंशशाप व्यसन संभवः
करुणोऽभिनयस्तस्य वाष्प वैवर्ण्य निन्दनैः" तृ० विवेक/११६
शापोऽभिमत वियोगहेतुर्दिक प्रभाववतः आक्रोशः व्यसनमनर्थः। अनेन देशोच्चाटनादेर्जातं विप्लवजातं संग्रह्यते। एभ्यो विभावेभ्यः शोक स्थायी करुणो रसः सम्भवति। वाष्पवैवर्ण्याभ्यां निःश्वासमुखशोष स्मृतिलोपस्रस्तगात्रताऽऽदयोऽनुभावाः सूचिताः। निन्दनमात्मनोदैवस्यान्यस्य चोपालम्भः। अनेन रुदितप्रलपितोरस्ताडनादि गृह्यते। व्यभिचारिणस्तस्य निर्वेदग्लानिचिन्तौत्सुक्य मोह श्रम भय विषाद दैन्य व्याधि जड़तोन्मादापस्मारालस्य मरणस्तम्भवेपथु वैवर्ण्याश्रु स्वरभेदादय इति" पृष्ठ ३४, सं० १९२९ ओरियन्टल इंस्टीट्यूट बड़ौदा।

१५—"छूटि जात केशव जहाँ, सुख के सबै उपाय।
करुणारस उपजत तहाँ, आपुनते अकुलाय॥
"रसिकप्रिया सं० १९७१ खेमराज श्रीकृष्णदास बं०

१६—बिनसे ईठ अनीठि सुनि मन मे उपजत सो (ग)
आसा छूटे चारि विधि, करुन बखानत लोग॥
"शब्द रसायन, हि० सा० स०, प्रयाग

१७—शोक चित्त जाके सुने करुणामय ह्वै जाय।
ता कविताई को कहै, करुणारस कविराय॥ काव्यनिर्णय

प्रवृत्तिवादी मैकडूगल के सिद्धान्तों के अनुकूल आचार्यों शुक्ल ने रस का विवेचन निम्नलिखित रूप में किया है—

१. भाव दशा, २. स्थायी दशा, ३. शील दशा।

शोक के संबंध आचार्य में शुक्ल के विचार इस प्रकार हैं।[१८]

| | | |
|---|---|---|
| एक अवसर पर एक आलंबन के प्रति | अनेक अवसरों पर एक आलंबन के प्रति | अनेक अवसरों पर अनेकों आलंबनों के प्रति |
| भाव दशा | स्थायी दशा | शील दशा |
| शोक | संताप | खिन्नता |

आगे भावों के वर्गीकरण में उन्होंने दो प्रकार के भाव माने हैं—(अ) सुखात्मक, (आ) दु:खात्मक।

सुखात्मक के अन्तर्गत—राग, हास, उत्साह, आश्चर्य तथा दु:खात्मक के अन्तर्गत शोक, क्रोध, भय एवं जुगुप्सा रखे हैं। शोक के संबंध में दिया गया उनका विवरण निम्न लिखित है—

| | |
|---|---|
| चेतन धारणा ( आलंबन ) (Cognition) | पीड़ित, गत या नष्ट इष्ट व्यक्ति या वस्तु अथवा कोई अत्यन्त अनिष्ट। |
| इच्छा या संकल्प (Conation) | दु:ख के भार से मुक्त या हलके होने की। |
| गति या प्रवृत्ति ( कायिक ) (Tendency) | सिरछाती पीटना, भूमि पर गिरना, रोना। |
| लक्षण ( सात्त्विक ) (Symptom) | अश्रु, वैवर्ण्य, गद्गद् कण्ठ, उच्छ्वास, निश्वास। |
| भाव (Emotion) | शोक |
| संचारी भाग ( दु:खात्मक ) | लज्जा, असूया, अमर्ष, अवहित्था, त्रास, विषाद, शंका, चिन्ता, नैराश्य, उग्रता, मोह, अलसता, उन्माद, असंतोष, ग्लानि, अपस्मार मरण, व्याधि। |
| ( उभयात्मक ) | आवेग, स्मृति, विस्मृति, दैन्य, स्वप्न, चित्त की चंचलता। |

पाश्चात्य मनोवैज्ञानिकों में से वन्डट का भाव विभाजन करुणरस की परिभाषा के अन्तर्गत आ सकता है। शोक का अध्ययन करते हुए वन्डट ने स्थायी भाव शोक का संभावित संचारी भावों सहित एक विभाजन-रेखाचित्र दिया है जो शोक के व्यापक क्षेत्र तथा अपेक्षित अंग-प्रत्यंगों का प्रकटीकरण करता है। वन्डट द्वारा दिए गए रेखाचित्र के आधार पर शोक का निम्न रेखाचित्र प्रस्तुत किया जा सकता है।

१८—रसमीमांसा सं० २००६, भाव की दशाएँ—पृष्ठ १८६।
वही —भाव-वर्गीकरण— „ १९३।
वही — संचारीभाव— „ २००।

अ—शुद्ध स्वसंवेद्य

शोक

- शुद्ध स्वसंवेद्य
  - बाह्य भावात्मकविरतमुख उत्तेजक से संबंधित उदास, निराश
- मध्यगत रूप
  - शोक या शोकानुभूति
- स्वसंवेद्य-परसंवेद्य
  - बाह्य भावात्मक क्रिया-शील उत्तेजक से संबंधित वेदना, चिन्ता

आ—पर संवेद्य

- विराग ( जड़ता )
  - अरुचि
    - विमुख, अनिच्छुक
- खेद ( अप्रसन्नता )
  - दुःख, संताप व्याकुलता, पीड़ा, चिढ़ाना, खिझाना
  - द्वेष, क्रोध, अमर्ष

---

Wundtian classification of Emotion-The Psychology of Feeling And Emotion Ed, 36, Page – 117.

A—Subjective Forms

Grief

- Purely subjective (Relationship to an outward or external emotional stimulus retiring) Melancholy Dejection
- Intermediate form Sorrow Sadness
- Subjective-Objective (Relationship to external emotional stimuli prevalent) Affliction worry

B—Objective Forms

- Aphathy
  - oscillation about indifferent point with tendency toward side of unpleasantness
    - Disgust Loathing
- Displeasure
  - Subjectively directed (with prevalent subjective fusions of feeling)
    - Disgust Loathing
    - Annoyance Vexation Exasperation
  - objectively directed ( with prevalent objective assimilation of feelings) Anger, Wrage Wrath

उपर्युक्त परिभाषाओं के आधार पर एक संक्षिप्त सारिणी बनाई जा सकती है जो समूहालम्बनात्मक रूप में करुणरस की शास्त्रीय परिभाषा कही जा सकती है। इस परिभाषा के अंगप्रत्यंगों का विवेचन आगे किया जायगा।

**करुणरस की परिभाषा—**

| | |
|---|---|
| देवता | यम। |
| रंग | गृह कपोत के समान। |
| आलंबन | इष्टनाश एवं अनिष्ट प्राप्ति। प्रिय बन्धु बान्धव एवं पुत्रादि का मरण एवं वियोग। धन वैभव का नाश। पराजय, पराभव, बन्धन एवं वध। धर्म अपघात एवं शाप। क्लेश एवं दु:ख प्राप्ति। |
| उद्दीपन | प्रिय जनों के दाह कर्म, वस्त्रादि के दर्शन, गुण-कथन, भूतकालीन वैभव का स्मरण एवं कथन, वर्तमान असहायावस्था, बन्धन के साधन, विजेता के आनन्द मंगल। |
| अनुभाव | भूमिपतन, रोदन, दैव-निन्दा, आत्मनिन्दा, भाग्य-निन्दा आदि तथा विवर्णता, उच्छ्वास, स्तम्भ, प्रलाप, स्वरभंग, अश्रु, मुखसूखना, कम्प आदि। |
| संचारी | निर्वेद, व्याधि, ग्लानि, स्मृति, विषाद, जड़ता, उन्माद, चिन्ता, मोह, अपस्मार, भ्रम, दैन्य, आलस्य, मरण, शंका आवेग, त्रास, औत्सुक्य, भय, असूया, लज्जा, अमर्ष, अवहित्था, नैराश्य, उग्रता, असंतोष, विस्मृति, स्वप्न, चित्त की चंचलता आदि। |
| स्थायी भाव | शोक |

**करुण रस के देवता और रंग**—किसी वस्तु की चित्रात्मक एवं सुग्राह्य अभिव्यक्ति के लिए प्रतीक रूप में रूप एवं धर्म-साम्य के आधार पर समगुण धर्म स्वभाव वस्तुओं के उदाहरण दिए जाते हैं। रस के देवता तथा रंग के निर्णय में भी यही बात प्रतिलक्षित होती है। साथ ही देवता को किसी विषय के अधिष्ठाता के रूप में भी मानते हैं। इस रूप में भी देवता की तद्रूपात्मकता एवं तदाकार वृत्ति की ओर संकेत रहता है। इस संबंध में उपाध्याय जी के भी ऐसे ही विचार हैं—

"जिस रस का जो गुण, स्वभाव और लक्षण होता है, उसका देवता प्रायः उन्हीं गुणों और लक्षणादि का आदर्श होता है, क्योंकि उसी के आधार से उस रस की कल्पना होती है।" (रसकलस—पृष्ठ ७४)

अतः करुण रस के देवता यम हैं—इसका आशय यह है कि करुण रस के (आश्रय के) गुणकर्मस्वभाव यम के सदृश होंगे। करुणरस का वर्ण कपोतचित्रित है, इसका तात्पर्य यह है कि करुण रस के आश्रय की बाह्य—अभिव्यंजना (अनुभाव) कपोत वर्ण के समान होगी।

यम के दो रूप प्रसिद्ध हैं—

१—उपनिषद् काल के यम।

२—पौराणिक काल के यम।

उपनिषद् काल के यम एक आचार्य के रूप में सम्मुख आते हैं। वे ब्रह्मज्ञान के प्रकाण्ड पण्डित हैं। नचिकेता उपाख्यान उनके इस व्यक्तित्व का प्रमाण है। यम को मृत्यु नाम से भी संबोधित किया गया है। नचिकेता के पिता उसे मृत्यु को देते हैं। कहना न होगा कि यह मृत्यु "मरण" का पर्याय ही है किन्तु इस मृत्यु में निम्नलिखित विशेषता है—

१—नचिकेता यम का अतिथि समझा जाता है।

२—अपने आतिथ्य सत्कार स्वरूप नचिकेता वरदान प्राप्त करता है।

३—नचिकेता पुनः भूलोक को लौट आता है।

डा० मूर ने ऋगवेद के आधार पर यम का निम्न लिखित वर्णन दिया है—

"निरभ्र दिवस के क्षेत्र में जहाँ यम प्रत्येक आनन्द को प्रदान करते हैं और प्रत्येक कामना संतुष्टि प्राप्त करती है वहाँ तुम्हारी आनन्दानुभूति कभी क्षीण न होगी[१९]।"

यम का दूसरा रूप पौराणिक काल से प्रारम्भ होता है तथा आज भी उसी रूप में प्रचलित है। इस काल के यम वैदिक काल के यम से नितान्त भिन्न हैं। जहाँ वैदिक काल के यम ब्रह्मज्ञानी हैं तथा पुण्यात्मा व्यक्तियों के लिए मंगलदाता तथा

१९. In those fair realms of cloudless day.
Where yama every joy supplies.
And every longing satisfies.
Thy bliss shall never know decay.
Dr. Muir-Hindu Mythology by W. J. Wilkins.

उनकी श्रद्धा एवं भक्ति के आधार हैं वहाँ परवर्ती काल के यम भयावह राक्षसेन्द्र हैं। वह नरयान में आरुढ़ हैं तथा खड्ग खेटक धारण किए हुए राक्षसों से आवृत्त हैं[२०]।

उपनिषद् काल के यम ब्रह्मज्ञानी हैं। ब्रह्मज्ञान के अन्तर्गत आत्मज्ञान मुख्य विषय है। इस आत्मज्ञान की प्राप्ति करुण रस से संभव है। भौतिक जगत में मानव अपनी असहायावस्था तथा प्रकृति के नियमों के समक्ष अपनी कटु विवशता का अनुभव उस समय करता है जब वह देखता है कि इष्टनाश तथा अनिष्टप्राप्ति के संबंध में वह कुछ भी व्यतिक्रम नहीं कर पाता। अपनी विवशता में वह अति कातर हो उठता है। इस विवशता एवं कातरता की स्वानुभूति के कारण अन्य प्राणियों के साथ उनके इष्टनाश तथा अनिष्टप्राप्ति के समय उसकी सहानुभूति हो उठना अति स्वाभाविक है। उसकी यह दशा यम के इस प्रथम रूप से पूर्ण मेल खाती है। साथ ही यहाँ यह स्पष्ट कर देना भी आवश्यक है कि घटना कालक्रम में नाट्यशास्त्र की रचना पौराणिक काल से पूर्व हो चुकी थी। अतएव यम के उपनिषद् काल के रूप की ही प्रतिष्ठा नाट्यशास्त्र में हुई होगी।

**करुण रस का रंग**—कपोत वर्ण के समान माना गया है। कपोत से यहाँ गृह कपोत से तात्पर्य है जिसका वर्ण मलीन होता है। जैसा कि अन्य रसों के उदाहरणों से प्रकट है आचार्यों का अभिप्राय कपोत के रंग मात्र से है—स्वयं कपोत से नहीं है। अतएव कपोत की भावभंगिमा तथा सरलता से यहाँ कोई प्रयोजन नहीं है। मलिन स्वतः कोई रंग नहीं होता। इसलिए कपोत के उदाहरण द्वारा मलिनता का प्रकटीकरण किया गया है।

भरत ने शोकदृष्टि का मनोवैज्ञानिक अध्ययन करते हुए लिखा है।

"शिथिल पलक, जलपूर्ण नेत्र, अवरुद्ध नेत्र तारे—इस प्रकार मन्द संचारिणी दीनता प्रकट करनेवाली शोकदृष्टि कही जाती है।"[२१]

---

२०. राक्षसेन्द्रं प्रवक्ष्यामि निर्ऋतं ( तिं )
नैर्ऋतेः ( ती ) स्थितम् ।
नरयानसमारूढं रक्षोभिर्बहुभिर्वृतम्
कालमेघ (घ) समाभासं खड्ग खेटक धारिणम् "
सोमेश्वर-मानसोल्लासः—७८४, १६३६ ई०

२१. अवस्रस्तोत्तरपुटा
रुद्धतारा जलाविला
मन्द सञ्चारिणी दीना
सा शोकेदृष्टिरुच्यते"
ना० शा० ८-५६ गायकवाड़' ३४ प० ६

शोक दृष्टि के उपर्युक्त वर्णन द्वारा करुण रस के आश्रय की मलिनवर्णता स्पष्ट है। इस प्रकार करुणरस के वर्ण का कपोतचित्रित कथन, शोकाकुल व्यक्ति का सजीव चित्र खींचने का प्रयास है तथा हमारी भावनाओं को शब्द के साथ रूप देने की व्यवस्था की गई है। प्राचीनों की संभवतः यही धारणा रही होगी कि वर्ण के प्रतीक द्वारा भाव जगत के तथ्यों को सुग्राह्य रूप दिया जाय तथा कहना न होगा कि मलिनवर्ण कपोत तथा करुण रस इस दृष्टि से कितने उपयुक्त बैठे हैं।

**करुण रस के भेद**—संस्कृत के आचार्यों ने करुणरस के भेद नहीं किए हैं। "करुणविप्रलम्भ" नामक एक रूप की कल्पना अवश्य हुई है। इसको पृथक् भेद नहीं कहा जा सकता। आचार्य शुक्ल ने इस रूप का विवेचन करते हुए 'रसमीमांसा' में लिखा है—"करुण रस और करुण विप्रलंभ में अन्तर—करुण विप्रलंभ में किसी शक्ति के द्वारा मृत प्रिय के फिर से जीवित होने की आशा रहती है। यदि कहीं इस प्रकार की आशा न हो तो करुणरस हो जाता है।"

हिन्दी के आचार्यों में देव ने अपने काव्यरसायन में करुण के पाँच भेदों की कल्पना की है।

"करुना, प्रतिकरुना अरुमहाकरुन लघु हेत।
एक कहत हैं पाँच में, दुख में सुखहि समेत।।"

रस-निष्पत्ति की दृष्टि से करुणरस के भेद करना संगत प्रतीत नहीं होता। एक ही रस का विभाजन करने का तात्पर्य अनुभूति के भेद-क्रम को स्थापित करना है जो असंभव न होते हुए भी दुष्कर अवश्य है। साथ ही अनुभूति का भेदक्रम विषयगत कम तथा व्यक्तिगत अधिक होता है। इसलिए सामाजिक की अनभूति की दृष्टि से इस विभाजन का रूप निश्चित करना लगभग असंभव है। इसलिए देव को छोड़कर अन्य किसी आचार्य ने इस प्रकार के विभाजन को प्रश्रय नहीं दिया। सूक्ष्म विवेचन से यह भी स्पष्ट हो जाता है कि कवि का यह विभाजन वर्णन-प्रकारान्तर मात्र है। करुण, अति-करुण तथा महाकरुण विषय की शोकसंतापाक्रान्त प्रवृत्ति की उत्तरोत्तर वृद्धि को प्रकट करते हैं। महाकरुण तक पहुँच कर कवि मरण की पूर्ण सम्प्राप्ति करा देता है। लघु-करुण तथा सुखकरण कारुणिक दिनों की स्मृतिरूप हैं। लघु करुण के अन्तर्गत महान आपत्ति से अभी त्राण मिला है तथा उस आपत्ति की स्मृति के संदर्भ में वर्तमान सुरक्षित स्थिति संतोष का विषय है। सुख करुण में सुख के उपकरणों में दुःख के दिवसों की स्मृति होती है जो वर्तमान सुख को प्रियतर बना देती है।

**करुण रस की उत्पत्ति**—करुण रस की उत्पत्ति के संबंध में मनीषियों के विभिन्न विचार हैं। उनका संक्षेप में यहाँ अवलोकन कर लेना उचित होगा।

१. भरत मुनि ने नाट्यशास्त्र में मूलतः चार रस माने हैं। शृंगार, रौद्र, वीर तथा वीभत्स। करुण रस की उत्पत्ति उन्होंने रौद्र रस से मानी है।[२२]

---

२२. "शृंगाराद्धि भवेद्हास्योरौद्राच्च करुणो रसः" ६—३९ ना० शा० गायकवाड़ ५६ पृ० २९५

रसास्वाद के समय चित्त की निम्न चार दशाएँ होती हैं[२३]—विकास, विस्तार, विक्षोभ तथा विक्षेप। यही चार दशाएँ साहित्य में क्रमशः शृंगार, वीर, वीभत्स तथा रौद्र के नाम से प्रकट हुई हैं। इन मूल चार रसों से पुनः अन्य चार रसों की उद्भावना हुई। इस प्रकार इन आठ रसों का रेखा चित्र निम्न रूप में दिया जा सकता है—

चित्त दशा

| विकास | विस्तार | विक्षोभ | विक्षेप |
|---|---|---|---|
| शृंगार | वीर | वीभत्स | रौद्र |
| हास्य | अद्भुत | भयानक | करुण |

२. शारदातनय ने (भावप्रकाश में) मूल चार रसों की उत्पत्ति वेदों से मानी है। उनके अनुसार सामवेद से शृंगार रस, ऋगवेद से वीर रस, अथर्व वेद से रौद्र रस तथा यजुर्वेद से वीभत्स रस उत्पन्न हुए तथा रौद्र रस की जो क्रूर क्रिया है वही करुण रस है।[२४]

३. महर्षि व्यास के अनुसार जगत संहार के पश्चात् शिव ने ब्रह्मा को बनाया तथा ब्रह्मा से सृष्टि रचना के लिए कहा। ब्रह्मा ने सृष्टि रचना के पश्चात् पिछले कल्प की भगवान शिव की लीलाओं को देखना चाहा। नंदिकेश्वर उनके सम्मुख प्रकट हुए। उन्होंने ब्रह्मा को सम्पूर्ण नाट्यवेद पढ़ाया तथा अपनी बताई हुई विधि के अनुसार एक रूपक रचने तथा भारतों की सहायता से खेलने के लिए कहा।

त्रिपुरवध रुपक बना और खेला गया। उसमें जब वीरभद्र ने दक्षयज्ञ विध्वंस किया तथा देवताओं को भिन्न-भिन्न प्रकार से दण्ड दिया तब उन भिन्न कर्णनासा दीन तथा आर्त की भाँति रोते और विलाप करते हुए स्त्रीपुरुषों को देखकर करुण और रौद्र की उत्पत्ति हुई।[२५]

---

२३. स्वादः काव्यार्थ संभेदादात्मानन्दसमुद्भवः।
विकाशविस्तरक्षोभविक्षेपैः स चतुर्विधः॥ ४/४३
शृंगार—वीर—बीभत्स—रौद्रेषु मनसः क्रमात्। ४/४४
हास्याद्भुतभयोत्कर्षकरुणानां त एव हि॥" दशरूपक वही

२४. शृंगार उद्भूत्सामो वीरोऽभूद्वितो ऋचः
अथर्व वेदतो रौद्रो वीभत्सो यजषुः क्रमात्।'
क्रूर क्रिया या रौद्रस्य सैव स्यात्करुणाह्वया" भाव प्रकाश, तृ० अधि०

२५. "रुद्रेण वीरभद्रेण दक्षस्य ध्वंसिते मखे
दण्डितेषु च देवेषु नाना प्रहरणैः पृथक्

४. रस उत्पत्ति के सम्बन्ध में एक दूसरा सिद्धान्त निम्नलिखित है। शिव ने इसको सूर्य से कहा तथा योगमाला संहिता में इसका वर्णन हुआ। (भरत के नाट्यशास्त्र में इसका विवरण नहीं दिया गया है किन्तु भोज ने अपने शृंगार प्रकाश में इसका उल्लेख किया है)

'इस सिद्धान्त के अनुसार अहं अपनी अभिमान वृत्ति एवं इन्द्रियों के द्वारा बाह्य वातावरण के सम्पर्क में आता है तब यह अहंकार सतरजतम तीन गुणों के अनुकूल जिस गुण से अहं अभिभूत होता है उसी के अनुकूल विभिन्न प्रकटीकरण के साथ रस-रूप को प्राप्त होता है।

इस प्रकार रस केवल नायक और नायिका का अहंकार है जो भावगुणों के साथ विभिन्न रूप धारण कर लेता है। जब रंगमंच पर एक नाटक खेला जाता है तब दर्शक जो नायक तथा नायिका के अहंकार के समान अहंकार से अभिभूत हैं मानसिक रूप में अपने आपको उसी स्थिति में ले जाते हैं जिसमें पात्र-भीम और हनुमान (जब द्रोपदी तथा सीता दुःशासन तथा रावण द्वारा त्रासित थीं) रंगमंच पर होते हैं।

जब दर्शक मण्डली आठ प्रकार के भावों शृंगारादि का अनुभव करती है तब यह समझना चाहिए कि अहं अपने आपको आठ प्रकार के भावों में परिवर्तित कर रहा है जिनको आठ प्रकार के रस कहा जाता है।[२६]

५. तैतिरीयोपनिषद् के ब्रह्मानन्द बल्ली के अन्तर्गत रस परमानन्द की अनुभूति के लिए प्रयुक्त हुआ है। श्रुति का तात्पर्य है—

"यह पुण्यरूप भगवान ही रस कहे जाते हैं क्योंकि यह आनन्दप्रद हैं। यह जीवात्मा इसी रस को पाकर आनन्दयुत होता है।[२७]

६. करुण रस की उत्पत्ति इच्छा से भी मानी गई है। इच्छा के दो रूप होते हैं—राग और द्वेष या काम एवं क्रोध। राग के प्रीति रूप का शृंगार से, सम्मानरूप का अद्भुत से तथा दया रूप का करुण रस से सम्बन्ध है।

७. इसी प्रकार प्रकृतियों से भी रस की उद्भावना की गई है। प्रकृति तीन हैं—
सत, रज, तम।
सत से—शान्त, वीभत्स तथा अद्भुत उत्पन्न होते हैं।
रज से—शृंगार, करुण एवं हास्य उत्पन्न होते हैं।

---

विलोक्य तान्प्रलपतश्छिन्न कर्णाक्षिनासिकान्
दीनान्देव्याः सखीनां च करुणोयद्भून्महान्
तस्मात् प्रवृत्तः करुणोरौद्रादिति विभाव्यते ... "भाव प्र०, तृ०अधि०

२६. अंग्रेजी में भूमिका-शारदातनय, भावप्रकाश, गायकवाड़ ओर० सीरिज़-के अन्त में उद्धृत।

२७. "यद्वैतत्सुकृतम्। रसो वै सः "७/११

तम से--रौद्र, वीर, भयानक उत्पन्न होते हैं।

उपर्युक्त सिद्धान्तों का विवेचन करने से ज्ञात होगा कि इनमें से कुछ उत्पत्तिमूलक हैं, अन्य रस के गुणस्वभाव सम्बन्धी तथा दूसरे परंपरानुगत। इनका संक्षिप्त विवरण निम्मलिखित है:—

परंपरानुगत—क्रमांक १,२।
रूप प्रकाशक—,, ,, ३।
उत्पत्तिमूलक—,, ,, ४,६,७।
समानधर्मी—,, ,, ५।

परंपरानुगत सिद्धान्तों में करुण रस की उत्पत्ति रौद्र से मानी गई है तथा रौद्र के समय चित्त की विक्षेप दशा बताई गई है। विक्षेप का अर्थ होता है—इधर-उधर भटकना, फेंकना। चित्त की यह दशा रौद्र में और विशेषकर करुण में अति स्वाभाविक है। आपत्ति के समय चित्त का इधर-उधर भटकना तथा आपत्ति-मुक्ति के लिए प्रयत्न करना प्रकृति की रक्षायोजना का एक मुख्य साधन है जिससे आपद्ग्रस्त मानव की रक्षा संभव हो जाती है। साथ ही चित्त की एकाग्रता के अभाव में दुःख का भार भी वह्य हो जाता है। इस प्रकार चित्तदशा से संबंधित यह सिद्धान्त मनोवैज्ञानिक तथ्यों पर आधारित है। परंपरानुगत दूसरे सिद्धान्त में रौद्र एवं करुण की उत्पत्ति अथर्ववेद से बताई गई है। इस सिद्धान्त की कोई सहेतुक व्याख्या संभव प्रतीत नहीं होती। संभवतः उत्पत्ति की अलौकिकता सिद्ध करने के लिए इस सिद्धान्त की कल्पना की गई हो।

रूपप्रकाशक तथा सामानधर्मी सिद्धान्त उत्पत्ति के संबंध में कोई प्रकाश न डालकर करुण रस का वर्णन एवं अनुभूति मात्र उपस्थित करते हैं। अतः उनके सम्बन्ध में किसी विवेचन की आवश्यकता नहीं है।

उत्पत्ति मूलक सिद्धान्त—क्रमांक ४, ६, ७ में अहंकार का सिद्धान्त ही प्रमुख है। प्रकृति का सिद्धान्त इसके अन्तर्गत ही आता है। अहंकार सत-रज और तम तीन गुणों के अनुकूल ही अभिभूत होता है। अतएव कहा जा सकता है कि रज या तम प्रकृति से अभिभूत अहं के द्वारा करुण की उत्पत्ति होती है। इच्छा सिद्धान्त के अन्तर्गत करुण के सामाजिक की करुणा एवं दया की प्रवृत्ति की ओर संकेत किया गया है। इस प्रकार यह सिद्धान्त पृथक किसी अन्य तथ्य का उद्घाटन नहीं करता।

अतः अहंकार का सिद्धान्त प्रमुखतः यहाँ विवेचन अपेक्षी है। अहं का मनोवैज्ञानिक अध्ययन यहाँ इस प्रसंग पर प्रकाश डालने के लिए आवश्यक होगा। फ्राइड द्वारा यह अध्ययन निम्न रूप में किया गया है।

**अहं का मनोवैज्ञानिक अध्ययन--**

मनोवैज्ञानिक विश्लेषण के आधार पर मानव-मस्तिष्क के तीन रूप माने गये हैं—
१—चेतन

२—अर्द्ध चेतन
३—अचेतन

फ्राइड के अनुसार वे प्रवृत्तियाँ जो सामाजिक बन्धन अथवा अन्य किन्हीं कारणों से वाह्.य जगत में प्रकट नहीं हो पाती, अचेतन रूप धारण कर लेती हैं। इनको अचेतन चेष्टाएँ नाम दिया गया है। इन्हीं मूल अचेतन चेष्टाओं के एक अंश का नाम "अहं" है। अहं की पहुँच चेतन-स्तर तक रहती है। उसका कार्य चेतन और अचेतन जगत में समझौता कराने का होता है। अहं साथ ही अचेतन चेष्टाओं की माँगों को पूरा करने की चेष्टा भी करता है। किन्तु चेतन जगत के अधीन होने के कारण वह स्पष्ट एवं प्रत्यक्ष रूप से यह कार्य नहीं कर पाता। उसके कार्यों एवं क्रियाकलापों का निरीक्षण आत्मआलोचक करता है। इस प्रकार अहं को तीन ओर खिंचना पड़ता है—अचेतन जगत की ओर, चेतन जगत की ओर तथा आत्म आलोचक की आदर्शनिष्ठा की ओर। अहं मूल अचेतन चेष्टाओं की संतुष्टि के लिए भिन्न-भिन्न उपाय निकाल लेता है तथा आत्म आलोचक को भी भुलावा देकर वह उनको संतुष्ट कराता है। इस प्रकार धूम्रपान, प्रसाधन एवं शृंगार तथा काव्यादि रचना मूलअचेतन चेष्टाओं की संतुष्टि के प्रकारमात्र हैं। इस प्रसंग के और स्पष्टीकरण के लिये साथ में दिये गये अहं के अध्ययन का चित्र द्रष्टव्य है।

एलैफ्रड एडलर ने फ्राइड की 'कामवासना' के स्थान पर 'विजय कामना' को अपनी मान्यता का आधार बनाया है। 'हीनता-ग्रन्थि' एडलर की अपनी खोज थी। एडलर की दृष्टि से करुणरस का मनोवैज्ञानिक विवेचन निम्नलिखित रूप में किया जा सकता है।

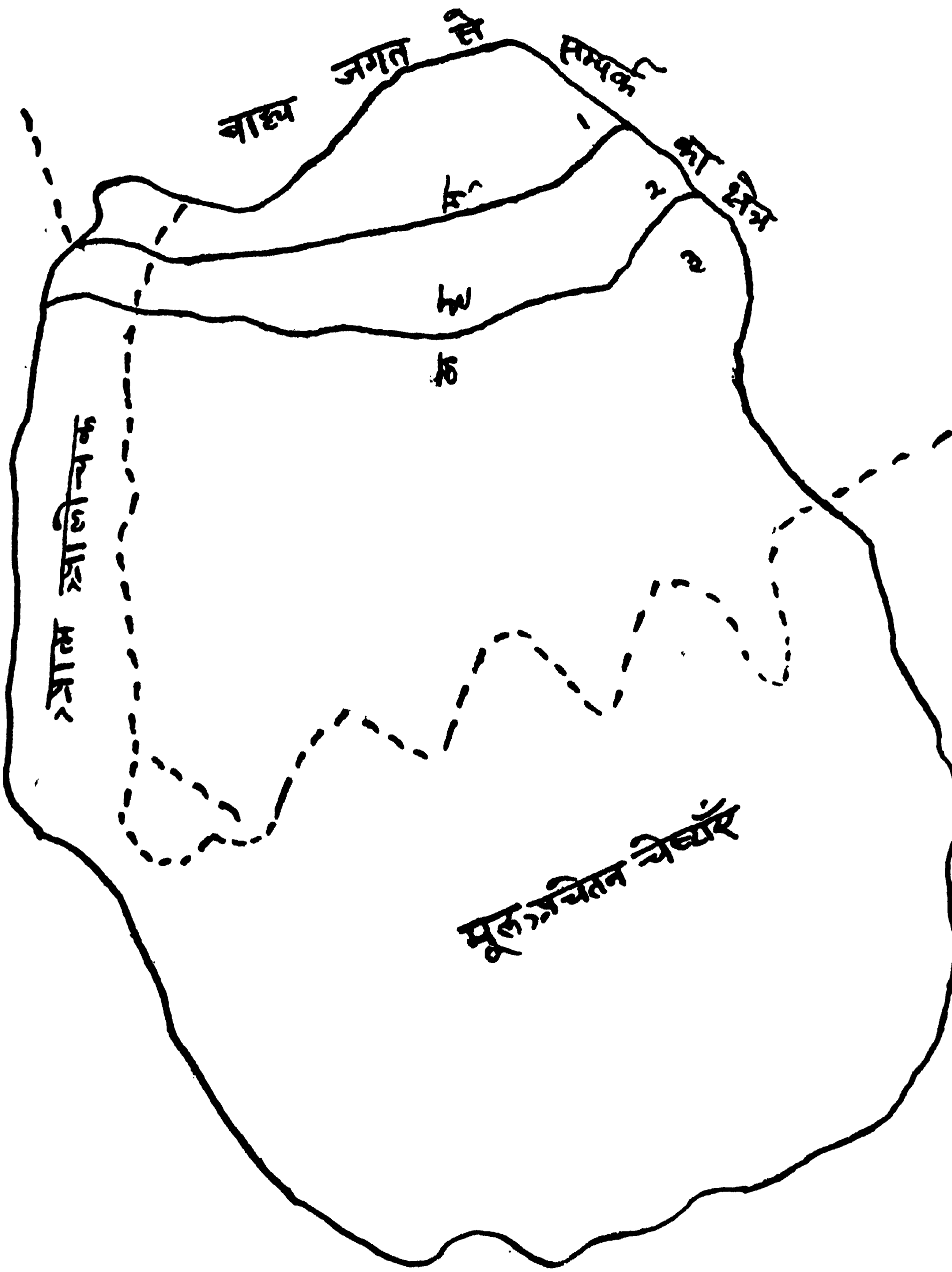
रसानुभूति दो रूपो में होती है—आलम्बन एवं आश्रयगत तथा समाजिकगत। आलम्बन एवं आश्रयगत अनुभूति के अन्तर्गत दैव एवं भाग्य निन्दा के अवसर प्रायः उस समय आते हैं जब इष्टनाश तथा अनिष्टि प्राप्ति के समय मनुष्य अपनी विवशता तथा असहायावस्था का अनुभव करता है किन्तु अपने आपको अभाग्यशाली कहना भी दूसरे शब्दों में अपना महत्व प्रकट करना है। यह प्रवृत्ति 'विजय कामना' से प्रेरित होती है। अल्फ्रेड एडलर ने इस सम्बन्ध में स्पष्ट लिखा है कि—

"उनके अभाग्य के मूल में उनका गर्व है। अभाग्यशाली बनना महत्वपूर्ण होने का एक ढंग है।"[२८]

सामाजिकगत अनुभूति के अन्तर्गत आर्त्त एव संतप्त प्राणी के प्रति सहानुभूति प्रदर्शन आता है। सामाजिक या दर्शक का करुणा प्रदर्शन 'विजय कामना' का ही रूप होता है। करुणाप्रदर्शकों को इस प्रकार के अपने कार्यों द्वारा दीन एवं आर्त्त प्राणियों पर

---

२८. 'Vanity is at the root of their misfortune.
Being unlucky is one way of being important.'
—Understanding Human Nature.
By A. Adler, 1937 Ed., Page 262.




१. चेतन
२. अर्द्धचेतन
३. अचेतन

---

अहम् = Ego आत्म आलोचक = Super Ego.
मूल अचेतन चेष्टाएँ = Id.
After-Freud—"His Dream and Sex Theories" Page 85,86 Pocket Book. Inc. Rockefeller Center. N.Y. Septr. 48 Edn

( जिन पर करुणाप्रदर्शन का दिखावा वह किए हुए होते हैं ) वास्तव में अपनी महत्ता तथा सुरक्षित स्थिति के प्रदर्शन का अवसर मिल जाता है। इस प्रकार उनकी हीन भावना ग्रन्थि संतुष्टि प्राप्त करती है।[२९] एडलर के यह विचार सूक्ष्म दृष्टि से सारपूर्ण प्रतीत होते हैं।

फ्राइड ने जिसे अचेतन मन कहा है तथा महत्त्वपूर्ण स्थान दिया है जुंग ने उसकी दो रूपों में कल्पना की—व्यक्तिगत अचेतन तथा जातीय अचेतन (Racial unconscious)। जुंग ने जातीय अचेतन (समष्टि मन) को काव्य-कला तथा मानव की अन्य आदर्श कामनाओं यथा अध्यात्मिक साधना, ईश्वरत्व एवं देवत्व की कल्पना एवं उसमें आस्था तथा अन्यान्य अच्छाइयों का आधार माना है और इस प्रकार फ्राइड की भावनाओं को बिल्कुल नवीन रूप दिया है। कहना न होगा कि जुंग का जातीय अचेतन भारतीय मनीषियों के वासना अथवा संस्कार सिद्धान्त के कितने समीप है। रस-निष्पत्ति का आधार ही सामाजिक की वासना अथवा उसके संस्कार होतेहैं।

इस प्रकार स्पष्ट है कि प्रचीनों का उत्पत्तिमूलक अहं का सिद्धान्त मनोवैज्ञानिकों की नवीनतम खोजों के अति समीप है। अवश्य ही प्राचीनों का यह सिद्धान्त मनोवैज्ञानिक तथ्यों पर आधारित रहा होगा। कालान्तर में सिद्धान्त परम्परानुगत रूप में चलता रहा तथा उसका मनोवैज्ञानिक विश्लेषण किसी प्रकार लुप्त हो गया।

**करुण रस का विवेचन—**

आलंबन—भिन्न-भिन्न मनीषियों की परिभाषा के आधार पर प्रस्तुत सारिणी के अनुकूल करुणरस के संभावित आलंबन निम्न लिखित हैं।

१—प्रिय बन्धुबान्धव एवं पुत्रादि का मरण एवं वियोग-इष्ट नाश।
२—धन वैभव का नाश।
३—पराजय एवं पराभव तथा बन्धन एवं वध।

---

२९. '...........Thus there are individuals who crowd to the scene of a disaster in order to be mentioned in the newspapers, and achieve a cheap fame without actually doing anything to help the sufferers.

...........Professional sympathizers and alms-givers are not to be divorced from their activity for they are actually creating a feeling of their own superiority over the miserables and povetry-stricken victims whom they are alleged to be helping.'

Understanding Human Nature.
By A. Adler, 1937 Ed., Page 276.

४—धर्म अपघात एवं शाप ।

५—क्लेश एवं दु:ख प्राप्ति; अनिष्ट प्राप्ति ।

उपर्युक्त आलंबनों के अन्तर्गत मानवजीवन की प्रायः सभी दु:खात्मक परिस्थितियाँ आ जाती हैं—

राजनीतिक—क्रमांक ३ ।
सामाजिक—" " १, २, ५ ।
धार्मिक—" " ४ ।

१—इष्टनाश जनित करुणरस के आलंबन के अन्तर्गत सभी रागात्मक संबंध आ जाते हैं। इनमें साधारणतया पुत्रनाश या पुत्रवियोग सबसे अधिक शोकप्रद होता है। इसीलिए संभवतः कलियुग के घोर पाप एवं यातनाओं का वर्णन करते हुए यह भी कहा गया कि पिता के सामने पुत्र की मृत्यु होगी। रस गंगाधार प्रणेता पण्डितराज जगन्नाथ के द्वारा दी गई करुणरस की परिभाषा के अन्तर्गत भी पुत्रनाश या पुत्रवियोग का विशेष रूप से उल्लेख हुआ है। इस संबंध में यहाँ यह स्पष्टीकरण आवश्यक है कि पण्डितराज के जीवन वृत्त में इस प्रकार की किसी घटना का निश्चित उल्लेख नहीं है जिसके आधार पर यह कहा जा सके कि उनको पुत्रनाश अथवा पुत्रवियोग की स्वानुभूति हुई तथा इसी कारणवश उन्होंने इस आलंबन को अपनी परिभाषा के अन्तर्गत विशेष प्रश्रय दिया। अस्तु, निश्चय ही पण्डितराज की दृष्टि पुत्रगत शोक की गंभीरता की ओर रही होगी तथा इसी कारण उनकी परिभाषा में आलंबन के अन्तर्गत पुत्रनाश एवं पुत्रवियोग का विशेष उल्लेख हुआ।

२—धनवैभवनाशजनित करुणरस के आलंबन की असहायावस्था प्रायः प्रत्येक समाज में प्रतिलक्षित होती है। जीवनयापन का साधन जीवन से भी अधिक महत्त्वपूर्ण होता है। इसलिए धनवैभवनाश के समय धनवान व्यक्ति को इष्टनाश के समान शोक का होना अति स्वाभाविक है किन्तु भारतीय संस्कृति ने आध्यात्मवाद से इतर भौतिक वैभव को कभी महत्त्व नहीं दिया। इसीलिए हिन्दी साहित्य में धन-वैभवनाशगत आलंबनों का प्रायः अभाव रहा है।

पराजय, पराभव तथा बन्धन एवं वध—के अन्तर्गत राजनीतिक क्षेत्र के आलंबन आते हैं। विजित पक्ष करुणरस का आलंबन होता है। विजित पक्ष का शोक-संताप मनोवैज्ञानिक दृष्टि से अनिच्छित परिस्थिति को अनुकूल बनाने के प्रयत्न कहे जा सकते हैं जिनमें अपनी पराजयादि के प्रमुख कारणों का वर्णन अपना महत्त्व प्रकट करता है।

धर्मअपघात तथा शापजनित करुणरस के आलंबनों के अन्तर्गत धर्म का कर्मकाण्डगत रुप आता है। शूद्रस्पर्श, अभक्ष्य पदार्थों का अनजान में भक्षण, कर्मकाण्ड की विधिनिषेध में व्यतिक्रम अथवा विलम्ब तथा धर्मरक्षणलालसा के समक्ष विधर्मीजनों का विरोधादि धार्मिक व्यक्ति के लिए मानसिक क्षोभ एवं शोक के कारण होते

हैं। धार्मिक व्यक्ति की आदर्शनिष्ठा की पृष्ठभूमि में यह क्षोभ अति कष्टकर सिद्ध होता है जिसका चरम उत्कर्ष धर्मवीर के रूप में आत्मबलिदान तथा आत्मघात तक में प्रकट हुआ है।

शाप के अन्तर्गत एक क्षुब्ध आत्मा किसी नैतिक अथवा धार्मिक वैषम्य को सहन न कर सकने के फलस्वरूप अशुभवाणी प्रकट करने के लिए विवश हो जाती है। करुण रस का आलंबन होता है शापित व्यक्ति जो शापदाता की शक्ति के आगे अपनी असहायवस्था का अनुभव करता है तथा शाप के दुष्परिणाम का विचार कर परम कातर हो उठता है।

आज भी "बुरी भाखा" तथा "ऐसी वाणी" आदि शब्दों द्वारा शाप की परंपरानुगत ध्वनि प्रकट होती है किन्तु शापदाता की शक्ति में विश्वास एवं आस्था के अभाव में प्राय: करुण के स्थान में रौद्र का दृश्य दिखलाई देता है।

मनोवैज्ञानिक दृष्टि से शाप "कुत्सित संवेदन" कहे जा सकते हैं तथा शापदाता जितना अधिक क्षुब्ध होगा उतना ही अधिक उसका शाप प्रभावशाली तथा क्रियाशील होगा। रामायण तथा महाभारत काल में सम्पूर्ण घटनाओं का मूलकारण प्राय: कोई शाप रहा है। उस युग में शाप संभवत: अनुशासन एवं नियंत्रण के प्रचलित साधन थे जिनके भय से समाज में नैतिकता का अनुपालन होता था।

अनिष्टप्राप्तिजनक करुणरस के आलंबनों के अन्तर्गत दैहिक, दैविक एवं भौतिक कष्टों से दु:खी तथा अन्यान्य विपत्तियों में ग्रस्त व्यक्ति आते हैं। प्रत्येक व्यक्ति के लिए इस प्रकार के कष्ट सुपरिचित तथा प्राय: अनुभूत होते हैं। अतएव अनिष्टप्राप्तिजनक आलंबनों के साथ सामाजिक की सहज सहानुभूति संभव हो जाती है।

मनोवैज्ञानिक दृटिकोण के अनुकूल शोक-अभिव्यंजना शोक शान्ति का एक विशिष्ट साधन है जिसके द्वारा इष्टनाशगत विषम परिस्थिति में शोकसंतप्त प्राणी मानसिक सम अवस्था प्राप्त कर लेता है। साथ ही मानव व्यवहार के अध्ययन से यह भी स्पष्ट है कि शोक की अभिव्यंजना प्रत्येक आश्रय के साथ एक सी नहीं होती। पुत्रमृत्यु पर माता-पिता बन्धुबान्धव सभी रोते तथा शोक प्रकट करते हैं किन्तु माता के शोक तथा अन्य व्यक्तियों के शोक में विशेष अन्तर होता है जिसका यद्यपि कोई भौतिक मापदण्ड संभव नहीं है तब भी यह अनुभवगम्य न हो ऐसी बात नहीं है।

**करुण का प्रथम आलंबन**—क्रौंचवध आख्यान में हत क्रौंच को माना जा सकता है। काम संमोहित क्रौंच पक्षी के युग्म में से एक का वध तथा दूसरे का आर्त्त चीत्कार आदि कवि बाल्मीकि के शोक को श्लोक का रूप दे देता है। वाल्मीकीय रामायण का समय ५००[१] ई० पू० माना गया है। उस समय की करुण भावना का रूप आदि कवि के श्लोक से स्पष्ट है। रामायण काल की शोकनुभूति का यह आदर्श रूप था जिसके अन्तर्गत मनुष्य पशु पक्षियों तक के दु:ख से दु:खी हो उठता था।

**महाभारत काल का समान आलंबन**—महाभारत का समय २०० ई० पू० माना गया है। इस प्रकार रामायण तथा महाभारत काल में ३०० वर्षों का अन्तर है। इस अवधि में संभवतः पशु-पक्षियों के प्रति क्रौंच आख्यान में प्रकट मानव की करुण भावना में विशेष उदासीनता आ चुकी थी। महाभारत के आदिपर्व के अन्तर्गत संभवपर्व में एक आख्यान पाण्डुशाप का आया है। महाराज पाण्डु मृगया के लिए वन जाते हैं तथा कामचेष्टारत एक हरिणयुग्म पर बाण छोड़ते हैं जिससे हरिणी अविलम्ब मर जाती है। आहत हरिण कुछ क्षणों के लिए जीवित रहता है। यह हरिण कर्दम ऋषि थे जो सपत्नीक मृगरूप में कामचेष्टारत थे। इस प्रकार की मृगया की निन्दा करते हुए ऋषि ने महाराज से कहा—इस प्रकार कामरत युग्म को तो कोई साधारण व्यक्ति भी न मारेगा फिर आप तो ज्ञानवान् हैं तथा राजा हैं। महाराज पाण्डु इस प्रकार की मृगया को राज धर्म बतलाकर अपने कार्य को न्यायसंगत ठहराने का प्रयत्न करते हैं।

इस आख्यान से स्पष्ट है कि कालक्रम में मानव वासना परिवर्तित एवं संशोधित होती रहती है जिसके साथ आलंबन के रूप में अपेक्षित परिवर्तन संभव हो सकता है।

**उद्दीपन**—विभाव का दूसरा भेद उद्दीपन विभाव है। इसके अन्तर्गत वह सब बातें आजाती हैं जिनसे आलंबन द्वारा प्रस्तुत पृष्ठभूमि उद्‌दीप्त हो उठती है। तथा समाजिक रसनिष्पत्ति की ओर अग्रसर हो जाता है। आलंबन एवं उद्दीपन दोनों का अन्योन्याश्रित संबंध है। आलंबन के अनुकूल उद्दीपन विभावों की अतएव एक तालिका प्रस्तुत की जा सकती है।

विभाव

| | | | |
|---|---|---|---|
| १—सामाजिक | अ—इष्टनाश | ,, | अ—दाहकर्म, वस्त्रभूषणादि के दर्शन, गुणकथन |
| | आ—धनवैभवनाश | ,, | आ—गतवैभव स्मरण, वर्तमान असहायावस्था |
| | इ—दुःख, क्लेश | ,, | इ—असहायास्था , दूसरों की सुरक्षितदशा |
| २—धार्मिक — धर्मअपघात | | ,, | २—धार्मिक कृत्य एवं पूजा पाठ का समय |
| ३—पराजय, पराभव, बन्धन, वध | | ,, | ३—विपक्षी के आनन्दोल्लास, गर्वोक्तियाँ |
| | | ,, | विजित का भूतकालीन वैभवस्मरण व कथन |
| | | ,, | वातावरण एवं प्रकृति—१,२,३, सब के लिए |

उद्दीपन विभाव इस प्रकार तीन रुपों में प्रकट होते हैं—१. वचनगत, २. क्रियागत, ३. वातावरणगत। साहित्य रत्नाकर में उद्दीपन के इन रुपों को निम्न लिखित प्रकार से चार भेदों में विभाजित किया है (१) आलंबन के गुण (२) उसकी चेष्टाएँ (३) उसके अलंकार (४) तटस्थ—प्रकृति आदि।

इन भेदों का समाहार उपर्युक्त विवेचन के अन्तर्गत निम्नलिखित रूप से हो जाता है—

वचनगत–आलंबन के गुण-कथन तथा उक्तियाँ (आश्रय की तथा अन्य व्यक्तियों की)

क्रियागत–आलंबन की चेष्टाएँ। करुण रस के आलंबनों म मृत व्यक्ति की चेष्टाएँ कुछ नहीं होती किन्तु अन्य व्यक्तियों द्वारा उसको उठाना, चिता पर रखना आदि उद्दीपन का कारण होता है।

वातावरणगत—अलंकार तथा तटस्थ।

मानव प्रकृति मनोविज्ञानिक दृष्टि से अपनी भावना के रंग में शेष जगत को रंगने का प्रयत्न करती है। इसीलिए यदि हम प्रसन्न हैं तो हमको मानव समाज ही नहीं प्रत्युत प्रकृति भी पशु पक्षियों सहित आनन्द मनाती प्रतीत होती है। इसके विपरीत हमारे शोक में हमको अपना वातावरण शोकाकुल दिखलाई देता है। प्रियजन के वास्त्राभूषण तथा उसके उठने बैठने के स्थान जो अब तक सुखद थे शोक को उद्दीप्त करने वाले बन जाते हैं। उद्दीपन के अन्तर्गत इस प्रकार वचन तथा क्रिया के साथ वातावरण का विशेष महत्व है।

**अनुभाव**—के अन्तर्गत आलंबन एवं आश्रयगत वह बाह्य व्यंजक आते हैं, जिनके द्वारा अनुभूति का अनुमान होता है। भरतमुनि के अनुसार–वाणी से, शरीर से और सहजरूप में जो नाना अर्थों (वस्तुओं) का अनुभव कराता है उसे अनुभाव कहते हैं।[३०]

अनुभाव चार प्रकार के होते हैं—(१) कायिक (२) वाचिक (३) आहार्य (४) सात्विक।[३१] कायिक के पुनः तीन भेद बताए हैं। (१) शारीर (२) मुखज (३) शाखांगोपांग—संयुक्त चेष्टाकृत[३२] मुखज चेष्टाओं में सिर के तेरह प्रकार के कर्म तथा दृष्टि आदि के पच्चीसों भेद बताए गए हैं। फिर भी अन्त में कह दिया है कि लोक स्वभाव के अनुसार बहुत से भेद होते हैं। जिन्हें प्रयोक्ता स्वयं जोड़ लें।[३३] इस प्रकार नाट्य शास्त्र में अनुभावों का अति विस्तार से विवेचन हुआ है। इन तथ्यों तक अभी पश्चिमी प्रगतिशील देशों के विद्वानों की पहुँच नहीं हो पाई है। यहाँ करुणरस से संबंधित निम्नलिखित उन अनुभावों को ले रहे हैं जिनके संबंध में पाश्चात्य विद्वानों ने भी विचार किया है—

अश्रुमोचन, गुणकथन, प्रलाप, छाती पीटना, सिर ठोकना आदि तथा इनके साथ आठ प्रकार के सात्विक भाव।

---

३०. यदयमनुभावयति नानार्थनिष्पन्नान्वागङ्गसत्वःकृताभिनयानिति।" ना० शा० सप्तम अध्याय पृष्ठ ३४७ टिप्पणी गायकवाड़' ५६

३१. "आङ्गिको, वाचिकश्चैव ह्याहार्यः सात्विकस्तथा" ना० शा० अ० ८ श्लोक १० गायकवाड़ (Vol, II' 34)

३२. त्रिविधस्त्वाङ्गिको ज्ञेयः शारीरो मुखजस्तथा
तथा चेष्टाकृतश्चैव शाखाङ्गोपाङ्ग संयुतः" वही अ० ८ श्लोक १२ वही पृ० ३।

३३. 'एभ्योऽन्ये बहवो भेदा लोकाभिनय संश्रियाः
ते च लोक स्वभावेन प्रयोक्तव्याः प्रयोक्तृभिः॥ ना० शा० अ० ८ श्लोक ३६ वही पृ० ६।

सत्त्व से उत्पन्न होने वाले भाव सात्त्विक भाव कहलाते हैं। सत्त्व से उत्पत्ति स्वीकार करते हुए भरत ने (शंका समाधान करते हुए) यह भी स्वीकार किया है कि अन्य भाव सत्त्व के बिना ही उत्पन्न होते हैं। समाहित मन सत्त्व की निष्पत्ति का कारण है। उदासीन अथवा अन्यमनस्क होने पर मनोविकारोद्भुत वैवर्ण्य, अश्रु आदि उत्पन्न नहीं हो सकते......"

काव्यानुशासनकार हेमचन्द्र के अनुसार—प्राण सत्त्व है। उससे उत्पन्न भाव सात्त्विक हैं। प्राण में जब पृथ्वी का भाग प्रधान होता है तो स्तम्भ, जब जल का भाग प्रधान होता है तो अश्रु, जब तेज का भाग तीव्रता के साथ प्रधान होता है तो स्वेद और जब साधारणतया (तीव्रता रहित) प्रधान होते है तब वैवर्ण्य उत्पन्न होता है। जब आकाश का भाग प्रधान होता है तो प्रलय तथा वायु के मन्द, मध्य तथा तीव्र आवेश के अनुसार रोमांच, कम्प तथा स्वरभेद होते हैं। स्तम्भादिक शरीर धर्म जो अनुभाव रूप में बाहर प्रकट होते हैं इन आन्तरिक रूपों की अभिव्यंजनामात्र हैं।[३५]

अनुभाव एवं मनोभावों के संबंध में पाश्चात्य मनोवैज्ञानिकों के विचार यहाँ देख लेना उचित होगा। प्राचीनों के उपर्युक्त सिद्धान्त आधुनिक मनोवैज्ञानिक खोज के कितने समीप हैं—यह विशेष रूप से यहाँ अवलोकनीय है।

कमिक ने इस प्रकार के अनुभाव—स्वेद, व्रीडा, कंठ सूखना तथा गला भर आना आदि को शरीर की (स्वस्थ अवस्था के गुणधर्म की) प्रतिक्रिया कहा है। (इसी को भरत ने समाहृत मन की दशा बतलाया है जिससे सत्व की उत्पत्ति होती है।)

एच० एच० ब्रिटेन ने मनोभावों की उत्पत्ति बाह्य की अपेक्षा केन्द्रीय कारणों से अधिक मानी है। मनोभावों को क्रिया नाड़ी संस्थान की शक्ति को बढ़ाने के लिए

---

३४. भरत "किमन्ये भावाः सत्त्वेन विनाऽभिनीयन्ते यस्मादुच्यन्ते एते सात्त्विका इति। अत्रोच्यते एवमेतत् कस्मात्–इह हि सत्त्वं नाम मनःप्रभवम्। तच्च समाहित मनस्त्वादुच्यते। मनसः समाधौ सत्त्वनिष्पत्तिर्भवति तस्य च योऽसौ स्वभावो रोमाञ्चाश्रुवैवर्ण्यादिलक्षणो यथाभावोपगतः स न शक्योऽन्य मनसा कर्तुमिति" ना० शा० पृ० ३७५ गायकवाड़ '५६

३५. "सीदत्यस्मिन्मन इति व्युत्पत्तेः सत्वगुणोत्कर्षात्साधुत्वाच्च प्राणात्मकं वस्तु सत्वम् तत्र भावाः सात्विकाःभावा इति वर्तन्ते। ते च प्राणभूमि प्रसृत मत्यादिसंवेदनवृत्तयो बाह्य जड़रूप भौतिक नेत्र जलादिविलक्षणा विभावेन रत्यादिगते नैवातिचर्वणा-गोचरेणाहृता अनुभावैश्चगम्यमाना भावा भवन्ति। तथा हि पृथ्वी भागप्रधानेप्राणे संक्रान्तश्चित्तवृत्तिगणः स्तंभो विष्टब्धचेतनत्वम् जलभागे प्रधाने तु बाष्पः तेजसस्तू प्राणनैकट्यादुभयथा तीव्रत्वेन प्राणानुग्रह इति द्विधा स्वेदो वैवर्ण्यञ्च'......" अ–२, पृ० १०० ।

प्रतीत होती है जिससे कि अविलम्ब शक्तिशाली क्रिया का विश्वास हो जाता है।[१६] हेमचन्द्र का भी यही निष्कर्ष है कि स्तम्भादि शरीर धर्म आंतरिक रूपों की अभिव्यंजनामात्र हैं।)

शरीर-विज्ञान शास्त्र तथा मानस रोगचिकित्सा की नवीन खोज इधर यह निश्चित कर चुकी हैं कि स्वचालित नाड़ी-संस्थान तथा नाड़ीशून्य ग्रन्थि मनोभावों की प्रतिक्रिया में महत्त्वपूर्ण हाथ रखती हैं। यह खोज भी मनोभावों की आन्तरिक क्रियाशीलता की ओर ही संकेत करती है।[१७] यह स्पष्ट है।

अतएव कहा जा सकता है कि सात्विक भाव वास्तव में मानसिक असम अवस्था के परिचायक हैं तथा मानसिक सम अवस्था प्राप्त कराने का प्रयत्न करते हैं। इस प्रकार मनोभावों की असाधारण अवस्थाओं में भी शरीर-रक्षा के प्रयत्न चलते रहते हैं तथा नाड़ी संस्थान विशृंखल होने से बच जाता है।

आचरणवादी मनोविज्ञान के संस्थापक वाटसन की बिहेवियर (Behaviour) पुस्तक १९१४ में प्रकाशित हुई थी। उनके पश्चात् इस दिशा में मनोविज्ञान की विशेष प्रगति हुई। मनोविज्ञान की परिभाषा भी 'मानव आचरण-अध्ययन-शास्त्र' के रूप में परिवर्तित हो गई। विशेष दशाओं में प्रति-लक्षित बाह्य व्यंजकों का विस्तृत अध्ययन मनोविज्ञानियों ने किया। भारतीय मनीषियों की दृष्टि अनुभावों के प्रायः सभी संभव कारणों की ओर रही है जिनका समावेश उन्होंने अपनी परिभाषाओं में किया है। साथ ही महत्त्वपूर्ण प्रसंग यथा शोक दृष्टि तथा अश्रु आदि की सहेतुक तथा बाह्य व्यंजकों के आधार पर विस्तृत व्याख्या भी की है।

स्तम्भ तथा प्रलय—संज्ञाशून्य खड़ा रह जाना, सुधबुध न रहना। (स्तम्भ में शरीरगत चेष्टा होती रहती है किन्तु प्रलय की दशा में चेष्टा बिल्कुल नहीं होती तथा

---

१६. 'Emotions are due more to central factors than to peripheral ones. The particular function of emotions would seem to raise the 'nervous potentiality' so that immediate and vigorous action is assured.'

—The Function of the Emotion, by H. H. Britan (Indian Journal of Psychology Vol. I—1926.)

१७. 'Much recent research in physiology and psychiatry has cofirmed the familiar belief that the autonaumic nervous system and the ductless glands play important parts in emotional responses.'

—The Encyclopeadia of Psychology 1946 Ed. Page 134.

स्थिति पूर्ण संज्ञा शून्य हो जाती है) प्रलय, तथा स्तम्भ के संभव कारणों का उल्लेख करते हुए भरत ने बताया —

"हर्ष, भय, शोक, विस्मय, विषाद तथा रोषादि से स्तम्भ उत्पन्न होता है"[३८]

श्रम, मूर्च्छा, मद, निद्रा, प्रहार, मोह आदि से प्रलय उत्पन्न होता है"[३९]

इन दशाओं का अध्ययन करते हुए एफ. ए. लण्ड ने बताया कि जनसाधारण के विश्वास के प्रतिकूल मानसिक गम्भीर उदासीनता अश्रुशून्य होती है।[४०] प्रलय की दशा में मनोवैज्ञानिक अध्ययन की यह विशेषता स्वाभाविक है—यह स्पष्ट है।

वैवर्ण्य—के कारणों का अध्ययन करते हुए भरत ने बताया शीत, क्रोध, भय, रोग, क्लमताप से उत्पन्न वैवर्ण्य होता है।[४१] मारशल ने इस सम्बन्ध में बाह्य व्यंजकों का सूक्ष्म अध्ययन किया है। उन्होंने लिखा है—

"......लेकिन जब क्षति पूर्ण न होने वाली होती है वास्तविक शोक उसी समय उत्पन्न होता है। इस अवसर पर रक्त संचार शिथिल पड़ जाता है, चहरा पीला तथा स्नायु ढ़ीले पड़ जाते हैं, पलकें लटक जाती हैं, संकुचित वक्ष पर सिर लटकता है तथा ओठ, गाल एवं नीचे का जबड़ा स्वयं अपने भार से नीचे को झुक जाते हैं......"[४२]।

इस प्रसंग में रुकमिक द्वारा किया गया अध्ययन और भी विस्तृत है। पीड़ा या शोक के अन्तर्गत मुख के संभावित वाह्य व्यंजकों का सूक्ष्म विवरण उनके अनुसार निम्न लिखित है—[४३]।

---

३८. "हर्षभयशोकविस्मयविषादरोषादि संभवः स्तम्भः" ना० शा० ७-९६ पृ० ३७५ गायकवाड़ ५६

३९. "श्रममूर्च्छामदनिद्राभिघातमोहादिभिः प्रलयः" ना० शा० ७-९९ वही

४०. "Contray to common belief, the deep depression of psychotic individual is tearless." Emotion in Men & Animal. Page. 258 Ed. 47

४१. "शीतक्रोधभयश्रमरोगक्लमतापजं च वैवर्ण्यम्" ना० शा० ७-९८ वही

४२. 'But when the loss is felt to be irreparable then real sorrow comes upon us, then the circulation becomes linguid, the face pale, the muscles flaccid, the eyelids droop, the head hangs on the contracted chest, the lips, cheeks lower jaw all sink downwards from their own weight.'--Encyclopeadia of Psychology—1946 Ed. P. 138.

४३. Outline of facial Expressions.—Pain and Grief.

| | |
|---|---|
| Brows and forehead. | Raised, knitted. Oblique out & down wrinkles—Horizontal and vertical. |

| | |
|---|---|
| माथा तथा भ्रू | उठी हुई, गाँठें पड़ी हुई, बाहर तथा नीचे की ओर वक्र। समतल तथा खड़ी सिकुड़न। |
| नेत्र | अंशतः या पूर्ण बन्द (अश्रु)। |
| नासिका | दबी हुई, फैली हुई। |
| मुख | नीचा, खुला तथा टेढ़ा (कराहने में)। |
| ओठ | किनारों पर झुके हुए, नीचे का ओठ काँपता हुआ। |
| नीचे का जबड़ा | लटका हुआ, शिथिल। |
| सिर | आगे की ओर झुका हुआ। |

अश्रु—के संभावित कारणों पर प्रकाश डालते हुए भरत ने लिखा है—

"आनन्द, अमर्ष, धूम, अंजन, जम्हाई, भय, शोक, अनिमेष देखने, शीत तथा रोग से अश्रु उत्पन्न होते हैं।"—४४

उत्तर रामचरित में भवभूति ने अश्रु एवं प्रलाप को जीवन धारण के लिए हितकर बताकर आधुनिक मनोवैज्ञानिक सिद्धान्तों की ओर संकेत किया है। —४५

---

| | |
|---|---|
| Eyes | Partly or fully closed. (tears) |
| Nose. | Compressed (thinned) elog-ated. |
| Mouth. | Lowered. open and skewed (ingroanning) |
| Lips. | Depressed at corners. Lower lips trembling. |
| Lowerjaw. | Drooping. |
| Head. | Sunk forward. |

The Psychology of Feeling and Emotion, by. C. A. Ruckmick. 1936 Ed. Page. 250.

४४. "आनन्दामर्षाभ्यां धूमाञ्जनजृम्भणाद्भयाच्छोकात्।
अनिमेषप्रेक्षणतः शीताद्रोगाद्भवेदश्रु" ना० शा०—७—९७पृ० ३७६ गायकवाड़ ५६

४५. "पूरोत्पीडे तटाकस्य परीवाहः प्रतिक्रिया।
शोकक्षोभे च हृदयं प्रलापैरेव धार्यते" उ० रा० ३—२९ वही
"स्वयं कृत्वा त्यागं विलपनविनोदोऽप्यसुलभ
स्तदद्याप्युच्छ्वासो भवति ननु लाभो हि रुदितम्" उ० रा० ३—३० वही
(स्वयं, त्याग करके विलाप कर जो बहलाना भी दुर्लभ है, तो भी अभी तक प्राण

आधुनिक—मनोवैज्ञानिकों के अध्ययन के आधार पर कहा जा सकता है कि—

"शोक, वासनागत स्मृति के द्वारा कम होने पर, दया, किसी उत्तेजक तथ्य द्वारा सान्त्वना प्राप्त करने पर तथा दु:खान्त सुखान्त के समन्वय के समय अश्रुमोचन संभव हो सकता है ।

यह केवल क्षति या शोक नहीं है जो अश्रुमोचन का कारण हो प्रत्युत दु:खद दशा में किसी सुखद परिस्थिति की उपस्थिति ही अश्रुमोचन का अविलम्ब अवसर होता है ।

उदाहरणस्वरूप दाहकर्म में अश्रु उस समय आते हैं जिस समय मृत व्यक्ति का गुण-कथन किया जाता है —वह अपनी संतान के श्रेष्ठ पिता थे, एक उदार हृदय नागरिक थे, आदि आदि । —[४६]

अश्रुमोचन के समय संभावित वाह्य व्यंजकों का अध्ययन डारविन द्वारा किया गया है । उन्होंने निम्नलिखित तथ्यों की ओर संकेत किया है—

"भौंहों की सिकुड़ने वाली स्नायु सिकुड़ती हैं जिससे भौंहें अन्दर तथा नीचे की ओर खिचती है । इससे भ्रूभंग-गत सीधी दरारें पड़ जाती हैं । साथ ही माथे के आरपार टेढ़ी सिकुड़न अदृश्य हो जाती है । भौंहों के सिकुड़ने के साथ-साथ आंखों के चारों ओर के स्नायु भी सिकुड़ते हैं तथा आँख के चारों ओर सिकुड़न पैदा करने हैं । तब नाक की पिरामिड जैसी स्नायु सिकुड़ती है तथा भौंहें तथा माथे की त्वचा को और नीचे की ओर खींचती है जिससे नासिका के आधार पर काटती हुई सिकुड़न पड़ जाती है। ऊपरी ओष्ठ के स्नायु भी सिकुड़ते हैं तथा ओठ को ऊपर उठा देते हैं । इस क्रिया से कपोलों का मास ऊपर को खिच जाता है जिससे कपोलों पर तह पड़ जाती है जो नथनों से मुख के किनारों तथा नीचे तक जाती है ।"[४७]

---

धारण हो रहा है । निश्चय ही रोना भी जीवन धारण के लिए लाभ-स्थानीय ही है । )

४६. '····it is not merely loss or bereavement which brings tears. Rather it is the presence of some alevating or happy circumstances within an otherwise distressing situation which is the immediate occasion for tears.

At a funeral; for example, tears flow when the speaker eulogizes the deceased by saying that he was a fine father to his children, a great hearted citizen, and so forth. ··········'

—Emotion in Man & Animal by P. T. Young. 1947 Ed. Page. 138.

४७. The corrugator muscles of the brow contract, drawing the eye brows downward and inward to produce the

इस प्रकार अश्रुमोचन के सम्बन्ध में कहा जा सकता है कि यह शोक शमन का एक प्राकृतिक साधन है जिसके द्वारा शोकाकुल प्राणी की जीवन रक्षा संभव हो जाती है। मनोवैज्ञानिक खोज ने अश्रुमोचन के लिए दुःखद एवं सुखद परिस्थितियों का समन्वय अपेक्षित बतलाया है। समन्वय के इस सिद्धान्त को इस प्रसंग में नवीन प्रगति कह सकते हैं।

स्वर भंग—के अन्तर्गत गला भर आना, स्वर का गद्गद् होना तथा वाणी की अस्पष्टता आदि आते हैं। भरत ने स्वरभंग के लिए सम्भावित कारणों का वर्णन करते हुए लिखा है—भय, हर्ष, क्रोध, जरा, शोक, रोग, मद से उत्पन्न होता है।[४८]

मनोवैज्ञानिक अध्ययन के अन्तर्गत बताया गया कि—ग्रीवा के समीप भोजन नली के सिकुड़ने के कारण स्वर भंग हो जाता है। वाणी का प्रकाशन शारीरिक अवयवों के साथ साथ मानसिक सहयोग पर भी आधारित है। इन दोनों का सहज समन्वय ही वाणी के प्रकाशन की सफलता है। शोक दशा में इन दोनों अंगों में विषमता उत्पन्न हो जाती है। इसलिए स्वरभंग आवश्यक हो जाता है।[४९]

सामाजिक की रसानुभूति की दृष्टि से स्वरभंग तथा प्रलाप विशेष महत्त्वपूर्ण हैं। अश्रुमोचन तथा अश्रुरहित गंभोर शोक, स्तम्भ तथा प्रलय की स्थिति में वाह्य अभि-

---

vertical furrows of the frown and the simultaneous disappearance of the transverse wrinkles across the forehead. The orbicular muscles contract at the same time as corrugator and produce wrinkles around the eyes. The pyramidal muscles of the nose (procerus) contract and draw the eye brows and the skin of the forehead still lower down producing transverse wrinkles across the base of the nose. The muscles running to the upper lip contract and raise the lip. This action also draws upward the flesh of the cheeks producing a fold on each cheek from near the wings of the nostrils to the corners of the mouth and below.

—Emotion in Man and Animal Ed. 1947 Page. 256

४८. "स्वरभेदो भयहर्षक्रोधजराशैक्षयरोगमदजनित:" ७–६६

४९. "In grief there are other bodily changes as well—
'The lump in the throat'—can be referred to a contraction of smooth muscles in the alimentary canal at the level of throat.

—Emotion in Man and Animal Ed. 47. Page 254.

व्यंजकों के अभाव में एक मूक दृश्य उपस्थित हो जाता है जिसे सामाजिक चुपचाप देख सकता है किन्तु स्वर भंग तथा प्रलाप के समय सामाजिक का हृदय सहज ही द्रवीभूत हो जाता है।

कम्प—के संभावित कारणों का उल्लेख करते हुए किसी प्रकार शोक छूट गया है। भरत ने केवल शीत, भय, हर्ष, रोष, स्पर्श तथा जरा को कम्प का कारण माना है।[५०] शरीर-विज्ञान के अनुसार स्पष्ट है कि शारीरिक क्रिया के साथ मानसिक असहयोग के कारण कम्प उत्पन्न होता है तथा शोकाभिभूत मानवमानस शारीरिक क्रियाओं के नियंत्रण को खो बैठता है। इस प्रकार शोक निश्चित रूप से कम्प का एक कारण ठहरता है। इस सम्बन्ध में मनोवैज्ञानिक अध्ययन के आधार पर कहा जा सकता है कि—

कंकाल संबंधी स्नायु दुर्बल तथा शिथिल पड़ जाते हैं। शारीरिक आसन बदल जाते हैं। मोड़ने वाले स्नायु फैलनेवाले स्नायुओं पर प्रधानता पा लेते हैं जिस रूप में हम साधारणतया एक व्यक्ति को शोकाक्रान्त कहते हैं।[५१]

स्वेद—शरीर से पसीना निकलना। स्वेद की उत्पत्ति के संबंध में छांदोग्य उपनिषद् में एक आध्यात्मिक कारण दिया हुआ है। "मैं बहुत हो जाऊँ तथा अनेक प्रकार उत्पन्न होऊँ" इस भावना से तेज उत्पन्न हुआ। फिर तेज ने भी इसी प्रकार की इच्छा की तथा तेज से जल उत्पन्न हुआ। इसी कारण आन्तरिक रूप में मनोवेग में तेज के प्रताड़ित होने से स्वेद निकलने लगता है। बाह्य रूप में सूर्य अथवा अग्नि का तेज भी स्वेद का कारण होता है।[५२]

स्पष्ट है कि इस रूपक द्वारा शरीर विज्ञान के तथ्यों के ओर संकेत किया गया है। शरीर विज्ञान के अनुसार-वायु-कोष या फुसफुस की गति के अनुसार रक्त प्रवाह की गति में अन्तर पड़ता है तथा चित्त का बाह्य जगत से सम्पर्क होने के परिणामस्वरूप

---

५०. "शीतभयहर्षरोषस्पर्शजरारोगजः कम्पः" ७–६६पृ० ३७५ मा० शा० गायकवाड़' ५६

५१—'The skeletal muscles are weak and flabby. The bodily posture is altered. The flexor muscles dominate the extensors so that we commonly speak of person as being 'bowed over' with grief. The grief-stricken widow for example box with head and shoulders bent, her eyes fixed on the ground, her step falters.'

—Emotion in Man and Animal. Ed. 1947. Page. 254.

५२—छांदोग्य उपनिषद् ( ६,२,३ )

"तदैक्षत बहुस्यां प्रजायेयेति तत्तेजोऽसृजत
तत्तेज ऐक्षत बहुस्यां प्रजायेयेति तदपोऽसृजत
तस्माद्यत्र क्व च शोचति स्वेदते वा पुरुषस्तेजस
एव तदध्यापो जायन्ते।"

अनुभूति ( प्रवृत्यात्मक या निवृत्यात्मक ) का भार वायुकोष पर पड़ता है। इस भार से वायुकोष तथा वायुकोष से रक्त प्रवाह में आधिक्य अथवा कमी आ जाती है जो वास्तव में विशेष परिस्थिति के लिए शरीर को प्रस्तुत करने का उपक्रम होता है। इस प्रकार रक्त प्रवाह की साधारण सम अवस्था में व्यतिक्रम ही स्वेद का कारण है।

शोकानुभूति के अन्तर्गत स्वेद प्रायः उसी समय प्रकट होता है जिस समय शोक प्रकटीकरण के अन्य साधन प्रलाप, अश्रु आदि आदि किसी प्रकार क्रियाशील नहीं हो पाते।

**संचारी भाव**—रस के सहकारी कारण समझे जा सकते हैं। यह स्थायी भाव को बल देकर विलीन हो जाते हैं। जल के बुद्बुद् की भाँति यह प्रकट तथा विलीन होते रहते हैं तथा विद्युत् चमक की भाँति क्षणिक ज्योति प्रकाशित कर अदृश्य हो जाते हैं।

संचारी भाव मनोवैज्ञानिक विश्लेषण पर आधारित हैं।[५३] अतएव संक्षेपतः कहा जा सकता है कि करुण रस के संचारी भाव—

अ—शोक के कारण उत्पन्न शारीरिक विषम अवस्था के शमन के उपकरण तथा अविलम्ब समअवस्था प्राप्त कराने के प्राकृतिक साधन हैं।

आ—भावावेश दशा में—अतिरिक्त शक्तिप्रवाह के लिए संचारी भाव स्रोत हैं।

इ—स्थायी भाव शोक की निष्पत्ति के अपेक्षित कारण हैं।

संचारी भावों की गति, संप्राप्ति तथा प्रभाव के संबंध में मनोवैज्ञानिक अध्ययन निम्न तथ्यों का उद्घाटन करता है।[५४]

अ—भावोवश दशा में मानसिक क्रियाशीलता अति तीव्र हो जाती है। सार्थक एवं निरर्थक संचारी वेग के साथ उदय तथा लय होते रहते हैं।

आ—संचारी भावों के उदय एवं अस्त में किसी विशेष क्रम अथवा व्यवस्था को कोई स्थान नहीं मिलता।

---

५३—Emotional excitement is often free from disruption. Everyone has heard on account of some body who in the face of danger acted wisely and with a very high energy expenditure, thus saving the situation from total disasster. P. T. Young. Emotion in Man and Animal P. 32 Ed. 1947

५४—The thought processes move much more repidly than under normal conditions. Ideas and possible courses of action occur to the subject in great number; some are accepted and others rejected. वही Page 37.

इ—संचारी भावों की संप्राप्ति आलंबन एवं आश्रय के संस्कार, अनुभूति की गंभीरता तथा विशेष वातावरण के प्रभाव के अन्तर्गत होती है। इसीलिए व्यष्टि को दृष्टिगत रखते हुए संचारी भावों की संप्राप्ति में विभिन्नता भी संभव है।

ई—भावावेश दशा में—संयत विचार शक्ति तथा अध्ययन की प्रगति अवरुद्ध हो जाती है।

प्रकरण के अनुकूल यहाँ संक्षेपतः करुणरस के संभावित संचारी भावों की शास्त्रीय व्याख्या पर दृष्टिपात कर लेना आवश्यक है। करुण रस के अन्तर्गत साधारणतया निम्न-लिखित संचारी भाव आते हैं—"५५ निर्वेद, ग्लानि, विषाद, चिन्ता, मोह, स्मृति, श्रम, दैन्य, आलस्य, शंका, औत्सुक्य, भय, आवेग, त्रास, व्याधि, अपस्मार, उन्माद, जड़ता, मरण···आदि।

निर्वेद—इष्टनाश तथा वियोगादि के कारण उत्पन्न होता है। इसके अन्तर्गत उदासीनता, दीनता, दीर्घोच्छ्वास, विवर्णता अश्रु आदि अनुभाव होते हैं। निर्वेद शान्त रस का स्थायी भाव भी होता है किन्तु उस दशा में निर्वेद वैराग्यजन्य होता है।

ग्लानि—शारीरिक कष्ट तथा मानसिक असह्य संताप के कारण उत्पन्न होती है। इसके अन्तर्गत विवर्णता, अनुत्साह आदि अनुभाव होते हैं।

विषाद—अनिष्ट प्राप्त, पराभव एवं पराजय, बन्धन आदि के कारण निरुत्साहित होना विषाद कहलाता है। इसमें संताप, दीर्घोच्छ्वास आदि अनुभाव होते हैं।

चिन्ता—अनिष्टप्राप्ति से उत्पन्न चित्तवृत्ति की व्याकुलता चिन्ता कहलाती है। चित्त की शून्यता, कृशता, अधोमुखता, निरर्थक विचारों में लीन होना आदि अनुभाव होते हैं।

मोह—शोकसंतप्त दशा में चित्त का विक्षिप्त होना, वस्तु का यथार्थ ज्ञान न रहना मोह कहलाता है। इसके अन्तर्गत चेतनाहीनता, चित्त का भ्रमित होना आदि अनुभव आते हैं।

स्मृति—पूर्व अनुभूत दुःख तथा कष्टादि का स्मरण स्मृति के अन्तर्गत आता है। प्रियसुखानुभूति का अभाव भी करुण का स्मृति संचारी बन जाता है।

---

५५. रस व्यापकता के आधार पर रसों में उत्तम, मध्यम आदि विभाजन अथवा रसराज का निर्णय यहाँ अपेक्षित नहीं है। साथ ही इस द्वन्द्व में मेरी आस्था भी नहीं है। इस प्रयत्न में प्रायः रस विशेष के अन्तर्गत अधिक से अधिक संचारी भावों की व्यापकता का दिग्दर्शन कराने के सफल-असफल प्रयास भी हुए हैं। ऐसा प्रयास भी यहाँ अभीष्ट नहीं है। साथ ही यहाँ यह स्पष्ट कर देना भी आवश्यक है कि किसी विशेष रस के लिए विशेष संचारियों की संख्या निर्धारित करना भी भूल है। प्रसंगानुकूल सभी संचारी—किसी विशेष रस के अन्तर्गत आ सकते हैं।

**भ्रम**——शोक के कारण वस्तु के यथार्थ ज्ञान का न होना भ्रम है। भ्रमवश किसी वस्तु को कुछ और समझ लेना आदि इसके अनुभाव हैं।

**दैन्य**——अपनी हीन दशा का प्रकाशन तथा अपनी असहायावस्था के कारण अपनी विवशता पर कातर होना दैन्य कहलाता है। इसके अन्तर्गत विवर्णता, मनसंताप आदि अनुभाव होते हैं।

**आलस्य**——दुःख एवं कष्ट के कारण कार्यविमुख होना आलस्य कहलाता है। इसके अन्तर्गत एक स्थान पर स्थिर रहना, कार्यउपेक्षा आदि अनुभाव होते हैं।

**शंका**——अनिष्ट की आशंका से उत्पन्न होती है। इसके अन्तर्गत विवर्णता, स्वरभंग, कम्प आदि अनुभाव होते हैं।

**औत्सुक्य**——कष्टमुक्ति, प्रियजन की प्राणरक्षा आदि के लिए किए गए साधनों द्वारा उत्पन्न आशा के रूप में औत्सुक्य का उदय होता है किन्तु इस रूप में करुण रस की अनुभूति के स्थान में विप्रलम्भ की अनुभूति को ही विशेषकर प्रश्रय मिलता है।

**भय**——शाप आदि से पूर्व भयभीत तथा त्रसित होना भय संचारी के अन्तर्गत आता है। इसमें कम्प, मुख पीला पड़ना आदि अनुभाव होते हैं।

**आवेग**——अप्रिय एवं अनिष्टजन्य समाचार से उत्पन्न चित्त-विकलता आवेग कहलाती है। इसके अन्तर्गत विस्मय, स्वेद, विवर्णता, अनुभाव होते हैं।

**त्रास**——शापित व्यक्ति की चित्तव्यग्रता त्रास कहलाती है। इसके अन्तर्गत चित्त-संताप अंगों की शिथिलता आदि अनुभव होते हैं।

**व्याधि**——वियोगसंतप्त मन का संताप व्याधि कहलाता है। इसमें स्वेद, कम्प, ताप आदि अनुभाव होते हैं।

**अपस्मार**——शोकसंतप्त होकर मृगी रोग की सी दशा होना अपस्मार कहलाता है। इसके अन्तर्गत दीर्घश्वास, पृथ्वी पर संज्ञाशून्य गिरना, मुख से झाग आदि का निकलना आदि अनुभाव होते हैं।

**उन्माद**——शोकाकुल होकर चित्त का भ्रमित होना उन्माद कहलाता है। इसके अन्तर्गत निरर्थक रोना, गाना, हँसना आदि अनुभाव होते हैं।

**जड़ता**——इष्टनाश तथा अनिष्ट प्राप्ति की दशा में किंकर्तव्य विमूढ़ होना जड़ता है। इसके अन्तर्गत मौन, निर्निमेष भाव से देखना आदि अनुभाव होते हैं।

**मरण**——मृत्यु से पूर्व की अति वेदना पूर्ण दशा का वर्णन मरण संचारी के अन्तर्गत आता है। प्रियजनों के आतुर एवं शोकार्त्त होने से मरण की व्यंजना होती है।

## स्थायी भाव शोक

स्थायी भाव के संबंध में आचार्यों के निम्नलिखित विचार हैं—

अ–जिस प्रकार मनुष्यों में राजा, शिष्यों में गुरु श्रेष्ठ होता है उसी प्रकार सब भावों में स्थायी भाव महान होता है।[५६]

---

५६. "यथा नराणां नृपतिः शिष्याणां च यथा गुरुः
एवं हिसर्व भावानां भावः स्थायी महानिह॥" ना० शा० ७-८ पृ० ३५० गायकवाड़' ५६

आ–सब भावों में जिसका रूप व्यापक हो उसे स्थायी भाव मानना चाहिए तथा शेष भावों को संचारी ।[५७-५८]

इ–स्थायी भाव आस्वादांकुर के मूल रूप हैं तथा अविरुद्ध अथवा विरुद्ध भाव इनको मिटा नहीं सकते । वे स्वयं इन में लय हो जाते हैं ।[५९]

ई–"स्थायी भावों की यह बहुत बड़ी विशेषता है कि वे जिस रूप में आश्रय में प्रकट होते हैं उसी रूप में सहृदय भी उनका अनुभव करता है ।"[६०]

ई–जो विरुद्ध अथवा अविरुद्ध भावों से नष्ट नहीं होते प्रत्युत अन्य सब भावों को अपने आप में लय करके स्थित बने रहते हैं वे ही समुद्र के समान स्थायी, स्थायी भाव होते हैं ।[६१]

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर कहा जा सकता है कि अ–स्थायी भाव व्यापक एवं प्रभावशाली होते हैं ।

आ–आस्वादांकुर के मूल रूप हैं–वासनागत रूप में सामाजिक के पास होते हैं तथा आश्रय से उनका तादात्म्य हो जाता है । अभिनवगुप्त ने स्थायीभाव को वासना (सहज प्रवृत्ति यथा क्षुधावासना)–संवित् (जन्मजातवृत्ति) तथा चित्तवृत्ति (मनोवस्था)–इन तीन शब्दों से अभिहित किया है ।

स्थायी भाव के व्यापक तथा प्रभावशाली रूप के संबंध में मनोविज्ञान का कोई तुलनात्मक अध्ययन उपलब्ध नहीं है । मनोविज्ञान ने भावों को व्यापकता तथा प्रभुविष्णुता के आधार पर मूल प्रवृत्तियों की उद्भावना अवश्य की है (जिनके संबंध में भी सब एक मत नहीं हैं किन्तु) उनसे यह तो स्पष्ट है कि भावों में व्यापकता एवं गंभीरता के आधार पर अन्तर अवश्य होता है ।

स्थायी भाव शोक मूलप्रवृत्तियों की दृष्टि से आर्त्त-प्रार्थना (Appeal) तथा आधीनता स्वीकृति (Submission) के अन्तर्गत आता है । यह प्रवृत्तियाँ सहज वृत्ति के रूप में मानव स्वभाव में जन्म से ही दृष्टिगोचर होती हैं । जन्म के पश्चात् आर्त्तप्रार्थना

---

५७. बहूनां समवेतानां रूपं यस्य भवेद्बहु
स मन्तव्यो रसः स्थायी शेषाः संचारिणो मताः"

५८. "बहूनां चित्तवृत्तिरूपाणां भावानां मध्ये यस्य बहुलं रूपं
यथोपलभ्यते स स्थायी भावः,"

५९. "अविरुद्धा विरुद्धा वा यं तिरोधातुमक्षमाः
आस्वादाङ्कुर रूपोऽसौ भावः स्थायीति सम्मतः " सा० दर्पण ३/७४ वही पृ० २३१

६०. वाङ्मय विमर्श–आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र
प्रथमसंस्करण, पृष्ठ १४७

६१. विरुद्धैरविरुद्धैर्वा भावैर्विच्छिद्यते न यः
आत्मभावं नयत्याशु स स्थायी लवणाकरः ,, द० रूपक ४/३४

ही प्रथम भाव होता है जिसका अनुभव नवजात शिशु करता है। जीवन के आपद्-ग्रस्त क्षणों में आर्त्तप्रार्थना सहजरूप में प्रकट हो जाती है। अपनी शक्ति की परिमिति तथा अपनी असहायावस्था के अन्तर्गत आधीनता-स्वीकृति का उदय होता है। भौतिक जगत की परिस्थितियों के अन्तर्गत इस प्रवृत्ति का रूप इतना स्वाभाविक हो गया है कि यह भी सहज वृत्ति के रूप में प्रति लक्षित होती है। अपने से शक्तिशाली की आधीनता स्वीकृति बिना किसी ननु नच के एक स्वाभाविक बात बन गई है।

पुनश्च आधुनिक मनोवैज्ञानिकों ने भावों के दो भेद किए हैं—मूल और तद्भव। मूल भावों के अन्तर्गत वे भाव लिए हैं जिनकी अनुभूति किसी दूसरे भाव की पूर्वानुभूति के आश्रित न हो जैसे—क्रोध, भय, आनन्द, शोक, आश्चर्य। तद्भव भावों के अन्तर्गत वे भाव लिए हैं जिनकी अनुभूति दूसरे भाव की अनुभूति के आश्रय से उत्पन्न हो जैसे—दया, कृतज्ञता, पश्चाताप आदि। मूल भावों के उपर्युक्त वर्गीकरण में शोक और आनन्द दोनों को स्थान दिया गया है किन्तु साहित्य में केवल शोक को लिया गया है। इस अंतर का स्पष्टीकरण आचार्य शुक्लजी ने निम्नलिखित शब्दों में किया है जिससे स्थायी भाव शोक की व्यापकता स्पष्ट रूप से प्रकट होती है—

"आधुनिक मनोविज्ञानियों ने क्रोध, भय, आनन्द और शोक को मूल भाव कहा है। इसमें से साहित्य के "भावों" की गिनती में आनन्द को छोड़ और सब आ गए हैं। शोक के रखे जाने और आनन्द के न रखे जाने का कारण क्या है? इसका एकमात्र उत्तर यही हो सकता है कि "रसविधान" की दृष्टि से ऐसा किया गया है। साहित्यिकों का सारा भाव-निरूपण रस के विचार से किया गया है। आश्रय के जिस भाव की व्यंजना से श्रोता या दर्शक के चित्त में भी आलम्बन के प्रति वही भाव साधारण्याभिमान से उपस्थित हो सकता है उसी को रस का प्रवर्तक मान कर आचार्यों ने प्रधान भाव की कोटि में रखा है। इस बात को अच्छी तरह ध्यान में रखना चाहिए। शोक का आलम्बन ऐसा होता है कि वह मनुष्य मात्र को क्षुब्ध कर सकता है पर आनन्द में यह बात नहीं है। किसी अज्ञात और अपरिचित व्यक्ति को भी प्रिय के मरण आदि पर विलाप करते सुन सुनने वालों की आँखों में आँसू आ जाते हैं पर किसी को पुत्र-जन्म पर आनन्द प्रकट करते देख राह चलते आदमी आनन्द से नाच नहीं उठते। किसी आनन्दोत्सव में उन्हीं का हृदय पूर्ण योग देता है जिससे उसका लगाव या प्रेम होता है, पर किसी के शोक में योग देने के लिए मनुष्य-मात्र का हृदय प्रकृति द्वारा विवश है, इसीसे आनन्द को रस के प्रधान प्रवर्तक भावों में स्थान न देकर आचार्यों ने "हर्ष" को केवल संचारी रूप में रखा है। इस युक्ति-पूर्ण विधान से उनकी सूक्ष्मदर्शिता का पता चलता है।"[६२]

स्थायी भाव के वासनागत रूप के सम्बन्ध में भारतीय आचार्यों के विचारों के समान ही पाश्चात्य विद्वानों के विचार हैं। भारतीय आचार्यों ने स्पष्ट शब्दों में कहा

---

६२. रस मीमांसा—पृ० १९७ सं० २००७

है कि बिना रति आदि वासना के रस का आस्वादन ही सम्भव नहीं है।[६३] महाकवि कालिदास ने भी वासना के संबंध में यही विचार प्रकट किए हैं। वह वासना को जन्मजन्मान्तरगत बताते हैं।

"मधुर शब्द सुनकर अथवा सुन्दर दृश्य देखकर मनुष्य व्याकुल हो उठता है। इसका कारण यही है कि वह निश्चय ही जन्मजन्मान्तर के प्रेमप्रसंगों को अनजाने ही भाव या वासना रूप में स्थिर होने के कारण स्मरण करता है।"[६४]

वासना के सम्बन्ध में पाश्चात्य विद्वानों के निम्नलिखित विचार हैं—

मारशल—"कला की यह प्रवृत्ति किसी एक या दूसरे रूप में साधारण पैत्रिक सम्पत्ति है। जो जाति के प्रत्येक सदस्य के लिए है—मैं समझता हूँ निर्विवाद सत्य है।"[६५]

सले—"एक आलंबन की उपस्थिति के माध्यम के द्वारा हमारी भाव-दशा की शक्ति न्यून अंशों में पुनः सचेतन हो जाती है जो इसका अंशतः प्रकाशन है। इस प्रकार हमारी (भूतकालीन) स्वयं अनुभूत पीड़ा अथवा दुःख के प्रकाशन के अंश से संबंधित आलंबन की उपस्थिति के कारण एक मनुष्य को अश्रुपूर्ण नेत्र देखकर हमको भी मानसिक क्लान्ति हो उठती है।[६६]

---

६३. "न जायते तदास्वादो विना रत्यादिवासनाम्" ३/३१ सा० दर्पण वही पृ० ६५

६४. रम्याणि वीक्ष्य मधुरांश्च निशम्य शब्दान्
पर्युत्सुको भवति यत्सुखितोऽपि जन्तुः
तच्चेतसा स्मरति नूनमबोधपूर्वं
भावस्थिराणि जननान्तर सौहृदानि" शकु० ५/९

६५. 'That this art impulse in one form or another is common heritage for all members of our race is, I think true without doubt.

— Pain Pleasure and AEsthetics.
By A. H. Marshal. Page.100.

६६. The process of sympathy in its most general form may be described as the revival in a lower degree of strengh of a affective state through the medium of a presentation answering to a part of its reflex discharge or manifestation. Thus depression on seeing a person in tears is due to the presence of a presentation corresponding to a part of the manifestation of a pain and grief as experienced in our own case.

—Human Mind by. James Sulley. P. 108 Ed. 1892.

अब तक फ्राइड के सिद्धान्तों के प्रवर्तक अनुयायी मन के अचेतन भाग में केवल दूषित प्रवृत्तियों का संघटन मानते थे किन्तु जुंग ने इससे आगे खोज कर सिद्ध किया कि हमारा अचेतन मन अमर बीज भूमि है जो प्राचीन प्रतीकों से अपने आप को प्रकाशित करता है और इन प्रतीकों के द्वारा आत्मा की नवीनता को प्रकट करता है। तत्त्वत: हमारे पूर्वजों के असंख्य अनुभवों से उद्भूत यह एक पौराणिक मूर्ति है। इन में से प्रत्येक में मानवमनोविज्ञान का एक अंश तथा मानव भाग्य विधा है। पीड़ा एवं आल्हाद का जो असंख्यवार हमारे पूर्वजों की गाथा में संभावित हुए हैं यह एक अवशेष है। इसीलिए संगृहीत अचेतन सब प्रकार की कला का मूलस्रोत है।[६७]

## शरीर विज्ञान के अनुसार स्थायी भाव शोक का विश्लेषण—

कालकिन ने भावानुभूति का अध्ययन शरीर विज्ञान की दृष्टि से किया है। यह अध्ययन अनुभूति की शरीरगत आन्तरिक प्रगति एवं क्रियाशीलता का विश्लेषण एवं प्रकटीकरण करने के साथ अनुभूति के वैज्ञानिक रूप का भी उद्घाटन करता है।

पुत्र के मृत शरीर को आलंबन मान लिया जाय तो सबसे प्रथम मूर्तिपट पर आलंबन का प्रभाव पड़ेगा। मूर्तिपट से पश्चकपालखण्ड प्रभावित होता है। पश्चकपाल खण्ड का संबंध अन्य संवेदन केन्द्र तथा रोलेण्डिक क्षेत्र से है। इसलिए पश्चकपालखण्ड के पश्चात् अनुभूति का प्रभाव अन्यसंवेदनकेन्द्र तथा रोलेण्डिक क्षेत्र पर पड़ता है। रोलेण्डिक क्षेत्र मस्तिष्क पुच्छ से जुड़ा हुआ है। अतएव रोलेण्डिक क्षेत्र के पश्चात् अनुभूति मस्तिष्क पुच्छ को प्रभावित करती है जहाँ एच्छिक तथा अनैच्छिक पेशियाँ संचालित हो उठती हैं तथा अनुभूति अन्तांग रोलेण्डिक क्षेत्र को प्रभावित करने लगती है। अन्तांग ललाट खण्ड से जुड़े हुए होते हैं। अतएव अनुभूति ललाटखण्ड में पहुँच कर बाह्य व्यंजकों

---

६७. ......The unconscious is not only the receptacle of all unclean spirits, but is in particular the one ever living seed ground which manifest itself through ancient symbolical images, and yet by means of these images, points to a renewal of spirit. Essentially therefore it is mythological figure resultant of countless experiences of our ancestors. Each of these contains a piece of human psychology and human destiny, a relic of suffering and delight that has happened countless time in our ancestoral story. So the "collective unconscious" is the main source of all types of arts."

—'Art Symbolism' Indian Journal of Psychology. Vol XXIV 1949. Page-1-IV Page 122.

का सृजन करती है तथा इन बाह्यव्यंजकों द्वारा ही अनुभूति का प्रकटीकरण गोचर हो जाता है।

कहना न होगा कि अनुभूति का आन्तरिक रूप अति गतिशील होता है तथा मूर्ति से ललाटखण्ड तक अनुभूति क्षणमात्र में पहुँच जाती है। इस प्रकार अनुभूति की आन्तरिक प्रगति के साथ सम्पूर्ण स्नायु-मण्डल जागृत एवं सचेतन हो जाता है। इस रूप में अनुभूति द्वारा उपस्थित विजातीय विषम अवस्था से क्षुब्ध स्नायुमण्डल अविलम्ब स्वस्थ एवं सम अवस्था प्राप्त करने का स्वतः ही प्रयत्न करता है तथा अनुभूति को मूर्तिपट से प्राप्त कर अविलम्ब बाह्यव्यंजकों द्वारा निकाल देता है। इस प्रकार इन बाह्यव्यंजकों द्वारा विषम अवस्था का विरेचन होकर पुनः सम अवस्था प्राप्त हो जाती है। जिसको प्राप्त करना शरीर का स्वाभाविक धर्म है।

कालकिन ने अपने इस अध्ययन द्वारा निश्चय ही अनुभूति के तथ्यों के स्पष्टीकरण में विशेष योग दिया है। यहाँ कालकिन के इस अध्ययन का रेखाचित्र दे देना असंगत न होगा—

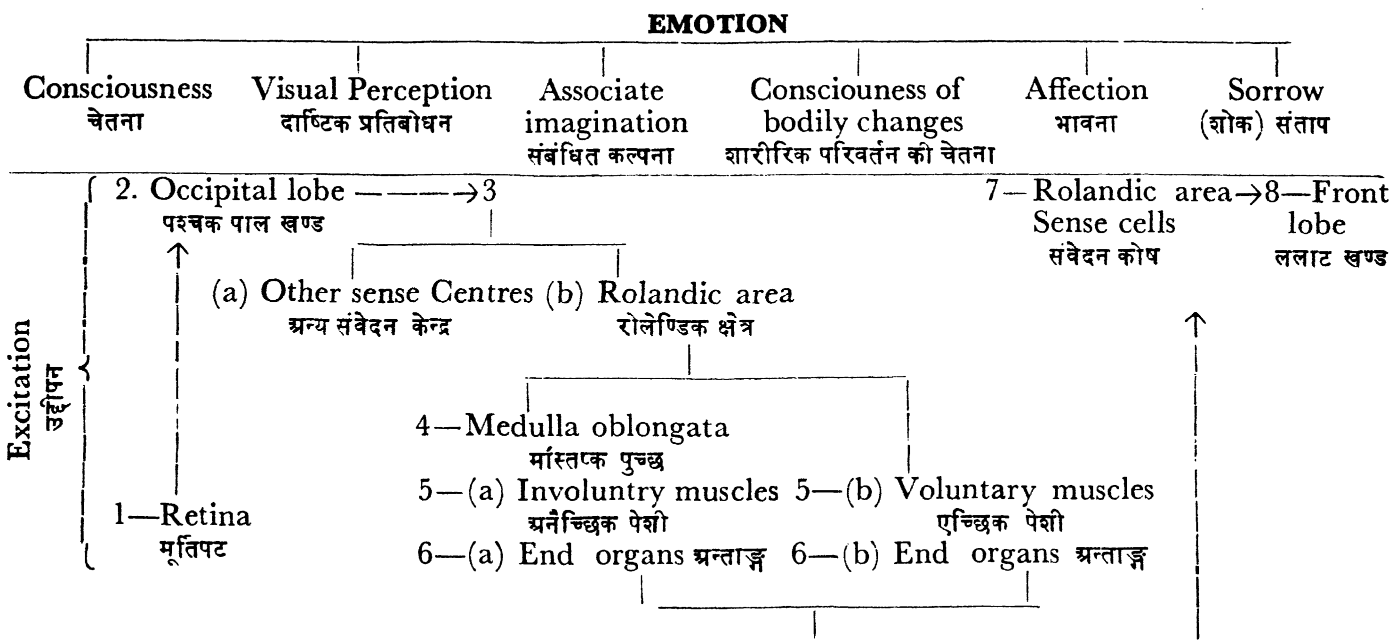
**स्थायी भाव शोक के संबंध में पाश्चात्य दृष्टि—**

हेगल ने स्थायीभाव शोक का सूक्ष्म अध्ययन किया है तथा अपने अध्ययन के आधार पर स्थायी भाव शोक से संबंधित प्रायः सभी तथ्यों का विस्तृत विवरण दिया है। हेगल के इन विचारों को यहाँ देख लेना आवश्यक होगा। इन विचारों द्वारा शोक की व्यापकता, प्रभविष्णुता तथा चरित्रनिर्माण के लिए आवश्यकता आदि तथ्यों पर अपेक्षित प्रकाश पड़ सकेगा। हेगल के विचारों का भाव निम्नलिखित है—

"······कला में किसी प्रकार हम उससे द्रवित हो सकते हैं जिसके अन्तर्गत शोक की प्रामाणिक अभिव्यक्ति होती है······निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि न तो सुखान्त और न दुःखान्त में शोक वह हो जो केवल किसी की मूर्खता है अथवा व्यक्तिगत सनक है। उदाहरणतः शेक्सपियर का टिमन शुद्ध भौतिक आधार पर मानव-द्रोही व्यक्ति है। उसके मित्रों ने उसको चूस लिया है, उसके संग्रह को समाप्त कर चुके हैं और जब उसको उनके धन की आवश्यकता हुई तो वे उसको छोड़कर चले जाते हैं। परिणामतः वह मानवता का कट्टर शत्रु बन जाता है। यह स्थिति प्रकृति के अनुकूल है तथा विचारणीय है किन्तु इसके अन्तर्गत शोक की अभिव्यक्ति नहीं हुई है जिसको सिद्धान्तों के अनुकूल सिद्ध किया जा सके।[६८]

---

६८—In art however, only that ought to move us which containsinitself the real impart of pathos.
·········We may affirm that neither in comedy nor in tragedy ought pathos to be that which is only folly or personal idiosyncracy. Shakespear's Timon, for example is on purely material grounds a misanthrope, his friends




Object—Dead body of son
विषय—पुत्र का मृत शरीर

After Calkins scheme—
M. W. Calkins—A First Book of Psy. P. 215. 'I' 14.
अनुवाद—डा० रघुवीर के अँग्रेजी से हिन्दी कोश के अनुसार

दूसरी ओर यह टिप्पणी दी जा सकती है कि जहाँ तक वैज्ञानिक परिज्ञान मुख्य-रूप से अपेक्षित है प्रत्येक वस्तु जो शिक्षा, सत्य की प्रामाणिकता तथा अन्तर्दृष्टि पर आधारित है शोक की प्रामाणिक अभिव्यक्ति के लिए अनुकूल विषयसामग्री नहीं हो सकती। विज्ञान के तथ्य इस भौतिकवाद के एक भाग हैं और यही कारण है कि विज्ञान एक विशेष प्रकार की शिक्षा, वैज्ञानिक विशेषरूपों के ज्ञान तथा इस दिशा में किए गए प्रयत्न एवं उनके पारस्परिक असाधारण प्रकार तथा विस्तार से संबंधित महत्त्व के प्रकटीकरण को चाहता है। इस प्रकार के अध्ययन में रुचि किसी प्रकार भी सार्वजनीन रूप में मानवहृदयों पर प्रभाव नहीं डाल सकती प्रत्युत यह सीमित है और सदा (विज्ञान के) भक्तों के संकुचित क्षेत्र में सीमित रहेगी।[६९]

···यह और भी अधिक आवश्यक है कि कला द्वारा प्रत्येक प्रकार की शोकानुभूति,

---

have eaten him up, consumed his substance and when he himself requires their gold desert him. He consequently becomes a passionate enemy of mankind The situation both conceivable and consistant with nature, but it contains no pathos that can justified on principles.

Hegel : Philosphy of fine arts. Page 310,

६९. In another direction we may remark that every thing which depends solely, that is to say, in so far as scientific apprehension is the main requirement, upon instruc ion, testimony to the truth, and insight of what is offered as such is no fit subject matter for the representation of a genuine pathos. The facts of scientific knowledge are a part of this material. And the reason of this is that science demands a particular form of education and effort towards and knowledge of the specific forms of science and their relative importance of exceptional variety and extension, a interest in this type of study is by no means an universally moving influence in the hearts of men, but is limited and must ever remain limited to a narrow circle of votaries.

Hegel: Philosophy of Fine Arts.
Page, 310, 311.

आचार संबंधी प्रत्येक तथ्य जो क्रियात्मक तथा अति आवश्यक रुचि के हैं मानव हृदयों को सौंप दिए जांय।[७०]

...अब इस आवश्यकता के लिए अपेक्षित शोक अपनी अभिव्यंजना के लिए अभिव्यंजना की शक्ति के प्रकाशन का ही नहीं प्रत्युत पूर्ण विस्तार का भी अपेक्षी है... संक्षेपत (इसको) अपनी अभिव्यक्ति को बाह्याकार देने तथा उसकी सर्वांग पूर्णता तक उठने के लिए प्रस्तुत होना चाहिए।[७१]

...आत्मा जो शोक का प्रकाशन करती है वह आत्मा होनी चाहिए जो अमित प्रवाह के लिए पूर्ण हो तथा जो अपने आप को असीम रूप मे विस्तृत (करने) तथा अपने गुणों की अभिव्यंजना के योग्य हो।[७२]

...तब यह अवश्यक है कि शोक इसलिए कि अपने आप में ठोस हो जैसा कि आदर्शकला के लिए होना आवश्यक है अपनी कलापूर्ण अभिव्यक्ति में प्रकाशित होना चाहिए जैसे मानों शोक ठोस तथा सम्पन्न आत्म प्रकृति से प्रवाहित हो रहा हो...[७३]

---

70. It is all the more necessary that we should through art entrust every type of pathos to the human heart, every motive of ethical significance, which are of practical and vital interest.

Hegel: Philosophy of Fine Arts.
Page, 312.

७१. Now a pathos of this need requires for its display not merely the power of exposition, but also that of perfect elaboration. And what is more, the soul which entrusts to its pathos the spiritual wealth it possesses must be one with real wealth to dispose of, and not one that can rest in a condition of purely intensive selfconeentration. It must in short be ready to give an outward semblance to its self expression and rise to the finished perfection of that. P. 312.

७२. The spirit which is to reveal to us pathos must be a spirit which is full to running over, which is able to spread itself adroad and give expression to its virtue. P. 312

७३. That it is neccessary that pathos, in order to be in itself concrete, as it should be in ideal pathos issuing from a spiritual nature, rich and comprehensive. P. 313.

...मानव शोक में देवताओं की सृष्टि होती है तथा शोक अपने अधिक ठोस एवं क्रियात्मक रूप में मानव चरित्र है।[७४]

हेगल के उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि शोक अति व्यापक तथा प्रभावशाली रूप में क्रियाशील होता है। करुण रस की अभिव्यक्ति मानव-मानस को शुद्ध एवं सात्विक बनाती है। इस प्रकार मानव चरित्र निर्माण भी शोकानुभूति पर आधारित है। इसीलिए शोक की आदर्श अभिव्यक्ति के लिए हेगल ने विशेष जोर दिया है।

हेगल के उपर्युक्त विचार भारतीय दृष्टिकोण के अन्तर्गत भी पूर्ण विकसित रूप में प्रकट हुए हैं। करुणरस के अन्तर्गत आध्यात्मिक शोक इस आस्था का मूल आधार है जिसके द्वारा मानव चरित्रगठन ही नहीं प्रत्युत मानव जीवन का ध्येय ईश्वर प्राप्ति भी पूरा होता है।[७५]

अपने यहाँ प्रामाणिक एवं अप्रामाणिक शोक का विभाजन नहीं हुआ किन्तु यह भी निर्विवाद है कि पाश्चात्य साहित्य के समान शोक के अप्रामाणिक चरित्रों को भी भारतीय साहित्य में स्थान नहीं मिला। मानवता का प्रेमी भारतीय कवि कभी मानवद्रोही पात्रों की कल्पना ही न कर सका। इसलिए इस प्रकार के विभेद की कभी आवश्यकता भी अनुभव नहीं हुई।

**करुणरस के दोष**—करुण रस के संभावित दोष निम्न हैं।

शब्द वाच्यता— स्वशब्द द्वारा रस, स्थायी भाव अथवा संचारी भावों का कथन दोष होता है क्योंकि रस व्यंग्यार्थ है। व्यंजना द्वारा ही उसका आस्वादन होना चाहिए।[७६]

---

७४. The gods are born into pathos of man, and pathos in its more concrete form of activity is human character. P. 314
Hegel: Philosophy Of Fine Arts.

७५. उपाध्याय जी ने वैदही वनवास के वक्तव्य में हेगल के विचारों के समान ही निम्न शब्दों में अपना मत प्रकट किया है-

"करुण रस द्रवीभूत हृदय का वह सरस प्रवाह है जिससे सहृदयता क्यारी सिंचित, मानवता फुलवारी विकसित और लोकहित का हरा-भरा उद्यान सुसज्जित होता है।"

करुण रस की इसी द्रवीभूतता संवेदना की तीव्रता तथा सहानुभूति की विशेषता को दृष्टिगत रखते हुए ही तो भवभूति ने कहा था—

एको रसः करुण एव निमित्त भेदा—
द्भिन्नः पृथक् पृथगिव श्रयते विवर्तान्।
आवर्तबुद्बुदतरङ्गमयान्विकारा—
नम्भो यथा सलिलमेव हितत्समग्रम्॥ ३/४७ चौ०'५३

७६. "व्यभिचारिरसस्थायिभावानां शब्दवाच्यता"—काव्यप्रकाश७/६०—६२

विरोधी रस वर्णन—वर्णनीय रस की विरोधी सामग्री का प्रयोग दोष है। करुण रस के विरोधी रस श्रृंगार तथा हास्य हैं। अतः करुण रस के वर्णन में इन रसों के विभावादि का वर्णन अनुचित होगा।[७७]

रस पुनर्दीप्ति—रस परिपाक के पश्चात् उसी रस का पुनः वर्णन—मानव स्वभाव के अनुसार अरुचिकर होता है। इसीलिए यह भी एक दोष माना गया है।

अकाण्ड छेदन—असमय में रस भंग सामाजिक की जिज्ञासा को अधूरा छोड़ने के कारण असंगत होता है। इसीलिए दोष गिना जाता है।

करुणरसाभास—रस का अनौचित्यरूप में व्यंजित होना रसाभाव कहलाता है। विरक्ति में शोक का वर्णन करुण रसाभास कहलायगा।

रसदोषों का आधार मूलतः मनोवैज्ञानिक है। मानव—व्यवहार के अध्ययन के अन्तर्गत हुई खोज के आधार पर स्पष्ट है कि आत्मश्लाघा, प्रसंग प्रतिकूल चर्चा, विषयसमाप्ति के पश्चात् पुनः उसी का प्रारम्भ तथा बीच में किसी प्रसंग को अधूरा छोड़ना मानव व्यवहार एवं शिष्टाचार के नाते अवांछनीय हैं। व्यवहारमान्य आचार संबंधी यही विचार साहित्य में भी स्थान पा सके तथा क्रमशः शब्दवाच्यता, विरोधी रस वर्णन, रस पुनर्दीप्ति तथा अकाण्ड छेदन आदि के रूप में दोष गिने गए।

रसनिष्पत्ति—रसनिष्पत्ति के संबंध में भारतीय आचार्यों का सिद्धान्त "विभावानुभाव व्यभिचारि संयोगाद्रसनिष्पत्तिः" गेस्टाल्ट मनोविज्ञान की मान्यताओं के पूर्ण अनुकूल है जिसके अन्तर्गत प्रत्येक वस्तु जात में संपूर्णता की स्थिति मानी गई है। रस निष्पत्ति का विवेचन करते हुए प्रपानक रस का उदाहरण दिया जाता है जिसकी सार्थकता ही संपूर्णता में है। प्रपानक रस की वस्तुएँ पृथक्-पृथक् रहकर अपना पृथक् अस्तित्व भले ही रखें किन्तु प्रपानक रस की अनुभूति संभव नहीं हो सकती। यह पूर्णता भारतीय चिन्तनधारा का मूल आधार है। यहाँ कोई नई वस्तु नहीं है—

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते।
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते॥

**मनोविज्ञान की समीक्षा में करुणरस—**

मनोविज्ञान की समीक्षा के अन्तर्गत शोकानुभूति को जीवन रक्षा का एक प्राकृतिक साधन कहा जा सकता है जिसके द्वारा विश्रृंखल होने से पूर्व नाड़ीसंस्थान संतुलन प्राप्त कर लेता है। मानसिक अथवा शारीरिक संतुलन प्राप्त करना ही मनोवैज्ञानिक दृष्टि

---

७७. "विरोधिरस सम्बन्धिविभावादि परिग्रहः" ध्वन्यालोक ३—१८
"प्रतिकूल विभावादिग्रहो" — काव्याप्रकाश ७/६१
"परिपन्थि रसांगस्य विभावादेः परिग्रहः" साहित्यदर्पण ७—१३

से मानव-अन्तर्वृत्तियों का प्रमुख कार्य है। भौतिक जगत के सम्पर्क में मानव इस संतुलन को विशेष परिस्थितियों के अन्तर्गत खो देता है। उसको पुनः प्राप्त कराकर जीवन रक्षा के साथ जीवनयापन को सुलभ बनाना इन अन्तर्वृत्तियों का काम है। इसीलिए मनोविज्ञान-शास्त्रियों ने इनको अतिरिक्त शक्ति के प्रवाह की प्रवाहिका भी कहा है। करुणरस के संचारी भावों को इन अन्तर्वृत्तियों के साहित्यिक नाम समझने चाहिए। संचारी भाव रसनिष्पत्ति की ओर अग्रसर कराने के साथ अतिरिक्त शक्ति-प्रभाव को प्रभावित भी कर देते हैं। इस निस्सरण विधान से मानसिक स्फूर्ति प्राप्ति होती है। मध्ययुगीन कवियों ने इस मनोवैज्ञानिक तथ्य का विशेष अध्ययन किया तथा शास्त्रीय संचारी भावों से इतर अन्य प्रभावशाली अन्तर्वृत्तियों की भी खोज की। तुलसी एवं सूर इस सम्बन्ध में विशेष उल्लेखनीय है।

साहित्यिक आस्था के अनुकूल मनोविज्ञान भी इन अन्तर्वृत्तियों को वासनागत मानता है। जन्मजन्मान्तर वासनाओं का बीजभूत अचेतन आज की नवीनतम खोज है। रस सिद्धान्त अनुभूति-क्षेत्र की वस्तु होने के कारण वासनागत तथ्यों पर विशेष रूप से आश्रित है। इसीलिए "अरसिकेषु कवित्व निवेदनं" अनुपयुक्त समझा गया।

मनोवैज्ञानिक अध्ययन अन्तर्वृत्तियों के सूक्ष्मातिसूक्ष्म भावों को प्रकट करने के साथ शोकानुभूतिगत वाह्यव्यजंकों के लिए भी उदासीन न रहा। शोकानुभूतिगत मुख की सूक्ष्म विवेचना की गई। आलंबन की विशेष गतिविधि को सकारणता देने के प्रयत्न हुए। शास्त्रीय विवेचन के अन्तर्गत आदि आचार्य भरत ने तत्त्वतः मनोवैज्ञानिक अध्ययन को अपने विवेचन का आधार बनाया तथा संभव बाह्यव्यंजकों की सूक्ष्मातिसूक्ष्म समीक्षा की। पाश्चात्य मनोविज्ञान के विद्यार्थी के लिए अन्तर्वृत्तियों की नवीन खोज तथा बाह्य व्यंजकों का विस्तृत एवं सूक्ष्म अध्ययन कुतूहल एवं प्रशंसा का विषय बन सकता है किन्तु भारतीय मनीषियों ने यह खोज आज से हजारों वर्ष पूर्व कर ली थी यह जानकर उसको दांतों तले उँगली दबानी पड़ेगी। यही क्यों भारतीय मनीषियों का अनुसंधान आज भी कई दिशाओं में आगे है तथा पाश्चात्य विद्वानों का पथप्रदर्शन कर सकता है।

यह जानकर हर्ष होता है कि यद्यपि भारतीय मनीषियों ने मनोविज्ञान के नाम से किसी विषय का पृथक् विवेचन नहीं किया तथापि उनका रससिद्धान्त पूर्णतया मनोविज्ञान की अधुनातम खोज के पूर्ण समीप है।

डा० अम्बाप्रसाद 'सुमन'

# जन्म-संस्कार के लोकाचार और उनसे सम्बन्धित शब्दावली[1]

## (ब्रज-कोर-क्षेत्र बोली के आधार पर)

ब्रज-भाखा अर्थात् ब्रज की बोली ही अपनी व्यापकता एवं भावाभिव्यंजना की सबलता के कारण ब्रज-भाषा नाम की अधिकारिणी हुई। हिन्दी का मध्यकालीन साहित्य तो प्राय: ब्रजभाषा में ही लिखा गया। भाषा का क्षेत्र भी बड़ा विस्तृत है। यदि हम मथुरा को केन्द्र मानकर ब्रजभाषा की सीमाएँ निर्धारित करें तो दक्षिण में आज भी यह भाषा आगरा भरतपुर के अधिकांश भाग, धौलपुर, करौली, ग्वालियर के पश्चिमी भाग तथा जयपुर के पूर्वी भाग में बोली जाती है। उत्तर की दिशा में यह गुड़गाँवा के पूर्वी भाग में बोली जाती है। उत्तर-पूर्वी दुआबे में यह बुलन्दशहर, अलीगढ़, एटा और मैनपुरी में तथा गंगापार करके कुछ-कुछ बदायूं, बरेली और नैनीताल की तराई में भी बोली जाती है। ब्रजभाषा का कुल क्षेत्रफल २७ हज़ार वर्गमील है और बोलने वालों की संख्या ७९ लाख के लगभग है।

उपर्युक्त ब्रजभाषा—क्षेत्र में ब्रज की बोलियों के हमें कई रूप सुनने में आते हैं। भाषा के पंडितों ने ब्रजभाषा की उन बोलियों को पाँच भागों में विभक्त करके उनका नामकरण इस प्रकार किया है—

१. आदर्श ब्रज बोली——यह अलीगढ़, मथुरा और पश्चिमी आगरे में बोली जाती है। ग्रियर्सन महोदय ने अलीगढ़ की बोली को स्टैंडर्ड ब्रजभाषा बताया है। साहित्यिक हिन्दी की क्रिया 'आता है' के लिये तह० कोल में 'आवत्वै' बोला जाता है। यही तह० खैर में 'आवै' हो जाता है।

२. अन्तर्वेदी ब्रज बोली——एटा, मैनपुरी के गांवों इस बोली का रूप सुना जा सकता है। वास्तव में कन्नौजी से गले मिलने वाली ब्रज-बोली ही 'अन्तर्वेदी' कहाती है। आदर्श ब्रज का भूतकालिक 'औ' अन्तर्वेदी के 'ओ' में बदल जाता है। फिर यही

---

१. यह लेख ओरिएंटल कॉन्फ्रेन्स, देहली में पढ़ा गया था।

ओकारान्तता कन्नौजी क्रियाओं तथा संज्ञाओं में स्पष्टरूपेण सुनाई पड़ती है। अलीगढ़ जिले की कोल, हाथरस तथा मथुरा तहसीलों के गांवों में कहा जाता है कि "गु छोटौ छोरा चलौ गौ"—(त० कोल में) और "गु छोटौ छोरा चल्यौ गयौ।" (हाथरस तथा मथुरा तहसील में)। यही वाक्य जिला एटा के उन गांवों में, जो तहसील सिकंदराराऊ की सीमा को स्पर्श करते हैं, इस रूप में सुनने को मिलता है कि—"बो छोटो छोरा चलो गओ।" जिला बदायूँ में भी 'आना' 'जाना' की धातु के भूतकालिक रूप 'आओ' गओ' ही सुनने में आते हैं। इतना ही नहीं सर्वनाम शब्दों में भी पर्याप्त अन्तर सुनाई पड़ता है। अलीगढ़ की कोल तहसील में यदि एक स्त्री 'मोकूँ' या 'मोकौं' (मुझको) बोलती है तो कासगंज तहसील की स्त्री उसका उच्चारण 'मोको' करेगी। केलॉग महोदय ने अपनी व्याकरण की पुस्तक—'ग्रामर आफ दी हिन्दी लैंग्वेज' में 'था' के लिये ब्रजभाषा रूप 'हो' और कन्नौजी रूप 'हतो' लिखा है। यदि ब्रज-क्षेत्र में घूमकर बोली का अध्ययन किया जाय तो वस्तु-स्थिति के सम्बन्ध में बहुत-सी नई बातें मालूम पड़ेंगी। अलीगढ़ जिले की कोल, हाथरस आदि तहसीलों में आज भी दोनों रूप प्रयुक्त होते हैं जैसे "मैं वहाँ था" के लिये ब्रजभाषा-रूप होगा—"हूँ ह्वाँ हतो" अथवा "हूँ ह्वाँ हो।" आज के अनुसंधित्सुओं को ब्रजभाषा-क्षेत्र का नये सिरे से सर्वेक्षण करना चाहिये।

३. सिकरवाड़ी—नाम की ब्रज बोली ग्वालियर के उत्तर-पूर्व में बोली जाती है।

४ जादोबाटी—नाम की जनपदीय ब्रजभाषा करौली के आस-पास बोली जाती है।

५. डांगी—नाम की ब्रज-बोली ने भरतपुर के क्षेत्र में अपना प्रभुत्व स्थापित कर रखा है।

ये उपर्युक्त पाँचों ब्रजबोलियाँ ब्रजभाषा के ही अन्तर्गत मानी जाती हैं।

सूर आदि अष्टछाप के कवियों के काव्यों में प्रधान रूप से औकारान्तता ही दृष्टिगोचर होती है। अलीगढ़ मथुरा की ब्रजभाषा में 'खाना', 'आना' आदि की धातुओं के भूतकालिक एक वचन रूप 'खायौ', 'आयौ' प्रचलित हैं। सूर के सूरसागर की भाषा भी यही है—"ब्रज पर सजि पावस दल आयौ।" भाषा की वास्तविक प्रकृति उसके क्रियारूपों से ही मालूम पड़ती है। यदि सूरसागर के संपादन में कहीं 'खायौ' और कहीं 'खायो' लिखा गया मिलता है तो भाषा की दृष्टि से आज उसके संपादन का कार्य नये सिरे से होना चाहिए और उसकी मुद्रित तथा अमुद्रित सभी प्रतियों को एकत्र करके संपूर्ण पाठ-भेद देने चाहिये। तब कहीं हम सूर की भाषा के सच्चे स्वरूप से पूर्ण परिचय प्राप्त कर सकेंगे। हर्ष का विषय है कि केन्द्रीय सरकार सूरदास के काव्य ग्रन्थों की शब्दानुक्रमणी अलीगढ़ विश्वविद्यालय के संस्कृत-हिन्दी-विभागाध्यक्ष प्रो० हरवंशलाल शर्मा एम० ए०, डी० लिट्० की देख-रेख में तैयार करा रही है और इसी विश्वविद्यालय में सूफी कवियों के प्रेम काव्यों का तथा अमीर खुसरो की कृतियों का संपादन-कार्य भी कराया जा रहा है।

ब्रजभाषा के काव्यों को समझने के लिये पहले हमें ब्रज की बोलियाँ तथा ब्रजक्षेत्र की संस्कृति से पूर्ण परिचय प्राप्त करना परमावश्यक है। ब्रजसंस्कृति से सम्बद्ध शब्दावली ही हमें ब्रजभाषा के काव्यों के समझने के लिये प्रशस्त मार्ग दिखा सकती है। इसी दृष्टि से अलीगढ़— जनपद की बोली पर आधारित कुछ लोकाचार-सम्बन्धी शब्दावली का विवेचन इस लेख में किया गया है।

अलीगढ़ का प्राचीन नाम 'कोल' है जो तहसील के नाम के रूप में अब भी अवशिष्ट है। ग्रामीण जन इसे 'कोल' न कहकर 'कोर' कहते हैं। उपर्युक्त ब्रजभाषा-क्षेत्र को दृष्टिपथ में रखकर हम कह सकते हैं कि अलीगढ़ जिला ब्रजभाषा-क्षेत्र की उत्तरी-पश्चिमी कोर ( किनारा ) ही है। अलीगढ़ से मिले हुए बुलन्दशहर और बदायूँ के जिलों में तो भाषा बदल ही जाती है। अत: भाषा की दृष्टि से अलीगढ़ जिला कोर ( सं० कोटि > हिं० कोर सिरा, किनारा) ही है। अलीगढ़ जिले में इस समय छह तहसीलें हैं—(१) खर (२) कोल (३) अतरौली (४) सिकन्दराराऊ (५) हाथरस (६) इगलास।

इन तहसीलों के गांवों में पुत्रजन्म के समय जो लोकाचार मनाये जाते हैं उनमें सांस्कृतिक भावनाओं के मूल स्रोतों तथा स्वच्छन्द प्रवाहिनी ब्रज-लोकभाषा की गति का पूरा-पूरा आभाव मिल जाता है। लोक-संस्कृति हमें अपनी बोली के शब्दों के जीवन एवं अर्थस्वरूप से भी परिचय प्राप्त करा देती है। शब्दों के शरीर से ही देश की नूतन-पुरातन सभ्यता एवं संस्कृति लिपटी हुई रहती है। सूरसागर में प्रयुक्त 'कांपौ', 'हठरी', 'कारे कोस', 'लाल मुनइयन' आदि शब्दों का क्या बिम्बग्रहणात्मक अर्थ है, उसे ब्रजलोक-संस्कृति का सच्चा प्रेमी तथा गम्भीर द्रष्टा ही समझ सकता है और वही अर्थोद्भूत भाव में डूबकर आत्मरमण भी कर सकता है। जायसी के 'खोंपा' और सेनापति के 'सुरतरुसार' शब्द की चित्रात्मक व्याख्या क्या है, इसे लोक-संस्कृति एवं लोक-भाषा के जिज्ञासु भक्त से पूछिए। सतसैया के दोहरा 'नावक के तीर' क्यों बताये गये हैं, इसका उत्तर वही दे सकता है जो कन्धे पर लोटा-डोर डालकर और हाथ में झोला-डंडा लेकर घर से निकल पड़ा हो और जो जनपदीय जनों के जीवन में घर करने के लिये घर-घर अलख जगाता फिरा हो।

भाषाविज्ञानियों की पारिभाषिक शब्दावली में पश्चिमी हिन्दी ही 'हिन्दी' नाम से व्यक्त की गई है। हरियानी, कौरवी (खड़ी बोली), ब्रजभाषा, कन्नौजी तथा बुन्देली नाम की बोलियाँ पश्चिमी हिन्दी के अन्तर्गत मानी जाती हैं। माधुर्य की दृष्टि से इन जनपदीय बोलियों में ब्रजभाषा का स्थान सर्वोच्च है। उसमें ब्रजकोर-क्षेत्र की भाषा तो आदर्श-भाषा है। मध्यदेशीय भाषा के विस्तृत क्षेत्र का पर्यटन करने के उपरान्त हम इस निष्कर्ष पर आ जाते हैं कि भारतीय संस्कृति की माला में पुष्प तो अनेक प्रकार के हैं, किन्तु उनमें सुगन्ध एक सी ही है। वस्तुत: हमारी संस्कृति का एक भाव-ब्रह्म ही ललित लीला-प्रदर्शन में 'बहुस्याम्' कहकर साकार बन गया है।

ब्रजकोर-क्षेत्र के जन्मसंस्कार सम्बन्धी सम्पूर्ण लोकाचार आशा, हर्ष एवं उल्लास के लोकाचार हैं जो अनेक प्रकार के गीतों तथा पूजार्चना के माध्यम से सम्पन्न होते हैं। जन्म-संस्कार की पृष्ठभूमि में प्रथम संस्कार गर्भाधान है, जो प्रच्छन्न एवं मौन रूप में ही होता है। किन्तु जब स्त्री का गर्भ सात मास का हो जाता है तब साध आमनु (सं० श्रद्धा-आगमन) नाम का एक लोकाचार होता है। इसे ही हमारे शास्त्रों में 'पुंसवन' (पुं + सू + ल्युट् = पूंसवन = पुमान् सूयते अनेन) कहा गया है, क्योंकि इसी से पुरुष की उत्पत्ति होती है। 'साध-आमुन' से ही गर्भवती स्त्री तथा उसके कुटुम्बियों के मन में सन्तान की आशा दृढ़ एवं परिपक्व हो जाती है। साध शब्द में ही प्रेम, आशा, अभिलाषा आदि के भाव समाविष्ट हैं—सं० श्रद्धा>सद्धा>साध। साधआमनु पर गर्भवती के पीहर (सं० पितृ-गृह) से कुछ तीहरें, बागे, पकवान और फल जाते हैं। यह आई हुई सामग्री भी साध या साद ही कहाती है। तब गर्भवती स्त्री चौक पर बैठकर साध में आये हुए अपने कपड़े पहनती है और ननद आरता (सं० आरात्रिक>आरता पूजन के थाल को सिर के आगे घुमाने की एक मांगलिक क्रिया) करती हुई यह गीत गाती है—

### आरता गीत

"न्हेंनी न्हेंनी बुंदियन बरसैगो मेहु,
त्यारी मानि करिगी आरतौ।

फिर अन्य बड़ी-बूढ़ी स्त्रियाँ चौक नाम का गीत सामूहिक रूप से गाती हैं—

### चौक गीत

'आई धना[1] रानी चौक पै, होरिल[2] कण्ठ लगाइ,
अजुध्या में अनंद बधामनी।
आई सुभद्रा[3] आरतें[4], मांगति अपनो नेगु।"

ऐसे गीत पुत्रोत्पत्ति की साध (इच्छा) को लेकर गाये जाते हैं। सास तथा अन्य बूढ़ी बैयरबानियाँ (स्त्रियाँ) चौक[5] पर बैठी हुई गर्भिणी की कोख (सं० कुक्षि) पर हल्दी के छींटे लगाती हैं और कहती जाती हैं—

"खानी अघानी, पूत सिहानी, दूधन न्हाय, पूतन फलै।"

---

१. धना गर्भिणी, गर्भवती। लोक में गर्भ के लिए 'धन' शब्द चालू है।
२. होरिल = पुत्र।
३. सुभद्रा = कृष्ण की बहिन, भावी बालक की फूफी, गर्भिणी स्त्री की ननद।
४. आरतें = आरते के लिये।
५. चौक = नाई या नाइन द्वारा धरती पर गेहूँ के आटे से बनाया हुआ एक प्रकार का वर्ग जिसके मध्य में ऐसा 卐 स्वस्तिक चिह्न भी बनता है।

साध-अमनु के उपरान्त बालक के जन्म तक कोई लोकाचार नहीं मनाया जाता। जिस दिन बालक या बालिका का जन्म होता है उस दिन कुछ लोकाचार तथा नेगचार किये जाते हैं। जन्ति की पीर (प्रजनन-पीड़ा) के समय चलनी (सं० चालनी>चलनी =आटा छानने की एक वस्तु, छलनी) में जौ भरकर गर्भिणी स्त्री के आगे रख दिये जाते हैं। तब बैमाता (सं० विधिमाता=संतान को गर्भ में बनाने वाली एक मातृका-शक्ति) की मनोती मनाते हुए उन जौओं से गर्भिणी का हाथ लगवा दिया जाता है। फिर सास चलनी के उन जौओं को दो भागों में विभक्त कर देती है। इस क्रिया को ओंड़ा-कोंड़ा कहते हैं। अन्त में बच्चा हो जाने पर वे जौ दाई (सं० धात्रिका>धाइआ >धाई>दाई=बच्चे के पैदा करने में सहायता करने वाली स्त्री) को दे दिये जाते हैं। जब जच्चा (सन्तान उत्पन्न करने वाली गर्भमुक्त स्त्री) सोभर (सं० सूतिगृह) में खाट पर लेट जाती है तब स्त्रियाँ मिलकर सन्तान की मंगलकामना की दृष्टि से एक गीत गाती हैं, जिसे बै कहते हैं। वे गीतों को जच्चा या बिहाई नाम से भी पुकारती हैं। बै गीतों में यह भावना व्यक्त की जाती है कि बैमाता की कृपा और आशीर्वाद से जच्चा के पुत्र पैदा हुआ है। पुत्र जन्म के समय ही बै गीत गाया जाता है, पुत्री के जन्म पर नहीं।

### बै गीत

"आओ बै, आओ बै।[1]
पइयाँ परति हूँ, लीलरियाँ[2] करति हूँ।
पूत को जनम, बहू को आमनु,
जो बै देइ तो पाइऐ।"

जब गागर (सं० गर्गरी=घड़ी) को बीच में से तोड़कर उसका नीचे का भाग सुरक्षित रख लिया जाता है, तब वह खपरा (सं० कर्पर) कहाता है। दाई पैदा हुए बच्चे को खपरे में बैठाकर स्नान कराती है और फिर सूप में रखकर जन्तिहारी (जच्चा) की दाहिनी ओर सुला देती है।

बच्चा पैदा होने वाले दिन से ही गीत आरम्भ हो जाते हैं और प्रतिदिन डठ्डौन या दस्ठौन (सं० दशमोत्थान=नामकरण संस्कार का दिन) तक गाये जाते हैं। नामकरण के लिये तगा-बधना भी कहा जाता है। नामकरण संस्कार ब्रजकोर-क्षेत्र में प्रायः दसवें दिन ही होता है। दस्ठौन तक जो गीत प्रतिदिन गाये जाते हैं उनके नाम इस प्रकार हैं— बै (जच्चा) या बिहाई, कठुला, पालना, झुंझना, सतिया, सौठ जीरा, लपसी, करावली, मनगुर और आरता।

१. बै—सं० विधि>बइ>बै=विधिमाता।
२. लीलरियाँ=खुशामद, मनुहार।

उपर्युक्त गीतों में बच्चा, सतिया, जीरा, लपसी, करावली और मनगुर नाम के लोकगीत जच्चा से सम्बन्धित हैं और शेष बालक से सम्बन्धित होते हैं।

जच्चा को जन्ति ( प्रजनन ) के तीसरे दिन से ही एक विशेष प्रकार का औटा हुआ पानी पिलाया जाता है, जिसे चरुआ या बत्तीसा कहते हैं। बत्तीसी वस्तुओं से कोरी हँड़िया ( सं० भण्डिका>हण्डिया>हंडिया ) में बत्तीसा तैयार किया जाता है। उस हंडिया को भी चरुआ कहते हैं। चरुआ शब्द वैदिक संस्कृत 'चरु' से सम्बन्धित है। ऋग्वेद में यह शब्द पात्र विशेष के अर्थ में आया है। इन्द्र के प्रति की हुई प्रार्थना में यह शब्द एक मंत्र में इस प्रकार हुत प्रायु आ है—

"सनो वृषन्नमुं चरुं सत्रादावन्नपावृधि ।
असमभ्यमप्रतिष्कृतः ।" —अ-टक् १।७।६

( अर्थात् हे अभीष्ट फल को देने वाले बलवान् इन्द्र ! हमारे लिए अन्नपात्र का का ढक्कन खोल दे। )

चरुए की हँड़िया पर जो गोबर के सतिये (सं० स्वस्तिक) धरे जाते हैं वे भी चरुए ही कहाते हैं। उस समय गाया जाने वाला एक विशेष गीत भी चरुआ गीत कहाता है।

## चरुआ गीत

"लाओ रे हरद देउ बहुत चहचई,
बेगि कुन्दनपुर जाओ,
रुक्मिनी के बाप कें।
बैठे वाके पांचो भइया,
नाऊनें करायो है जुहार,
रुचन कहाँ पाहए ।।"

चरुए और सतिये ( सं० स्वस्तिक-प्रा० सतियआ-सतिय ) एक ही दिन धरे जाते हैं। द्वार की चौखट के पास दाईं-बाईं ओर का हिस्सा कौरा कहते हैं। इसके लिये संस्कृत में द्वारोपान्त शब्द का प्रयोग किया गया है प्रसूतिका-गृह के द्वार के कौरों पर सतिया और फूल छबरिया ( सं० फुल्ल क्षाबुरिका-फूल छत्ररिया ) धरी जाती है। सतिये दो प्रकार के होते हैं। (१) पुतसतिया[1] (२) कगसतिया[2]। पुत्र जन्म पर पुतसतिया ही

---

१. पुतसतिये मोर की आकृति के बनाये जाते हैं।

२. कगसतिये में स्वस्तिक चिन्ह 卐 बनाया जाता है।

धरा जाता है। यदि पहले पहल पुत्री का जन्म हुआ हो तो कगसतिया धरा जाता है। पुतसतिया मुख्यत: गेरू और गोबर से बनाये जाते हैं। जच्चा के सम्बन्ध में छठी तक जो विशिष्ट गीत गाये जाते हैं, उन्हें बिहाई (सं० वर्धापिका) भी कहते हैं। बालक के जन्म-दिन से छठे दिन होने वालेमांगलिक लोकाचार छठी (सं० षष्ठी) कहाता है।

भारतीय संस्कृति और सहित्य की परम्परा में अमूर्त को मूर्त बनाने की भावना सदा से प्रबल रही है इसी के प्रवाह में बहते हुए बहुत से शब्द भाववाचकत्व से जातिवाचकत्व को प्राप्त हुए हैं। वैदिक संस्कृत का शत्रुतावाची 'अराति' शब्द पाणिनीय संस्कृत में 'शत्रुवाचा' बना। अनुग्रहवाची 'मृडीक' पाणिनीय संस्कृत में शिव के नाम का अर्थ देने लगा। अधिक क्या कहें 'देवता' ने ही भाववादीपन को छोड़कर जातिवादीपन ग्रहण कर लिया है। उसी मार्ग का अनुसरण करते हुए विहाई भी लोक-गीतों के संसार में साकार, चेतन और क्रियाशील हो गई है। भाषाविज्ञान के अर्थपरिवर्तन के प्रकारों में इसी अर्थ-विकास को तो मूर्तीकरण की दिशा कह देते हैं। निम्नांकित बिहाई गीत में बिहाई का मूर्तीकरण करके मनोवांछा-पूर्ति के लिये उसका स्वागत किया गया है।

**बिहाई गीत**

"पिछवार बिहाई चों खड़ी ?
तुम रीती जाउ कुम्हार कें,
भरी हमारें आउ।
पिछवार बिहाई चों खड़ी ?
हड़िया परिया छोड़ि कें,
करए हमारें लाउ।
पिछवार बिहाई चों खड़ी ?"

मिट्टी का एक लोटा-सा, जिसमें पानी निकलने के लिए छोटी-सी टोंटी लगी रहती है, करयो या करवा कहाता है। बालक को प्राय: करए की धार से ही स्नान कराया जाता है। इसीलिए बिहाई गीत में करवों की माँग की गई है। ( सं० करक-हिं० करवा = मिट्टी का एक पात्र। कमण्डलौ च करक: -अमरकोश, ३।३।६ )। कुम्हार के घर से करए मँगवाना पुत्रजन्म की मन:कामनाओं का सूचक है। अलीगढ़ जनपद के गांवों में निम्नांकित बिहाई बहुत गाई जाती है। इसमें सीता जी की उस दयनीय परिस्थिति का वर्णन है जब कि बाल्मीकि के आश्रम उनके गर्भ से लव-कुश का जन्म हुआ था।

"सिया ठाड़ी पछिताइँ कुस बन में भये।
कुस बन में भये री, नौ कुश[1] बन में भये।

---

१. न म परिवर्तन हो गया है। संस्कृत का लवण शब्द इसी नियम के आधार पर हिन्दी में नोंन बन गया है ( सं० लवण-नउन-नोंन )।

जौ घर होतीं ससुलि हमारी,
चरुए देतीं धरवाइ, कुस बन में भये।
सिया ठाड़ी पछिताइँ कुस बन में भये।"

जच्चा नाम के गीतों में यह गाया जाता है कि ननद सतिये रख रही है, जिठानी पलिका (सं० पर्यङ्क, पल्यंक > हिं० पलंग-ब्रज बोली० पलिका) बिछाती है, द्योरानी (देवरानी) बीजना (सं० व्यजन = पंखा) ढुरती है, देवर तीर सांधते हैं, नाइन बुलावा लगाती है, धोबिन सोभर के कपड़े धोकर लाती है, सखी-सहेलियाँ मंगल गाती हैं और पंडितजी राशियाँ गिनकर बालक का नाम धरते हैं। जच्चा नाम के गीत उपरान्त सतिया गीत भी गाया जाता है—

## सतिया गीत

'दूरि दिसा ते आई ननदुलि बगर[1] बतइयौ मेरे बीर[2] को।
लाइकें बीबी हरौ-हरौ गोबरु, लीपति सलिल पछीत।
सतिये धरौ बीबी मोर मुरारे, गिनि गिनि रोपो सींक।
धरि-सतिये बीबी भई ठाड़ी, झगरति अपनो नेग॥

जन्म के छठे दिन छठी (सं० षष्ठी > प्रा० छट्टी > हिं० छठी) होती है। जच्चा की खाट के सिरहाने वाले दाहिने पाये के मत्थे पर छठी देवी (सं० षष्ठी देवी) काढ़ी जाती है। उसे पीला कपड़ा उढ़ाया जाता है और लपसी (सं० लप्सिका = हलुए की तरह का एक लेह्य पदार्थ) से उसे पूजा जाता है। छठी-पूजन हमारा प्राचीन पूजन है। बैं या बिहाई नाम के गीतों और छठी-पूजन के संकेत हमें बाणभट्टकृत 'कादम्बरी' में मिलते हैं। बाण ने बिहाई गीत और छठी देवी के पूजन का वर्णन अपने ढंग से किया है। राजा तारापीड की पत्नी के गर्भ से जब चन्द्रपीड का जन्म हुआ था, तब सूतिका-मंगल[3] गीत गाये थे और षष्ठी देवी का[4] पूजन भी हुआ था।

छठी देवी का पूजन के समय जो विशेष गीत गाया जाता है उसे छठी गीत कहते हैं।

---

१. बगर = घर।

२. बीर = भाई।

३. "सूतिकामंगलगीतिका"—दे० कादम्बरी, बंगला संस्करण, पृ० २७६—सूतिकागृह-वर्णना खण्ड में।

४. स्वास्तिकभक्ति जालमुपरचयिता पिंजराम्बरधारिणीं भगवती षष्ठी देवीं कुर्वता" कादम्बरी, बंगला-संस्करण, सूतिकागृहवर्णना खण्ड, पृष्ठ २७७।

### छठी गीत

"छठीय पुजन्ती आई रे जचरिया ।
दूध-पूत चरन आ को जीवे ।
कोरिव माँग कूँ नित सुख हूजे ।
आज गोद भरी वाई रे जचरिया ।।"

छठी के दिन गाये जाने वाले गीतों में पालना, झुंझना, जीरा, सोंठ, कारावली आदि प्रसिद्ध हैं । इन गीतों के नाम प्राय: उन वस्तुओं के नामों पर पड़ गये हैं जिनसे या तो बालक खेलता है या जच्चा जिन्हें प्रसूतावस्था अपने काम में लाती है । सारांश यह है कि छठी के दिन गाये जाने वाले लोक-गीत जच्चा में और बच्चे के जीवन के चारों ओर चकफेरी लगाते हैं । किसी गीत में दादी-बाबा लाला के लिये कठुला और झुंझना लाते हैं तो किसी में जच्चा के लिए सोंठ और पीपर लाने की चिन्ता की जाती है । किसी गीत में जच्चा बालक को पालने में झुलाती है —

### पालना गीत

'काउ छैला सँवरिया की नारि,
अटा पै ठाड़ी झुलावे पालना ।
वाके बाबा नें गढ़ायो पालना,
वाकी दादी झोटा दे रही ।"

### झुंझना गीत

"मेरे हाथ झुंझना लाल रे ।
सोने को झुंझना बाजनो,
वाके बाबा नें गढ़ायो, झुंझना ।
दादी के लड़ैते खेलि रे ।
मेरे हाथ झुंझना लाल रे ।"

जन्म-संस्कार के सब लोक गीत जब एक साथ गाये जाते हैं तब उन्हें रनझांझन कहते हैं । बालक का नाम रख जाने के उपरान्त मनगुर और करावली (करावली = कढ़ाई शब्द का ब्रजबोली-रूप) गीत विशेष रूप से गाये जाते हैं । नाम के पश्चात् जच्चा के चौके पर से उठने से पहले मानि (बच्चे की फूफी) प्रसूतिका-गृह के कौरों पर रखे हुए पुसतियों और छबरियों को उचेल लेती है । तदुपरान्त उस स्थान पर ऐंपन (चावल आटे का बना हुआ द्रव विशेष) से पुतसतिये और छबरिया काढ़ दी जाती है । फिर

जच्चा चौक पर से उठकर गंगा नदी की दिशा में बने हुए कोठे (सं० कोष्ठ> प्रा० कोठ्ट> हिं० कोठा छोटा कमरा-सा) में प्रवेश करती है। वहाँ उसकी सास उसका और बच्चे का सिर हिलाकर असीस (सं० आशीस) देती है। तब जच्चा को कुछ खाने के लिये दिया जाता है, जिसे मुंह जुठारना या मुंह जिठारना कहते हैं। सवा महीने के पश्चात् जच्चा को पहली चूड़ियाँ उतरवाकर उनके स्थान पर नई चूड़ियाँ पहनवाई जाती हैं। इस लोकाचार को चुरियाबढ़न कहते हैं। तब जननहारी की जच्चा संज्ञा समाप्त हो हो जाती है और घर का प्रत्येक काम काज करने लगती है।

श्री कैलाश चन्द्र भाटिया

# अँग्रेजी 'र' और हिन्दी में उसके विभिन्न स्वरूप

अंग्रेजी स्वनिम /र~r/ के प्रधान संस्वन [ऱ~ɹ] का उच्चारण करने के लिए जिह्वानोक वर्त्स के पिछले भाग के समीप रह कर वायु-मार्ग को इतना संकीर्ण कर देती है कि फेफड़ों से आने वाली हवा रगड़ खाकर निकलती है। उच्चारण की उक्त स्थिति में जिह्वानोक उठी हुई रहती है, जिह्वाग्र दबा हुआ रहता है, कठोरतालु और जिह्वाग्र के मध्य अधिक स्थान रहता है तथा जिह्वा के दोनों पार्श्व उठे हुए रहते हैं। ऊपर और नीचे के दाँतों के मध्य यथेष्ट स्थान रखकर भी इस ध्वनि का उच्चारण किया जा सकता है। नीचे का होठ भी आगे को निकालकर इस ध्वनि का उच्चारण शुद्ध किया जा सकता है। स्वरयन्त्र में कम्पन होता है। यह ध्वनि सघोष पश्च-वर्त्स्य संघर्षी है। अँग्रेजी में यह ध्वनि प्रायः सघोष होती है। पर अघोष ध्वनि के उपरान्त एक ही अक्षर होने के कारण इस ध्वनि में अघोषत्व आ जाता है जैसे tree [tr̥iː]।[1] यह ध्वनि प्रामाणिक अंग्रेजी[2] के red, rose, dream आदि शब्दों में सुनाई देती है।

अँग्रेजी के संघर्षी [ऱ—ɹ] में जिह्वा की स्थिति के लिए चित्र संख्या १ द्रष्टव्य है।

परिनिष्ठित अँग्रेजी के र-युक्त शब्दों में [ऱ] का उच्चारण केवल निम्न लिखित स्थलों पर किया जाता है:—

आदि—प्रारम्भ में, जैसे,

Rail [ɹeil-ऱेल][3]

---

१. जोन्स, डेनियल-एन आउटलाइन अव् इंगलिश फोनेटिक्स, केम्ब्रिज, सन् १९५६, नि० ६२४ पृष्ठ १६५ तथा नि० ७७५ पृष्ठ २००।

२. प्रामाणिक अथवा परिनिष्ठित अँग्रेजी से तात्पर्य स्टैंडर्ड अँग्रेजी से है जिसको डेनियल जोन्स Received English भी कहते हैं। इसका प्रयोग बी० बी० सी० तथा पब्लिक स्कूल आदि में होता है।

३. 'रेल' में वस्तुतः 'ए' वह नहीं जो अंग्रेजी में है और [ल] के उच्चारण में भी अन्तर है। हिन्दी का 'र' भी दूसरा है, जिसका विवेचन आगे होगा।

मध्य—।अ। व्यजंन तथा स्वर के मध्य में, जैसे,

Crane [Kɹein-क्रेन]

।आ। दो स्वरों के बीच में, जैसे,

Bearer [bEəɹə-बेरा]

दो स्वरों के बीच में [र्] के उच्चारण का नियम इतना अधिक दृढ़ता के साथ पालन किया जाने लगा कि जहाँ दो स्वरों के मध्य 'र' न भी हो तो भी उसका उच्चारण किया जाता है, जैसे, The idea of it में [ðˇi ai'diə əv it] के स्थान पर इसका उच्चारण होगा [ðˇi ai'diər əv it] । इस प्रकार आइडिया और अव् के मध्य [र्] का आगम हो गया है ।

अन्त—अन्त्य [र्] अंग्रेजी में उच्चरित नहीं होता है। फिर भी जब कभी र-युक्त शब्द (अन्त में) के बाद कोई ऐसा शब्द आये जो स्वर से प्रारम्भ होता हो तो [र्] का विधिवत् उच्चारण किया जाता है, जैसे, Pair [pEə] वैसे [पेअ] है पर a pair of shoes [ə 'pEər əv 'ʃu:z] के [पेअर्] में [र्] है। इस प्रकार के 'र' को अँग्रेजी में संयुज्ज् (linking) 'र' कहते हैं।[४] निष्कर्ष यह निकाला जा सकता है कि परिनिष्ठित अंग्रेजी में [र्] का उच्चारण केवल उसी स्थिति में किया जा सकता है जब कि उसके बाद स्वर आये।[५]

निम्नलिखित स्थितियों में [र्] का उच्चारण नहीं किया जाता है।[६]

मध्य स्थिति—किसी भी व्यंजन से पूर्व-जैसे,

Park [Pa:k—पाक।]

Report [ripɔ:t—रिपॉट्।]

४. देखिए (अ) Jones, D. An Outline of English Phonetics, 1956 नि० ७५६ तथा ७५७ पृष्ठ १६६-६७।

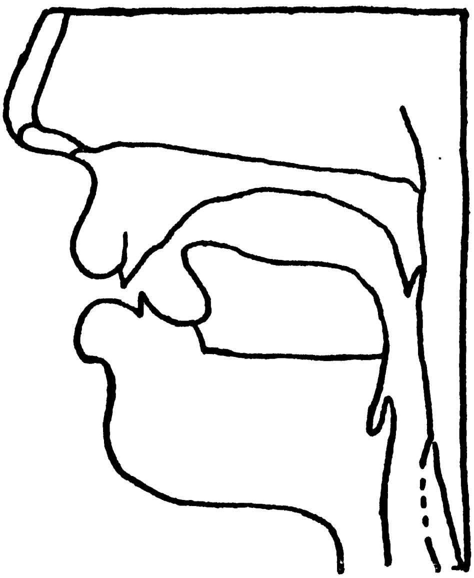
(आ) Ward, IDA. C. The Phonetics of English, Cambridge, सन् १६५६; पृष्ठ १४७।

(इ) MacCarthy, A. D. The English Pronunciation, 1952, नि० ४६६ व ५००, पृष्ठ १३५।

५. MacCarthy, A. D. The English Pronunciation, नि० ४६८ पृष्ठ १३५।

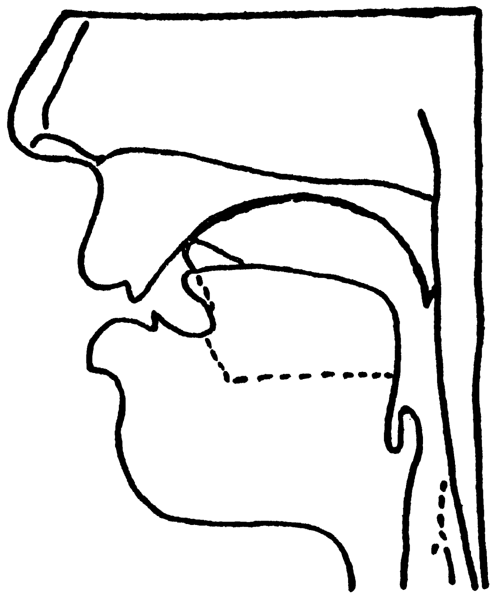
६. The 'R' began to be weakened in Southern English towards the end of the 16th Century. It is not pronounced between a Vowel and a Consonant (arm, lord) nor when it is final in spelling (bar) or followed by a Vowel which is only written and not actually pronounced as (bare—[b$^{E}$ɔ]). Its place is in many cases taken by the neutral Vowel [ə].
Walter Ripman—English Phonetics and Specimens of English. London, Page 85.

[१]



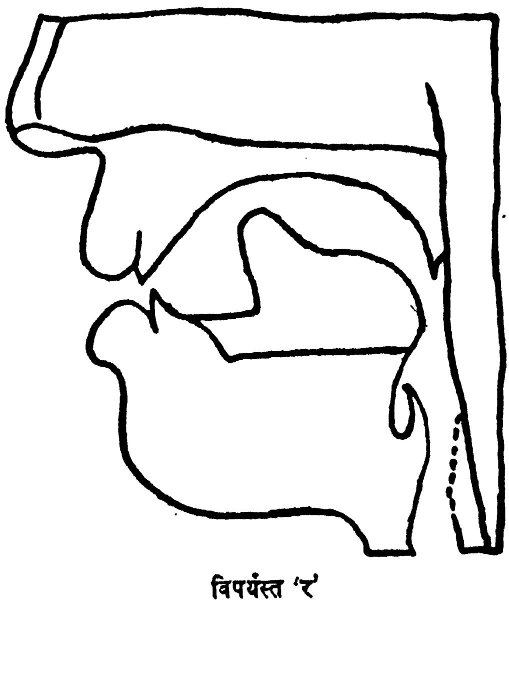
संघर्षी [ऱ—r]

[२]



लुंठित [र—r]

[३]



विपर्यस्त 'र'

| | | | |
|---|---|---|---|
| अन्त्य-- | Bar | [ ba: | ~ बा ] |
| | for | [fɔ: | ~ फॉ ] |
| | Bare | [ bᴱə: | ~ बेअ॑ ] |

नोट—जब कभी किसी शब्द में । र । वर्ण दो बार आये तो द्रुतगति में भाषण कर्त्ता एक । र । को छोड़कर भी उच्चारण करता है जैसे,

| | |
|---|---|
| February | [ febjuəri ] |
| Secretary | [ sekətri ] |
| Veterinary | [ vetinri ] |

हिन्दी में भी यह प्रवृत्ति है और 'सेकटरी महोदय' तथा 'वेटनरी कालेज' आदि पद भी भाषण में प्राय: सुने जाते हैं ।

इस प्रकार प्रधान संघर्षी [ ṛ ] संस्वन के अतिरिक्त अँग्रेजी में र—ध्वनि के कुछ और भी संस्वन हैं :—

**२. लुंठित 'र'** । Rolled [ r ] ।

इस ध्वनि के उच्चारण में फेफड़ों से आनेवाली वायु के प्रभाव के जिह्वानोक वर्त्स-स्थल पर बड़ी तेजी से टकराती है और इस प्रकार उत्पन्न जिह्वानोक की ठोकरी की संख्या दो चार बार तक हो सकती है । यह उच्चारण परिनिष्ठित अँग्रेजी में[७] भी कहीं कहीं सुनाई पड़ता है ।

लुंठित [ र ] में जिह्वा की स्थिति के लिए चित्र संख्या दो द्रष्टव्य है ।

**३. विपर्यस्त 'र'** । Inverted-r ।

[ र ] के इस संस्वन के लिए जिह्वानोक मूर्द्धा की ओर कुछ अधिक मुड़ जाती है इसको वर्त्स्य-तालव्य स्थान से उच्चरित कहा जा सकता है । इसका उच्चारण इंगलैंड के दक्षिण-पश्चिम तथा अमेरिका में शब्दों के मध्य तथा व्यंजन से पूर्व तथा अन्त में किया जाता है ।[८] वार्ड का यह भी मत है कि इस प्रकार की ध्वनि को व्यंजन ध्वनि किसी हालत में नहीं कहा जा सकता है ।[९]

विपर्यस्त 'र' में जिह्वा की स्थिति के लिए चित्र संख्या तीन द्रष्टव्य है ।

**४. वर्त्स्य उत्क्षिप्त 'र'**:—

इसे अर्द्ध लुंठित या केवल एक ठोकरी से उच्चरित 'र' कहा जा सकता है ।

---

७. Jones, D.—An Outline of English Phonetics, 1956, नि० ७५२ पृष्ट १६५ ।

८. Ward, I. C. The Phonetics of English, सन् १६५६, पृष्ठ १४४ ।

९. वही, पृष्ठ १४५ ।

अन्तर्राष्ट्रीय ध्वन्यात्मक लिपि में [ ſ ] । यह रूप है । इसका व्यवहार बलाघातहीन[10] दो सघोष (स्वर) ध्वनियों के मध्य तथा कभी-कभी दन्त्य संघर्षी ध्वनियों [ थ़-θ ] तथा [ ð ~द़ ] के बाद होता है ।[11]

जैसे, Very [ v ſ i ]
through [ θ ſ u : ]

**५. अलिजिह्वीय 'र' :–**

इसका उच्चारण अलिजिह्वा द्वारा होता है । अँग्रेजी की अपेक्षा फ्रेंच में इसका अधिक महत्त्व है । इसके उच्चारण की भी लुंठित तथा उत्क्षिप्त दो विधियाँ हैं ।[12]

**अँग्रेजी । र । विभिन्न स्थलों पर—**

| जहाँ उच्चरित होता है | | | जहाँ उच्चरित नहीं होता है | |
| --- | --- | --- | --- | --- |
| आदि | दो स्वरों के मध्य | कुछ व्यंजनों के बाद[13] | व्यंजन के पूर्व | अन्त में |
| Rough | Barrister | Cream | Church | Car |
| [rʌf~रफ़] | [bæristə~ बैरिस्टर] | [kri:m~क्रीम] | [tʃə : tʃ~चर्च] | [Ka :~का] |

**हिन्दी 'र'**

/र/ की प्रधान ध्वनि [र] के उच्चारण में जीभ की नोक दो-तीन बार वर्त्स या ऊपर के मसूड़े को शीघ्रता से छूती है । यह लुंठित अल्पप्राण वर्त्स्य सघोष ध्वनि है ।[14] राम, चरण, पार आदि शब्दों में यह ध्वनि क्रमशः आदि, मध्य और अन्त में सुनी जा सकती है ।

हिन्दी के गृहीत अँग्रेजी शब्दों में अँग्रेजी [र]-ध्वनि किन-किन स्वरूपों में गृहीत हुई यह जान लेना आवश्यक है, इस पर विवेचन अपेक्षित है । इससे पूर्व अँग्रेज़ी शब्द लिखित—(अपने र-युक्त वर्णविन्यास के साथ) और मौखिक—(उन शब्दों का ध्वन्यात्मक रूप जिस प्रकार उन शब्दों का परिनिष्ठित अँग्रेज़ी में उच्चारण होता है ) दोनों ही रूपों में आये हैं । निस्सन्देह गृहीत शब्दों का एक

---

१०. Jones, D.—वही, नि० ७५० पृष्ठ १९५ ।

११. Ward, I. C.—The Phonetics of English, १९५६ ई०, पृष्ठ १४४ तथा जोन्स (वही) नि० ७५३ ।

१२. Jones, D.—वही, नि० ७६५, पृष्ठ १९८ ।

१३. pr, br, tr, dr, kr, gr, fr, θr, ʃr, आदि उल्लेखनीय हैं ।

१४. डा० धीरेन्द्रवर्मा—हिन्दी भाषा का इतिहास, १९४९, नि० ६६, पृष्ठ १२२ । देखिए चित्र संख्या २ ।

बड़ा भाग लिखित माध्यम से हमारे सम्पर्क में आया है क्योंकि जनसाधारण का सीधा संबंध अँग्रेज अफसरों से रहा भी नहीं। स्काटलैंड में तो आज भी 'र' का उच्चारण सभी स्थलों पर मान्य समझा जाता है।[१५]

इसके अतिरिक्त अँग्रेजी [ऱ] जिन परिस्थितियों में उच्चारित किया जाता है अधिकांशत: संघर्षी [ऱ] होता है जब कि हिन्दी में प्रयुक्त [र] लुंठित है। इस प्रकार हिन्दी भाषा-भाषी सभी स्थितियों में संघर्षी [ऱ] के स्थान पर लुंठित [र] का प्रयोग करते हैं।

आदि—इस स्थिति में अँग्रेजी में [ऱ] हमेशा उच्चरित होता है और हिन्दी भाषा भाषी उसके स्थान पर लुंठित [र] का प्रयोग करते हैं। उदाहरणार्थ,

Rule [ɹu:l⌐रू़ल] हि० रूल [ru:l]
Rivolver [ɹivɔlvə⌐रि़वॅल्वे] हि० रिवाल्वर [rivɑ:lvər]

**मध्य—इस स्थिति में अँग्रेजी में [र] सर्वदा उच्चरित नहीं होता है इसकी विभिन्न स्थितियों का स्पष्टीकरण पूर्व किया जा चुका है।**

**अ—अँग्रेजी और हिन्दी दोनों में उच्चरित होता है —**

| | अँग्रेजी | | हिन्दी | |
|---|---|---|---|---|
| अ—१. | Brush | [ brʌʃ ] | ब्रश | [brəʃ][१६] |
| | Express | [iksprcs] | एक्सप्रेस | [Ekspre:s] |

---

१५. In Northern English and in many dialects the 'r' has not disappeared before Consonants and finally. It is in some parts pronounced as a trilled tongue [r] in others it is not pronounced as a separate letter, but its tongue position partly coalesces with that of a preceding vowel. A vowel produced in this way, with tongue point raised is called a Coronal or Cacuminal Vowel. Ripman.

(It) is used in Scotland in all portions even before a Consonants and finally. Ward—The Phonetics of English. पृष्ठ १४४।

In Scotch and Irish English and many dialects of England (r) is kept as a consonant—often trilled everywhere in far, far back as well as in far away.
Sweet —A New English Grammar, १८९१ सं० १९५०
नि०७१४, पृष्ठ २३८।

१६. बुरुश रूप भी अधिक प्रचलित है।

| | | | |
|---|---|---|---|
| अ—२. Factory | [fæktəri] | फैक्टरी | [Phɛktəri:] |
| Gallery | [gæləri ] | गैलरी | [gɛləri:] |

**ब—जिन स्थितियों अँग्रेजी में उच्चरित नहीं होता पर हिन्दी में बिल्कुल स्पष्ट उच्चरित होता है, जैसे,**

| | | | |
|---|---|---|---|
| Surgeon | [sə:dzən] | सर्जन | [sarjən] |
| Church | [tʃə:tʃ] | चर्च | [carc] |
| Clerk | [kla:k] | कर्ल्क | [klark] |
| Martial | [ma:ʃəl] | मार्शल | [ma:rʃəl] |
| Horn | [hɔ:n] | हॉर्न-हॉरन | [hɔ:rn~hɔ:rən] |
| Parcel | [pa:sl] | पारसल | [pa:rsəl] |
| Govrnment | [gʌvənmənt] | गवर्नमेंट, गवरमेंट | [gavərnme:nt, gavərme:nt] |

**स—जिस स्थिति में अँग्रेजी में उच्चरित नहीं होता और हिन्दी में भी उसका उच्चारण बहुत क्षीण है।**

यह उच्चारण इतना अधिक क्षीण भी हो जाता है कि कभी-कभी केवल जिह्वानोक मुड़कर ही रह जाती है, इसको स्वर का मुर्द्धन्यीकरण कह सकते हैं।[१७] ऐसा प्रायः हमारी मूर्द्धन्य ध्वनियों [ट] और [ड] के पूर्व ही होता है। डा० चटर्जी ने इस प्रकार के उच्चारण की ओर निर्देश बंगला में भी किया है।[१८] उदाहरणार्थ हम निम्नलिखित शब्द ले सकते हैं। हि०

| | | | |
|---|---|---|---|
| First | [fə:s | फर्स्ट-फस्ट | [fəst] |
| Lord | [lɔ:d | लाट | [la:t] |
| Order | [ɔ:də] | आर्डर-आडर | [a:ḍər] |
| Report | [ripɔ:t] | रिपोर्ट-रिपोट | [ripo:t] |
| | | रपट | [rapət] |

इस कोटि में 'ट' और 'ड' से पूर्व र-युक्त सभी शब्द आ सकते हैं।

---

१७. देखिये पाद टिप्पणी संख्या १५। इस संबंध में मैंने प्रो० धल तथा डा० घाटगे से भी परामर्श ली। इस सम्बन्ध में सभी एक मत हैं कि मूर्द्धन्य ध्वनियों से पूर्व 'र' के उच्चारण के लिये जिह्वा प्रयत्न अवश्य करती है पर केवल मूर्द्धन्यीकरण ही होकर रह जाता है, [र] उच्चारित नहीं हो पाता है।

१८. डा० चटर्जी—बंगला भाषा का उद्गम और विकास, प्र० सं०, नि० ३६०, पृष्ठ ६४१।

**द—वे शब्द जिनमें अँग्रेजी की तरह हिन्दी में भी [र] का उच्चारण नहीं होता है।**

यह इस बात का स्पष्ट प्रमाण है कि ये शब्द भाषण के माध्यम से हिन्दी भाषा-भाषी क्षेत्र में प्रविष्ट हुए, जैसे,

| | | हि० | |
|---|---|---|---|
| girder | [gə:də] | गार्डर‿गाटर | [ga:ḍər‿ga:ṭər] |
| guernsey | [gə:nzi] | गंजी | [gənji:] |
| Drawers | [drɔ:əz] | दराज | [dəra:j] |
| Orderly | [ɔ:dəli] | अर्दली | [ardəli:] |
| Governor | [gʌvənə] | गवर्नर-गवन्नर[19] | [gavarnər‿gavannər] |
| Pliers | [plaiəz] | प्लास | [pla:s] |

**य—अँग्रेजी वर्णविन्यास या उच्चारण में कहीं भी 'र' न होते हुए भी हिन्दी में र-ध्वनि का आगम होता है।**

Dozen [dʌzn] हि० दर्जन[20] [drajən]

**अन्त**—प्रामाणिक अंग्रेजी के उच्चारण में अन्त्य 'र' कहीं भी उच्चरित नहीं होता है पर हिन्दी में वर्णविन्यास के अनुरूप सभी स्थलों पर उसका उच्चारण किया जाता है। उदाहरणार्थ हम निम्न शब्द ले सकते हैं।

| | | हि० | |
|---|---|---|---|
| Car | [ka:] | कार | [ka:r] |
| Bar | [ba:] | बार | [ba:r] |
| Collar | [kɔlə] | कालर | [ka:lər] |
| Doctor | [dɔktə] | डाक्टर | [da:kṭər] |

ऐसे शब्दों की एक लम्बी सूची दी जा सकती है। फिर भी कुछ उदाहरण हिन्दी में भी प्राप्त होते हैं जिनमें अन्त्य 'र' का उच्चारण परिनिष्ठित अँग्रेजी की तरह हिन्दी में भी नहीं होता। यह इस बात का प्रत्यक्ष प्रमाण है और हमारे पूर्व निष्कर्ष को और भी अधिक पुष्ट करता है कि इन शब्दों को हमने भाषण के माध्यम से ग्रहण किया है।

---

१९. 'र' का 'न' हो जाना ब्रजभाषा में भी प्राप्त होता है, जैसे,

बरनी—बर्नी—बन्नी

बरना—बर्ना—बन्ना।

२०. यह रूप उत्तर भारत में ही प्राप्त होता है दक्षिण की किसी भाषा में यह रूप प्राप्त नहीं होता है। हो सकता है कि तर्जन, गर्जन, कर्जन के भ्रमात्मक सादृश्य पर 'र' का आगम हो गया हो। डा० चर्टजी ने अपनी बातचीत के मध्य मुझे यह सुझाव दिया कि हो सकता है कि जैसे जगन्नाथ का 'जगरनाथ' हो गया उसी प्रकार इस शब्द में भी [र] का आगम हो गया है। अँग्रेजी में भी यही रूप गया है। देखिए--Juggernaut—The Oxford Concise Dictionary, 1942, पृष्ठ ६१७।

| | | | हि० |
|---|---|---|---|
| Bearer | [bEərə] | बैरा | [bE.ra:] |
| Separator | [səpəreitə] | सपरेटा[२१] | [səpre:ṭa:] |

**[र] के स्थान पर [ड़]**

हिन्दी की प्रवृति के अनुकूल अंग्रेजी के [र] को हमने कहीं-कहीं [ड़—ṛ] में भी बदल दिया है, जैसे—

| | | | हि० |
|---|---|---|---|
| Rubber | [rʌbə] | रबड़ | [rabəṛ] |
| Butcher | [butʃə] | बूचड़ | [bu:cəṛ] |
| Acre | [Ceikə] | एकड़ | [ekəṛ] |

यह हैं कुछ इस 'र'–ध्वनि के स्वरूप जिनका उच्चारण बाल्यावस्था में बहुत कठिन होता है। तभी तो बच्चे रेल को लेल कहते हैं और द्रुतगति में दाँतों के मध्य में 'र' ऐसे घुल जाता है जैसे 'बुढ़िया के बाल'[२२] तभी तो बेचारे 'गार्ड साहब' और 'मास्टर साहब' क्रमशः 'गाट साहब' और 'माट साहब' ही रह गये।

---

२१. क्रीम निकालने की मशीन व क्रीम निकाला हुआ दूध।

२२. बालों के समान चीनी से बनी हुई मिठाई।

श्री एन० ऐ० नारायणन

# श्री एन० कुमारन आशान

मलयालम साहित्य का नवोद्धार श्री एन० कुमारन आशान के समय से हुआ था। वे ही नवयुग के सर्वप्रथम और सफल कलाकार थे। उनकी रचनाओं से मलयालम साहित्य का मूल्य बहुत बढ़ गया। यथार्थवाद के क्षेत्र में उनका खास स्थान है। दुर्भाग्य से उनको अकाल मृत्यु हो गयी जिससे साहित्य की अपार क्षति हुई है।

उनका सर्वप्रथम और सुन्दर खण्ड काव्य है "वीण पूव" (गिरा फूल) जिसमें छायावाद की सुन्दर झलक मिलती है। प्रत्येक पद्य में हम एक सुकुमारी का सुन्दर चित्र देख सकते हैं। गिरी हुई कुसुम कली का वर्णन कवि ने ऐसा सुन्दर किया है कि पाठकों के सामने वह सयानी अकाल मृत्यु का शिकार बन कर पड़ी हुई सी दीख पड़ती है।

इस खंड काव्य में से पाँच पद्यों का अनुवाद हम यहाँ दे रहे हैं।

## वीणपूव (एन० कुमारन आशान)

हा पुष्पमे अधिक तुंग पदत्तिलेत्
शोभिच्चिरुन्नितोरु राज्ञि कणक्कये नी,
श्री भूविलस्थिर असंशयमिङङ् निन्टे—
या भूतियेङङ् पुनरेङङ् किटप्पितोर्ताल ।१।

लालिच्चु पेट्ट लतय-न्पोटु शैशावत्तिल
पालिच्चु पल्लवपुटङङळिल वच्चु निन्ने
आलोल वायु चेरु तोट्टिलु माट्टि तारा—
ट्टालापमार्नु मलरे दल मर्मरङङल ।२।

पालोत्तेषुम् पुतु निलाविललं कुळिच्चुम्
बाल।त पत्तिल विळया टियुमाट लेन्ये
नी लील पूण्टळय मोट्टुकळोटु चेर्नु
बालत्व मङङ-न्ने कषिच्चितु नाळिल नाळिल ।३।

मेल्लेन्नु सौरभ वुमोट्टु परन्नु लोक—
मेल्लाम् मयक्कि मरुवुन्नळ-वन्नुनिन्ने
तेल्लो कोतिच्चनुभवार्थिकळ चित्रमल्ल—
तिल्लार्कुमिग्गुण-वुमेवमकत्तु तेनुम् ।४।

आरोभलामषकु शुद्धि मृदुत्वभाव
सारल्य मेन्न सुकुमार-गुणत्तिनेल्लाम्
पारिङ्क लेतुपम आ मृदु मेय्यिल नव्य
तारुण्य मेन्तियोरु निन निल काणणं तान ।५।

## गिरी हुई कली

हा कलिके ! तू कितने ऊँचे
पद पर शोभित थी रानी-सी
श्रीनश्वर है भव में अब तू
कहाँ पड़ी तज वैभव सारा ? ।१।[1]

माना लतिका ने शैशव में
पाला रख के किसलय कर में।
झूला पवन झुलाता था, औ'
पल्लव-मर्मर की थी लोरी ।२।[2]

किया स्नान था ज्योत्स्ना-पय में
खेली सुन्दर बालापन में।
छोटी छोटी कलियों से मिल
मोहक शैशव काल बिताया ।३।[3]

फैली तेरी गन्ध कहीं, फिर
मुग्ध किया जब तूने जग को।
ललच गये तुझ में सब भोगी
कहाँ मिले मधु में गुण ऐसे ।४।[4]

सुन्दर सरल पुनीत गुणों में
तेरे अतुल सुकोमल तन में।
नयी जवानी ऐसी थी, जो
देखे वह रह जाय ठगा-सा ।५।[5]

डा० श्याम परमार

# साँझी-पूजा

[कुँवारी कन्याओं का अनुष्ठानिक व्रत]

## साँझी (संजा)

"साँझी"[1] कुंवारी कन्याओं का एक अनुष्ठानिक व्रत है। राजस्थान, पंजाब और ब्रज में जिसका किंचित हेर-फेर के साथ वही रूप लक्षित होता है जो मालव जनपद में विद्यमान है। महाराष्ट्र में "गुलबाई" और बुन्देलखण्ड में "मामुलिया" का स्वरूप भी इसके अनुरूप है।

आश्विन मास की प्रतिपदा से कुवारी कन्याएँ साँझी का व्रत आरंभ करती हैं जो संम्पर्ण पितृपक्ष में पन्द्रह दिन तक चलता है। प्रतिदिन संध्या को घर के बाहर द्वार के किसी भी बाजू में थोड़ी ऊँचाई पर, गोबर से भूमि लीपकर, सूर्यास्त के पहिले आरती के हेतु साँझी तैयार कर ली जाती है। वर्षा के अंतिम दिन और शरद का प्रारंभ अपने संयोग से प्रकृति की रूप-श्री को सौगुना वृद्धि प्रदान कर "साँझी" के शृंगार के लिये अपरिमत उपकरण जुटा देते हैं। प्रति दिवस अपने व्रतकाल में साँझी की श्री (चित्रांकन के माध्यम से) कन्याओं के सुकोमल करों द्वारा संवरती एवं गीत का क्षिप्रा जल पीती हुई, अंतिम दिवस तक अपने पूर्ण निखार पर पहुंचती है। कुंवारी कन्याएँ अपने विवाह पर्यन्त इस व्रत का पालन करती हैं। विवाह के वर्ष बनाई हुई साँझी की आकृति पीहर में पूरे वर्ष सहेज कर भीत पर रखी जाती है। परणी कन्या गौने से लौटकर दूसरे वर्ष वही "साँझी" पाड़ती (गिराती) है और कतिपय अनुष्ठानों के साथ उसे सदैव के लिये 'खमा" (विसर्जित करने की क्रिया)—देती है।

---

१. मालवा में साँझी को कहीं "संजा" कहीं "साँजी" और कहीं "साँजूली" भी कहा जाता है। राजस्थान में यही साँझी "संझया" है। ब्रज में "साँझी" (साँजी) के पीहर का नाम बहिन-बेटी है।

"सांझी" के अध्ययन के अन्तर्गत उसकी आकृतियाँ और गीत ही सर्वस्व नहीं हैं, अपितु कन्याओं के इस अनुष्ठानिक व्रत की परम्परा में सांझी के ऐतिल व्यक्तित्व और उसकी करुण कहानी का आभास भी गुंफित है। अतएव साँझी के गीत-पक्ष का विश्लेषण प्रस्तुत करने के पूर्व उसके इतर पक्षों की संक्षिप्त जानकारी अपेक्षित हैं।

स्थूलतः "साँझी" के चार पक्ष हैं :—

(क) आकृतिक
(ख) अनुष्ठानिक
(ग) ऐतिह्य
(घ) गीतात्मक

**(क) आकृतिक-पक्ष** की दृष्टि से "सांझी" दीवार के कुछ भाग को गोबर से लीपकर उस पर गोबर की ही रेखाओं द्वारा अंकित की जाने वाली आकृतियों को कहते हैं। गोबर की इन रेखाओं पर गुलाब, गुलतेंवड़ी, गुलबांस कनेर और कुटेल की पंखुड़ियों को चिपकाकर उन्हें सजाया जाता है जिससे आकृतियों में रंगों का सामंजस्य पैदा हो जाता है। इसे सांझी का खिल जाना कहते हैं। आश्विन मास के सम्पूर्ण पितृपक्ष में ये आकृतियाँ प्रतिदिन क्रमशः मिटाकर नई बनाई जाती हैं। यह वह काल होता है जब कि प्रकृति पूर्ण रूप से प्रफुल्लित होती है। उसमें नमी और रंगीनी होती है। निसर्ग की इस सम्पत्ति का लाभ बालिकाएँ उठाती हैं और सांझी के शृंगारार्थ भिन्न-भिन्न प्रकार के उपकरण एकत्र कर लेती हैं। इस प्रकार 'सांझी' के आकृतिगत् पक्ष के द्वारा कुंवारी कन्याओं को आवश्यक रूप से रेखाकंन एवं रंग मिश्रण का ज्ञान उपलब्ध होता है। इस अन्तर्निहित अभिप्राय के अतिरिक्त अप्रत्यक्षतः बालिकाओं के कुतूहल का समाधान उनके ही प्रयत्न में छुपा है। आपसी प्रतिस्पर्धा की प्रवृत्ति अपनी-अपनी सांझी के शृंगार का प्रयत्न और भी उपयोगी सिद्ध होता है। इन्हीं आकृतियों के सन्मुख खड़ी होकर वे प्रतिदिन संध्या को 'सांझी' का गीतों द्वारा पूजन करती हैं, नैवेद्य लगाती है और उसे बाँट कर खाती हैं। सभी बालिकाएँ बारी-बारी से एक दूसरे के घर पहुँचकर 'सांझी' पूजा में योग देती हैं।

मालवा में सांझी के प्रथम दिन भींत के एक छोटे से भाग को गोबर से चौकोर लीपकर उन पर पाँच बिन्दियाँ (पाँच-पाँच) तथा चाँद-सूरज अंकित किये जाते हैं और ऊपर से उन पर फूल की पंखड़ियाँ लगादी जाती हैं। बिन्दियाँ और चाँद-सूरज अन्य दिनों की साँझी में स्थायी प्रतीक होते हैं। दूसरे दिन द्वितीया होने से निर्मित आकृति बिगाड़ कर उसी पृष्ठभूमि पर वही आकृति फिर से अंकित कर 'बीज' (बिजली) और 'पुनम-पाटलो' (चौसर पाट) की आकृतियाँ रेखांकित की जाती हैं। इन आकृतियों में क्रमशः 'छावड़ी' (छबड़ी), 'बिजारो' (तिरछे चतुष्कोण की आकृति), 'गोर-बेसन्या' (गोबर के आभूषण), घेवर '(एक मिठाई), कुंवारा-कुंवारी (श्राद्ध पक्ष का पाँचवां दिन कुंवार पंचमी होता है उस दिन मृत कुंवारों का श्राद्ध-दिवस

होने के कारण 'साँझी' में 'कुंवारा-कुंवारी' अवश्य बनाये जाते हैं), चौपड़ (छठा दिन, अंक निर्माण दिवस, जिस दिन भाग्य में अंक लिखे जाते हैं), 'सात्या' (स्वस्तिक) एवं सप्तऋषि (आकाश-मंडल के सात तारों के प्रतीक सप्तमी को गोबर की सात बिन्दियों द्वारा सप्तऋषि अंकित किये जाते हैं), अष्ट पंखुड़ी का पुष्प तथा नगारे की जोड़ (अष्ट तीर्थ पूजन दिवस), डोकरा-डोकरी (नौमी वृद्ध तिथि), पंखा (दसवां दिन), केल का पेड़ (रुद्र-पूजा-दिवस), घुघरा, ऋद्धि-सिद्ध, "खोड्या बामण" (लंगड़ा ब्राह्मण), आदमी, गाड़ी, "घट्टी" (चक्की), जाड़ी-जसौदा (मोटी स्त्री से तात्पर्य), पतली पेमा (दुबली स्त्री), "बन्दन वार" (मालवी घरों में छोटी-मोटी वस्तुएँ रखने के लिये थैलियों को जोड़कर भींत पर टाँगने के लिये रंगीन वस्त्रों की बन्दनवार बनाई जाती है) मीरा की गाड़ी, ढ़ोली, पहरेदार, जलेबी की जोड़, छड़ी आदि विभिन्न आकृतियाँ "किलाकोट"[१] में अंकित की जाती है। उस दिन "साँझी" को "किलाकोट" की भी संज्ञा दी जाती है वैसे किलाकोट की रचना १२ वें दिन से आरंभ हो जाती है। तेरहवें दिवस साँझी की आकृतियों में "खोड्या बामण" इसलिये बनाते हैं कि वह "साँझी" को जो कि अपना व्यक्तित्व रखती है, लिवाने आता है। "किलाकोट" का पूजन खीर-पूरी से किया जाता है क्योंकि वही पितृ-पक्ष और "साँझी" का अंतिम दिन होता है। किलाकोट में अधिकतर बरात की संपूर्ण विशेषताएँ अंकित की जाती हैं। विभिन्न पशु-पक्षी, स्नेह संबंधी आदि उसमें अंकित होते हैं। "साँझी" बड़ी हो जाती है और "खोड्या बामण" उसे लेने आ गया है, अतः वह १६वें दिन ठाट-बाट से ही श्वसुरालय जाती है। अंतिम दिन साँझी की विदाई में गीत गाये जाते हैं और उसके बाद वह पूरे वर्ष के लिये व्याहता बनकर कुंवारी कन्याओं के दल से बिदा हो जाती है। स्पष्ट है कि "साँझी" का व्यक्तित्व और उसकी अपनी कथा रूपकवत कुंवारी कन्याओं में इस प्रकार अपना अस्तित्व धारण किये हैं।

राजस्थान में लिपे हुए स्थान में चार खूंटी गोहली देकर (गोबर से वर्ग बनाकर) उसके ऊपर कापड़ा (त्रिकोण) बनाया जाता है। इस वर्ग के अन्दर चारों कोणों पर और मध्य में पांच चांद्या अथवा गोल्या बनाये जाते हैं और संझ्या (साँझी) का यह प्रथम चरण एक तारा कहलाता है। अन्य तिथियों की संझ्या क्रमशः दौज की "पांच पचरो" तीज का "सूरज" चौथ का "चाँद", पांचे की "बान्दरवाल" छट्टे की "कैल" (कदली-खम्भ), सातें का "पंखा", आठें की चौपड़", नौमी के "पांच सात्या", दस्से का "मोर", ग्यारस की "छाबड़ी" (डलिया), बारस की "बीजनी" तेरस की "जनेऊ" और चौदस की संझ्या बाई की बरात का चित्रण आरंभ होकर अमावस्या को पूर्ण होता

१. "किलाकोट" को कहीं-कहीं "कल कोट" भी कहते हैं। वस्तुतः वह किलाकोट है, क्योंकि उक्त सभी वस्तुओं को उस दिन एक बड़े भाग में अंकित कर मोटी रेखाओं की सीमा में आवृत्त कर दिया जाता है और एक स्थान पर प्रवेश द्वारा बनाकर रक्षक भी अंकित किये जाते हैं।

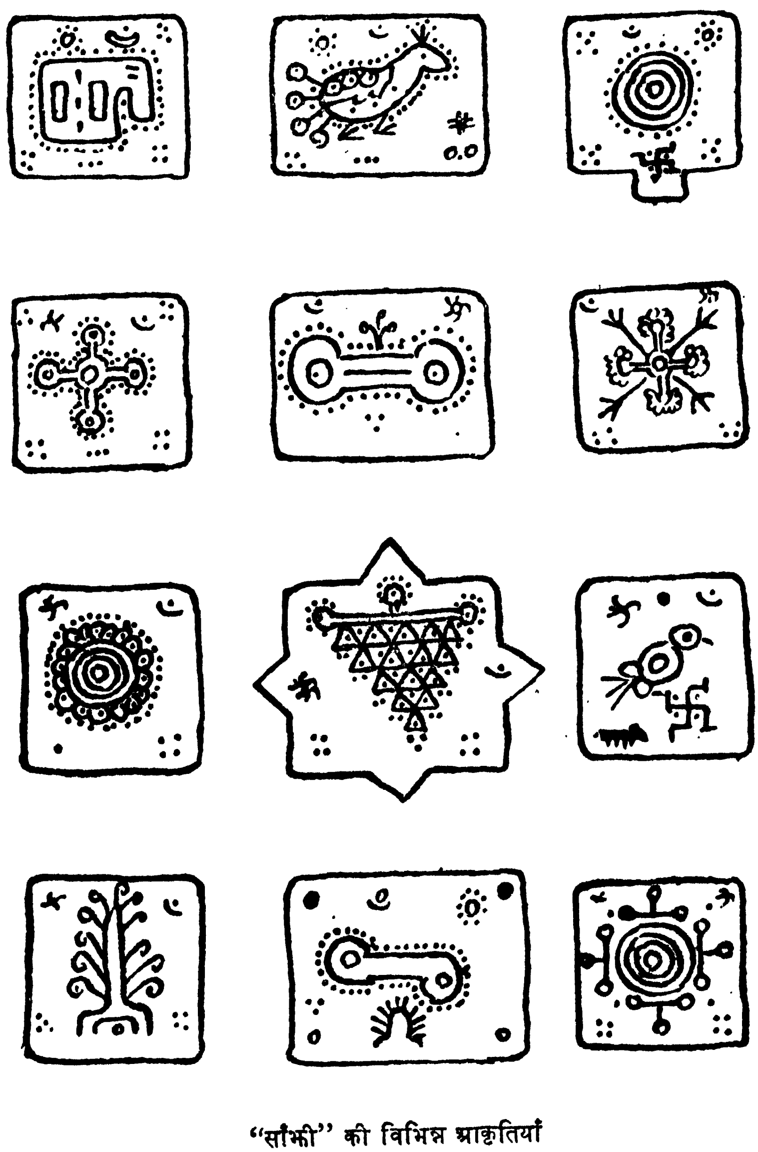
है। प्रथम दिवस की गोहली चारों खूंटों के चार चान्द्या और कापड़ा निरन्तर पन्द्रह दिनों तक प्रत्येक चित्र में बनाये जाते हैं।"[1]

ब्रज में इससे भिन्न क्रम है और आकृतियों के नाम भी भिन्न हैं। मालवा राजस्थान और ब्रज की आकृतियों का संज्ञानुकूल साम्य एवं भिन्नता का स्पष्टीकरण निम्न रूप में द्रष्टव्य है:—

| पितृ-पक्ष की तिथियाँ | मालवा | राजस्थान | ब्रज |
|---|---|---|---|
| १ | पांच पांचा, चांद सूरज | कापड़ा (त्रिकोण) तथा पांच चांद्या | बीरन बेटी (अकेली साँजी), तिवारी |
| २ | बीज और "पूनम पाटलो" | पांच-पचरौ | दो चौबारे |
| ३ | छाबड़ी (डलिया) | सूरज | तीन चौबारे |
| ४ | बिजारो गोर-बेसन्या | चाँद | चार चौबारे |
| ५ | घेवर, कुंवारा-कुंवारी | बाँदरवाल | पान-सुपारी, पंखा |
| ६ | चौपड़ | केल | छबरिया, (मिठाई की डलिया) |
| ७ | सात्या और सप्तऋषि | पंखा | स्वस्तिक (मंगल संकेत) |
| ८ | आठ पंखुड़ी का फूल तथा नगारे की जोड़ | चौपड़ | अष्टा छंगा या चौपड़ |
| ९ | डोकरा-डोकरी | पांच सात्या | नाव और नारियल |
| १० | पंखा | मोर | खजूर, काना कौवा और लंगड़ा ब्राह्मण |
| ११ | केल का पेड़ | छबड़ी | |
| १२ | घुघरा और ऋद्धि-सिद्धि | बीजनी | |
| १३ | खोड्या-बामण | जनेऊ | |
| १४ | आदमी, गाड़ी घट्टी, जाड़ी जसोदा ज,लेंबी की जोड, छड़ी बन्दनवार | संझ्या की बरात | |
| १५ | किलाकोट | किलाकोट की तैयारी | |

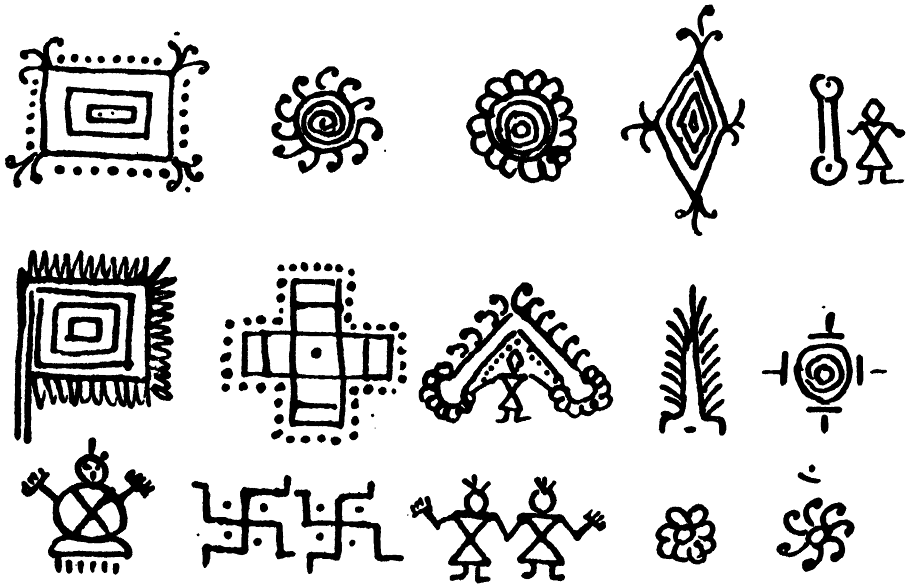
१. देखिये—लोक कला—भाग—१, अंक—१, पृष्ठ—२८।

फलक १



"साँझी" की विभिन्न आकृतियाँ

फलक २



१ "पुनम पाटलो" २ "छाबड़ी" ३ "घेवर" ४ "बिजौरा" ५ "घुघरा" ६ "पंखा" ७ "चौपड़" ८ "नगारे की जोड़" ९ "केला" १० "गौर बैस्ना" ११ "जाड़ी जसौदा" १२ "सात्या की जोड़" १३ "कुंवारा-कुंवारी" १४ "आठ पखुड़ी का फूल" १५ "चांद" १६ "सुरज"

उक्त सारणी से प्रकट है कि साँझी से आकृति के पक्ष में प्रयुक्त होने वाली अधिकांश वस्तुएँ जो प्रतीकवत् अंकित की जाती हैं, राजस्थान, मालवा और ब्रज में समान हैं। उनके स्वरूपों से यह भी प्रकट है कि वे अपने में किसी निश्चित रूपक को सहेजे हैं। साँझी का व्यक्तित्व इस आकृतिक पक्ष से कलामय प्रतीत होता है। वह क्रमशः सोलह दिन में पूर्ण यौवना बनकर ससुराल के लिये विदा होती है। उसे लिवाने के लिये खोड्या ब्राह्मण (ब्रज में लंगड़ा ब्राह्मण) आता है। वह चौबारे में पति की प्रतिक्षा करती करती है। चौपड़, पान सुपारी, घेवर, फूल, आदि उसके आराम के लिये प्रसाधन हैं। सुहागन के चिन्हों से वह भूषित की जाती है। केवल ब्रज मे "सांजा" का संकेत अधिक मिलता है जो राजस्थान और मालवा में नहीं हैं। इस विषय में गीतात्मक पक्ष के अन्तर्गत प्रकाश डालने का प्रयत्न किया गया है। ब्रज और मालवा में एकादशी से ही सांझी के प्रियतम से मिलने का योग आरंभ हो जाता है। इसलिये पहिला कोट १२ वें दिन से बनाया जाना आरँभ हो जाता है। "किला कोट" की रचना मध्य-कालीन राजपूत-सभ्यता की द्योतक है। उसके मध्य में "मीरा की गाड़ी", जाड़ी जसोदा, "पतली पैमा", पहरेदार आदि वस्तुएँ साँझी के समृद्ध पक्ष की ही सूचक हैं।

साँझी की आकृतियों को प्रतीकात्मक मानकर जिन भावों को व्यक्त करने का उपक्रम किया जाता है, वह निश्चय ही छोटी बालिकाओं की बुद्धि से परे की वस्तु है, पर उन्हें प्रारंम्भिक वर्षों में मां-बहनों और दादियों द्वारा साँझी-अंकन की जो शिक्षा प्राप्त होती है, वह परम्परा निर्माण करती है और क्रमशः न समझते हुए कुंवारी कन्याएँ उन रूपकों का आकृति-पक्ष में में प्रयोग करती है, और जहाँ तक संभव होता है उनमें अपनी कुशलता का प्रदर्शन करने से भी नहीं चूकती।

इस विषय के अन्त में मालव जनपद की साँझी की विभिन्न आकृतियाँ कुछ स्थानों से लेखक द्वारा रेखांकित कर प्रस्तुत की गई है (फलक संख्या १) यद्यपि उनमें कन्याओं ने परम्परा के निर्वाह का यथा संभव प्रयत्न किया है तथापि बालवृत्ति के अनुसार बिखराव भी आ गया है। कभी-कभी प्रतीक अस्पष्ट होते हैं। किन्तु उनकी अस्पष्टता भी अपनी संज्ञा लिये होती है। दिवस के क्रम से बनाई जाने वाली वस्तुओं का स्पष्ट अंकन फलक संख्या २ में देखिये।

प्रारंभ में बताया गया है कि मालव-कन्याओं का यह व्रत सम्पूर्ण पितृ-पक्ष में चलता है। प्रत्येक दिन निश्चय ही कन्याओं के लिये एक वर्ष की महत्ता रखता है। ठीक सोलहवें दिन जबकि नया चाँद मंथर गति से आकर आकाश के प्रागंण में उदित होता है तब 'साँझी' सोलहवें वर्ष में प्रवेश कर अपने नये जीवन के आरंभ के लिये बिदाई प्राप्म करती है। निमित्त मात्र की यह साँझी महज कल्पना नही प्रतीत होती। बताया जाता है कि साँझी की आकृति में एक प्रकार का क्रमगत विकास गुंफित है—पर वह अब स्पष्ट लक्षित नहीं होता। संभवतः उसका निश्चित स्वरूप काल के थपेड़ों में विनष्ट हो गया है।

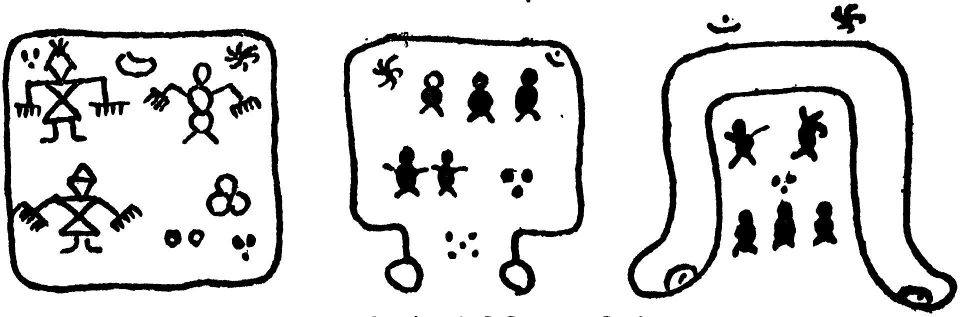
मालवा में कुछ ऐसी भी आकृतियाँ अंकित की जाती हैं जिनके पीछे निर्माण की वैज्ञानिक पद्धति है। कई स्वस्तिकों को मिलाकर एक बड़ी आकृति अंकित करने के लिये महाराष्ट्र की रांगोली-शैली प्रचलित है। छः छः बिन्दियों को आड़ी और तिरछी छः रेखाओं में चौकोर अंकित कर ३६—बिन्दियाँ बनाने के बाद उन्हें रेखाओं द्वारा जोड़ने पर सात्या की भाँति (स्वस्तिकों की आकृति) बन जाती है।

ऐसे ही चतुष्कोणात्मक बिन्दियों पर 'बिल पत्र की जोड़' 'फूल की जोड़' आदि आकृतियाँ आधारित हैं। ये आकृतियाँ महाराष्ट्रीय कुटुम्बों द्वारा मालवा में मध्य-वर्गीय समाज से सांस्कृतिक आदान-प्रदान के फलःस्वरूप ही प्रचलित हुई है। यद्यपि इनका अंकन "सांझी" के अन्तर्गत होता है तथापि ये न तो परम्परागत आकृतियाँ हैं और न ही ग्रामीण शैली की सूचक। इनका प्रवेश बाद की वस्तु है। ग्रामीण परिवारों में "साँझी" की निर्धारित शैली स्पष्ट लक्षित होती है, फिर अध्ययन करने पर एक ही ग्राम की "साँझी" में समानता के अतिरिक्त भी थोड़ी बहुत भिन्नता दिखाई पड़ती है। बालिकाएँ किसी एक ही आकृति को अपने अपने ढंग से परिवर्तित कर देती हैं। (फलक संख्या ३) की आकृतियाँ एक ही मोहल्ले की हैं जिनमें मनुष्य और सूर्य का अंकन प्रायः समान है। शेष आकृतियों के स्वरूप में असमानता है।

"साँझी" की आकृतियाँ भिन्न-भिन्न जातियों के संस्कारों और भावनाओं से प्रभावित होती है। वे बालिकाओं के मानसिक विकास और स्तर को प्रकट करती हुई प्रागैतिहासिक मानव के पश्चात् विकसित कृषि-सभ्यता के संकेतों और प्रतीक चिन्हों से अपना सम्बन्ध भी स्थापित करती है। आज से लगभग १०–१२ हजार वर्ष पूर्व प्रागैतिहासिक मानव द्वारा अंकित चित्र स्पेन और फ्रान्स की कुछ गुफाओं (देखिये अल्टामीरा गुफा के चित्र) में मिले हैं। वर्तमान युग के ग्रामों में मांडने बनाने की जो प्रवृत्ति पाई जाती है, संभवतः वही वृत्ति अपेक्षाकृत अधिक असंस्कृतरूप में उस समय भी विद्यमान रही होगी। यही कारण है कि प्रागैतिहासिक चित्रांकण और वर्तमान "साँझी" की आकृतियों में उस प्रवृत्ति का बाल-स्वरूप समाहित है। कौशल से अनभिज्ञ हाथों द्वारा अंगुलियों का इच्छित निर्माण के लिये स्वाभाविक परिचालन ही इन आकृतियों को जन्म देता है। प्रागैतिहासिक गुफाओं के प्रतीकों का अर्थ लगाने का प्रयत्न इन दिनों किया जा रहा है। जब कि "साँझी" की आकृतियों के प्रतीक स्पष्ट हैं। ग्राट फ्रड सेम्पर ने "ज्यामितिक कला" (ज्यामेट्रिक आर्ट) का जो सिद्धान्त चित्रकला-जगत में प्रचलित किया है उसके आधार पर "साँझी" की कुछ आकृतियों में अंकित मानव पशु की आकृतियाँ ध्यान देने योग्य हैं (फलक संख्या ४) बुशमेन के चित्रों की समानता भी साँझी में लक्षित होती है। मध्य एशिया और दक्षिण अफ्रीका के पवित्र प्रस्तर खण्डों (सेकरेड स्टोने स्लेब) पर जो चिन्ह मिले हैं वैसे ही मालवा में प्रायः सभी स्थानों की 'साँझी' में दृष्टिगत् होते हैं। फलक संख्या ५ में ऐसे दो चिन्ह दिये जा रहे हैं।

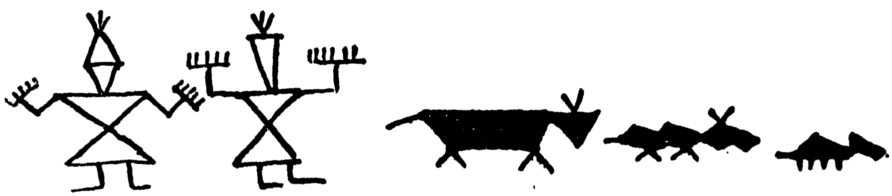
यदि सिद्धान्तों के फेर में न पड़ा जाय तो यह स्पष्ट है कि अंकन की प्रेरणा मनुष्य में स्वाभाविक है। अन्ध विश्वास, प्रथाएँ और धार्मिक रीतियों के निर्मित

फलक ३



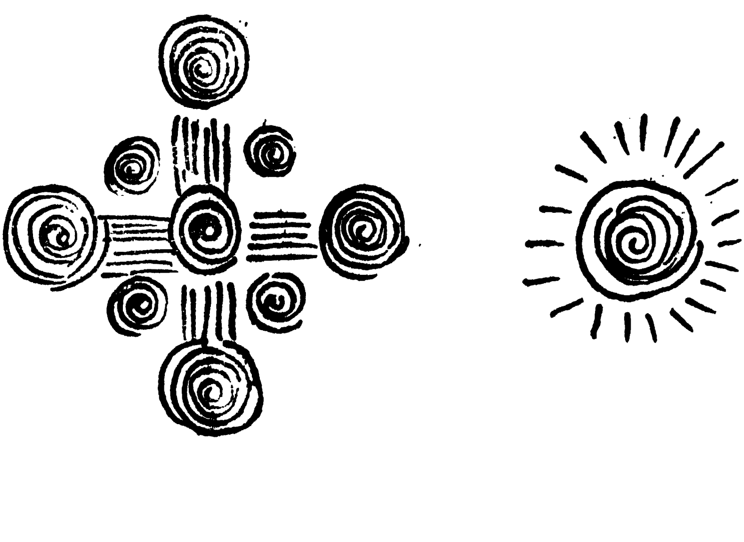
एक ही गाँव की विभिन्न आकृतियाँ

फलक ४



ज्यामितिक आकृतियाँ

फलक ५



चित्रांकण की वृत्ति को रूप प्राप्त हुआ और कुछ आकृतियाँ अनुष्ठानिक हो गई हैं।

साँझी की आकृतियों से यह भली प्रकार ज्ञात होता है कि कुंवारी बालिकाएँ अपने दैनिक जीवन में उपयोगी वस्तुओं का ही अंकन करती हैं। वस्तुओं में "पर्स्पेक्टिव" का अभाव है। फिर भी वस्तुओं का अधिक से अधिक सरलतम रूप प्रतीकवत होकर परम्परा की श्रेणी में आ गया है। बालिकाओं की बिखरी मनोवृत्ति और असम्बद्ध कल्पनाएँ इन आकृतियों में लक्षित होती हैं। एक बात प्रायः जो पन्द्रह दिनों की साँझी में पाई जाती है—वह है चाँद सूरज का अंकन। सूरज तो साँझी के भाई है[1] और चाँद से तो उसे निसर्गगत लगाव है।[2]

साँझी की आकृतियों का प्रमाण निश्चित नहीं है। कहीं कोई साँझी १' × १' फुट में होती है तो कहीं ४' × ४'। यह भी नहीं कि वह चतुष्कोण में ही बनाई जावे, वह अठ पहलु और त्रिकोण में भी बनाई जाती है। स्थान की सुविधानुसार उसका प्रमाण घट-बढ़ जाता है।

**ख: अनुष्ठानिक—**

साँझी का अनुष्ठानिक पक्ष बालिकाओं के भावी जीवन की सौभाग्य कामना से संबंधित है। "साँझी" जैसा कि एक आदर्श व्यक्तित्व है (उसमें देवी की भावना निहित है) तथा जिसकी जीवन-कथा एक रूपक है। इसलिए निश्चय ही उसके प्रति बालिकाओं की आस्था भावी मंगल की कामनार्थ है। "साँझी का पूजन मालवा में प्रत्येक कुंवारी कन्या के लिए अपेक्षित है। कुछ समझने योग्य वय प्राप्त होते ही घर की बड़ी बहनें, माता या दादी उसे "साँझी" बनाने के उपक्रम में सहायता करती हैं। अब बालिकाओं के सम्पर्क से उसे इस कार्य में आनन्द आने लगता है। वह गीत सीखती है और क्रमशः "साँझी" के प्रति उसमें श्रद्धा का विकास उत्पन्न होता है। प्रतिदिन "साँझी" को सजाकर संध्या के समय अपनी कुछ सहेलियों के साथ वह आरती उतारती है। 'साँझी' की शोभा मनोहारी होती है। आरती उतार लेने के पश्चात् शोभित या खिली हुई साँझी में से एक तारा या फूल (एक बिन्दिया) निकाल लिये जाने का प्रघात है। इससे साँझी की शोभा हृत हो जाती है और "साँझी" के उदास होने का अर्थ लिया जाता है। फूल उखाड़ने की क्रिया के पूर्व बालिकाएँ निम्नलिखित भूमि का स्वरूप गीत गाती हैं:—

संजा जीमले हो
चूठले हो

१. "छोटा सा सूरज नारायण वीरा,
ले घोड़ी उड़ाय रियाजी"—मालवी लोक गीत (प्रकाशित) पृष्ठ संख्या ६१
सूरज नारायण वीरो बाग लगावे,
सन्ज्या बेन्या सीचेंजी—वही, पृष्ठ ७०

२. परिशिष्ट: गीत संख्या ११।

चीरेला चिराय ले
चीरा ऊपर मोर नाचे
मोर नाचे मोर नाचे
डेढ घड़ी ए रात
चमक चाँदनी सी रात
फूंला भरी रे परात
एक फूल गिरी ग्यो
म्हारी संजा बई उदास

भावार्थ है—

"संजा तू भोजन करले। तू 'चीर' (पहनने के सुन्दर वस्त्र) पहन ले। तेरे 'चीरा' ऐसे सुन्दर बनाऊं कि उन पर मोर नाचने लगे। यह चमकती हुई चाँदनी रात है। डेढ घड़ी रात अभी शेष है, फूलों से भरी हुई परात रखी है। उसमें से एक फूल गिर गया इसलिए संजा उदास हो गई।"

दूसरे दिन नई साँझी बनाने के पूर्व प्रथम दिन की साँझी गिराकर उसका गोबर आदि अलग स्थान में सुरक्षित रखा जाता है। अंतिम दिन जब 'साँझी' का विसर्जन होता है तब पिछले सभी दिनों का एकत्रित गोबर एवं सजावट की अन्य सामग्री किसी जलाशय में सिरादी जाती है। सांझी-विसर्जन का आयोजन उदासी से भरा होता है, फिर भी बालिकाएँ अपने झुंड बनाकर जलाशयों की ओर गमन करती हैं।

साँझी का विसर्जन करने के पश्चात् बालिकाएँ लौटते समय मार्ग से 'कांकरी' (कंकड़) बीन कर लाती हैं और गोबर की गोहली देकर उनका कुंकु अक्षत से नवरात्रि में पूजन करती हैं। विवाह को जाने के पश्चात् नव विवाहिता को 'सांझी' उजवाना (सम्पन्न करना) आवश्यक है। वह सोलह छोटे-छोटे 'छबल्यों' में लोंग, सुपारी, कुंकु, नाड़ा, हल्दी, एक-एक पैसा, हरे पत्ते के दोने, गेहूँ और अन्य सुहाग सामग्री रखकर अपनी १६ कुंवारी सहेलियों को मंगल कामनार्थ, उनके घर जाकर, उन्हें बिन्दिया लगाकर प्रदान करती है। 'साँझी' खमा देने के बाद केवल 'मीरा की गाड़ी' नामक आकृति चमकीली पन्नी लगाकर वर्ष भर के लिए सुरक्षित रखी जाती है। राजस्थान में भी विवाहिता बालिकाएँ इसी प्रकार का आयोजन करती हैं। वे दसमी के दिन ढोली को खल्ला देती हैं। खल्ले में बीस पुष्प, केसरिया कपड़ा, दो टका, चार आने अथवा एक रुपया, नौ दोने (प्रत्येक में दस-दस कौड़ियाँ अथवा एक-एक पैसा रखा जाता है)

१. मालवी लोक गीत (प्रकाशित) पृष्ठ—६४।

और दस-दस पुए होते हैं। इस समय छूमड़ा (ढोली) की एक कथा भी कही जाती है।[1]

उक्त अनुष्ठान की दृष्टि से सांझी का पक्ष जटिल नहीं है। इसका विस्तार किसी भी भाँति संभव नहीं। आरती के गीतों का गाया जाना पूजन के नाते आवश्यक है। विशेष परिस्थितियों में भी कम से कम पाँच गीत गाये जाने अपेक्षित हैं। अतः गीतों से अनुष्ठान की महत्ता संबंधित है।

## ग : ऐतिह्य

'साँझी' के ऐतिह्य मूल्यों का निर्धारण प्रमाणों के अभाव में यथातथ्य खरा नहीं उतरता। 'साँझी', 'संजा', 'साँजी' 'संझया' जैसे भिन्न-भिन्न नामों से स्पष्ट है, अपने शुद्ध रूप में संध्या शब्द की द्योतक है। पंडित हजारीप्रसाद द्विवेदी का अनुमान पूर्ण प्रश्न है कि 'क्या सांझी' का ब्रह्मा की कन्या 'संध्या' से किसी तरह का संबंध तो नहीं है?[2] कालिका पुराण (विक्रम की दसवीं-ग्यारहवीं शताब्दी) के अनुसार संध्या द्वारा ब्रह्मा से समागम के परिणाम स्वरूप ४६ भाव और ६६ कलाएं उत्पन्न हुई।[3] किन्तु भाव एवं कला की उत्पत्ति मात्र से एवं नाम्य साम्य के कारण यह अनुमान भ्रान्त होगा। अतः सांझी का संध्या से किसी तरह का संबंध प्रतीत नहीं होता। सांझी कौन थी? यह प्रश्न लोकवार्ता के अन्वेषकों के मन में आवश्यक रूप से उठना ही चाहिए। 'सांझी' के सम्मुख गाये जाने वाले कुछ गीतों से उसके ऐतिह्य पक्ष पर प्रकाश पड़ता है। एक गीत है।

जीरो लो बई जीरो लो
जीरो लइने संजा के दो
संजा का पीयर सांगा सोल
परण पधार्‌या गड़ अजमेर
राणाजी की चाकरी कल्याणजी की देस
छोड़ा म्हारी चाकर पधारो त्हारा देश[4]

---

१. लोक कला (भाग १), अंक १, पृ० २८-२६।

२. लेखक को प्राप्त एक नोट के आधार पर।

३. उदीरितोन्द्रियां धाता वीक्षांचक्रे यदाथ् ताम्
तदैव ह्यूनपन्चाशद् भावा जाताः शरीरतः।
विव्वोका द्यास्तथा हावाश्चतुः षष्टिकलास्तथा।
कन्दर्पशर विद्धायाः सन्ध्याया अभवान्द्विजा ::॥
—कालिका पुराण, २, २८-२६

४. परिशिष्ट : गीत संख्या—१३।

यही गीत अपने साधारण पाठान्तर के साथ राजस्थान में भी प्रचलित है। उसकी प्रथम चार पंक्तियां इस प्रकार है :—

रखड़ी लो री रखड़ी लो
रखड़ी ले र म्हांका संझ्या बाई ने दो
संझ्याबाई को सासरियो गड़ अजमेर
परण पधार्‌या सांगानेर[1]

मालवा में उक्त गीत का एक दूसरा पाठान्तर भी दृष्टव्य है। प्रथम दो पंक्तियों में माला लेने का उल्लेख है और अंतिम तीन पक्तियों की पदावली इस प्रकार है :—

परण पधार्‌या धड़ियक में
श्याम (राम) त्हारीं चाकरी कल्यान त्हारो देस[2]
छोड़ो म्हारी चाकरी पधारो त्हांका देश[3]

उक्त सभी पंक्तियों से यही निष्कर्ष निकलता है कि साँझी (संजा) का पीहर साँगानेर नामक स्थान में है और उसका विवाह अजमेर में हुआ है। साँगानेर कल्याणजी का देश है जहाँ राणाजी की चाकरी (सेवा) होती है। इसीलिए विवाह के बाद कल्याणजी उसे अपनी सेवा से मुक्त कर सुसराल जाने का आग्रह करते हैं।

अन्य गीतों में प्रयुक्त उपकरण और प्रवृत्तियाँ मध्यकालीन सामन्ती वातावरण की पोषक हैं। बाल-सुलभ चेष्टाओं द्वारा अन्य असंगत बातों को छोड़ कर उन गीतों में देखें तो यह और भी स्पष्ट हो जाता है कि साँझी को सास उसे कष्ट दिया करती है।[4] यद्यपि वह बड़े बाप की बेटी थी लाड़ प्यार से उसका पालन हुआ, किन्तु विवाह के पश्चात् श्वसुरालय में वह सुख नहीं पा सकी।

साँझी के अंतिम दिन बनाये जाने वाले किलाकोट (ब्रज में नरवर कोट) में राजपूत संस्कृति का पूरा प्रभाव है। मध्य काल में किलाकोट के भीतर ही संपूर्ण नगर होता था, इसलिये जो किलाकोट बनाये जाते हैं उनके पूर्ण प्रबन्ध का संकेत आकृतियों में होता है। किलाकोट में 'मीरा की गाड़ी' बनाना आवश्यक समझा जाता है। इससे जिज्ञासा होती है कि कहीं साँझी व्रत का संबंध मीरा के द्वारका गमन से तो नहीं है?[5]

---

१. लोक कला भाग १ अंक १, पृ० २९।
२. पाठान्तर—'राम त्हारी चाकरी, गुलाम त्हारो देस'।
३. परिशिष्ट: गीत संख्या १३ (पाठान्मर सहित)।
४. मालवी लोक गीत (प्रकाशित) पृष्ठ ६६।
५. प०: गीत संख्या—३।

ब्रज में १६ कोटों का पूजन नवविवाहिता के लिये अनिवार्य है। सोलह की यह संख्या बालिका के पूर्णत्व की द्योतक प्रतीत होती है।

गीतों के अध्ययन से यह बात और भी स्पष्ट हो जाती है कि साँझी का बालिका रूप धीरे-धीरे वय प्राप्त करता है और वह प्रोषितपतिका होकर पति के लिए चौबारे में शृंगार करके प्रतीक्षा करती है। अधिक विलम्ब होते देख कर वह व्याकुल हो खजूर पर चढ़कर पंथ निहारती है। शकुन के लिए काने कौवे को भी उड़ाती है। खोड्या ब्राह्मण (ब्रज में लगड़ा ब्राह्मण) उसे लिवाने के लिए आता है जो एक गीत के अनुसार साँझी के लिए 'भम्मर' 'टीका' और माला लेकर आता है। किन्तु अपने हुक्के को तम्बाकू के लिये माला बेच देता है और आकर यही कहता है कि वह माला भूल आया।[१]

गीतों से यह भी अनुमानित होता कि 'साँझी' का विवाह बचपन में हो गया था। इसलिए उसकी माता उसे पर्याप्त अनुशासन में रखती है। विलम्ब से घर लौटने पर उसे धमकाती है। समझदार बालिकाएं साँझी को 'हिरनी' (मृगशिरा नक्षत्र) उगने के पूर्व उसके बड़े-बड़े दाँतों की कल्पना से डराती हैं और कहती है कि तुम अब घर लौट जावो।[२]

ब्रज के एक गीत में सजलदे नामकी स्त्री साँजा की पत्नी कही गई है। ब्रज की साँजी में साँझी के साथ साँजा भी पूजित है। उसकी आकृति एकादशी के बाद साँझी के साथ बनाई जाती है और दोनों ही नरवर कोट में सजाकर बैठाये जाते हैं। साँझी के गीतों से उसके गीत भिन्न हैं। अतः ब्रज के गीतों के माध्यम से साँझी का दूसरा नाम सजलदे और पति का नाम साँझा ज्ञात होता है।[३] सजलदे नाम राजस्थानी आमलदे, रूपदे, वीरम दे, माल दे आदि नामों की अनुरूपता लिये है, जिससे साँझी का राजस्थानी से मूल संबंध प्रमाणित होता है। यों ब्रज की साँझी के अन्य गीतों में साँझा साँझी का भाई भी बताया गया है :—

साँजी के औरे धौरे हरी है चौराई
मो तोय पूछूँ साँझी कै तेरे भाई
नौ दसों का अंजन-मंजन साँजा मेरो भाई [४]

संभवतः भाई और पति दो भिन्न व्यक्तित्व होते हुए भी एक ही नाम के हों।[५] मालवी गीतों में साँझी के भाई का नाम सूरजनरायण है[६] जो वय में छोटा है पर

१. मालवी लोक गीत (प्रकाशित), पृष्ठ ६७।
२. वही , पृष्ठ ६३।
३. ब्रज भारती, ब्रज की देवी साँझी, फाल्गुन, २०११, पृष्ठ ५०।
४. वही , पृष्ठ ५०।
५. वही , पृष्ठ ,,।
६. मालवी लोक गीत (प्रकाशित), पृष्ठ ६८।

घोड़ी तेज दौड़ता है।[१] वह अपनी बहिन को बहुत स्नेह करता है। साँझी के बिना उसका बगीचा सूखने लगता है। अतः वह उसे सुसराल से लिवा लाता है। गाँव की सीमा (गोयरे) पर बहन के आते ही उसका बाग लहराने लगता है।[२] साँझी भी अपने भाई को स्नेह करती है। उसे वह अपनी वेणी का हीरा समझती है।[३] वह कद में लम्बा और दही जमाने में चतुर है[४] ब्रज का साँजा लाल फैटा बाँधता है और ऊंची अटारी पर शयः करता है।[५] मालवी गीतों में साँझी के पति का कोई अता-पता नहीं मिलता। केवल एक गीत में संजलाल नाम आता है।[६] साँजी ब्रज में कहाँ से आई इसके लिए गीतों का आधार अपर्याप्त है। ब्रज गीत की एक पंक्ति है :—

सांझी भेना बाजारों में डोले
मैना की चाल चाले, गुजराती बोली बोले।[७]

गुजराती बोलने के इस प्रमाण मात्र से उसका संबंध गुजरात से नहीं हो सकता। इसलिये गीतों की भाषा, प्रवृत्ति और उपकरणों के साम्य से जो सर्वमान्य अनुमान लगाये जा सकते हैं वे संक्षेप में यही हैं कि 'साँझी' मालवा, ब्रज, राजस्थान आदि में घुमन्त जातियों के आवागमन द्वारा प्रचलित हुई और जिसका मूल उद्गम अधिक संभव है, अजमेर-सांगानेर से ही हुआ हो। यही लोक धारणाओं पर आधारित उसका ऐतिह्य पक्ष है।

अब 'साँझी' के प्रचलित होने के कारणों पर विचार किया जाये प्रथम एवं मूल प्रश्न यही है कि साँझी का पितृ-पक्ष से क्या संबंध है? साँझी के विवाह का प्रसंग, उसकी सौभाग्य-श्री एवं सुसराल पक्ष का उल्लेख सुन्दर जीवन का द्योतक है, किन्तु उसके बाद-श्राद्ध पक्ष में बनाये जाने की परम्परा क्या अर्थ रखती है? आकृति का बनाया जाना यद्यपि प्रतीक पूजा के नाते मान्य भी हो तो नव विवाहिता के प्रथम वर्ष के बाद उसे क्यों नहीं बनाती? श्री जोगेन्द्र सहाय सक्सेना का अनुमान है इसका संबंध अनिष्ठ से मालूम होता है और वह अनिष्ठ सांझी के विवाह होने के एक वर्ष के भीतर ही घटित हुआ हो।[८] किन्तु सुहाग के अन्य उपकरण, गीतों में मुखरित कल्याण कामना, समृद्ध परिवार के सदस्यों के सजीव चित्र, भाई-भावज, नंनद, देवर-देवरानी

---

१. वही पृष्ठ—६१।
२. वही ,, —७०।
३. परिशिष्ट : गीत संख्या ४।
४. वही ,, १५।
५. ब्रज भारती, फाल्गुन, २०११, पृष्ठ ५०-५१।
६. परिशिष्ट : १, गीत संख्या २२।
७. ब्रज भारती, फाल्गुन, २०११, पृष्ठ ४०-५१।
८. लोक कला : भाग १, अंक १, पृष्ठ ३१।

माता-पिता, ब्राह्मण और अन्त में सांझी का सुसराल की ओर ठाट-बाट में गमन मंगल सूचक है। 'सांझी' अपने समय की आदर्श कन्या रही होगी। अपने पिता और माता की लाड़ली होने के कारण उसके सुसराल चले जाने के बाद संभवतः माता-पिता ने अपनी राज्यसीमा में सांझी की स्मृति में कुंवारी कन्याओं को कोई त्यौहार आरंभ किया हो और जिसने आगे चलकर अनुष्ठानिक महत्त्व प्राप्त कर लिया हो श्राद्ध-पक्ष से साँझी का यही संबंध हो सकता है कि उस काल में साँझी का विवाह हुआ हो। राजस्थान में कुछ शताब्दियों पूर्व बाल विवाह का प्रचार था। अतएव सांझी का विवाह बचपन में हुआ हो तो आश्चर्य नहीं उसके सुसराल जाने का वर्णन एक गीत में इस प्रकार है :—

नानी सी गाड़ी रड़कती जाय
जी में बैठा संजा बई
घाघरियो घमकाता जाय
चूड़लो चमकाता जाय
बई की नथनी झोला जाय[1]

राजस्थानी पाठान्तर है :—

गुड़ गुड़ गुढ़ल्यो गुड़तो जाय
जो में म्हांका संझ्या बई जाय
घाघरी घमकाता जाय
लुगड़ी चमकाता जाय
टोकली भड़काता जाय
चूड़लो चमकाता जाय[2] व

वर्णन से उसके अल्प वय का अनुमान लगाया जा सकता है।

अतः साँझी का ऐतिह्य पक्ष ठोस प्रमाणों के अभाव में केवल लोकगीतों पर आधारित मात्र है। इतना स्पष्ट है कि इस बालिकाओं के भावी जीवन के लिये मंगल कामना का संदेश है। साँझी इसीलिये सौभाग्य का आदर्श प्रतीक ही नहीं उनके लिये सजीव व्यक्तित्व सदृश्य है।

घ : सांझी के गीत, किंचित पाठान्तरों के साथ लगभग ५० होंगे। प्रस्तुत विश्लेषण का आधार ३० प्रमुख गीत हैं जिन्हें मध्यवर्ती मालवा से सन १९५२-५३ में संकलित किया है। यद्यपि सभी गीतों में बाल सुलभ वृत्ति का प्राधान्य है

१. मालवी लोकगीत : प्रकाशित : पृष्ठ ६९।
२. लोक कला : भाग १ :, अंक-१, पृष्ठ ३०।

तथापि विषय की दृष्टि से उन्हें निम्नलिखित वर्गों में विभाजित करना उपयुक्त प्रतीत होता है :—

१. आरती के गीत ।

२. साँझी की आवश्यकताएँ और उनकी पूर्ति के गीत ।

३. परिचयात्मक गीत ।

(क) पीहर पक्ष और सुसराल पक्ष के परिचायक गीत ।

(ख) साँझी के रूप वर्णन एवं विद: के गीत ।

४. अन्य गीत ।

१. साँझी के पूजा के लिये एक थाली में कुंकु, अक्षत, फूल-पत्र, और कपूर की ज्योति पर्याप्त सामग्री है । किन्तु आरती के गीतों में हरा गोबर, पीले फूल की माला एवं केशर भरी कटोरी का उल्लेख और मिलता है ।[१] सम्मिलित स्वर में गीतों के गाये जाने पद्धति का संकेत आरती के हेतु कन्याओं का भाई और भतीजे के भावी योग के आशिवचन के साथ आमंत्रित की पंक्तियों में व्यक्त हुआ है ।[२] संजा की की आरती में संजा का आरती करता हुआ चित्र बालिकाओं का अपना चित्र है :—

छोटी सी संज्या बेन्या
लै फुड़ला आरती करी र्‍या

आरती के क्रम से बालिकाएँ गीतों में अपने कुटुम्बियों की सुखद कल्पना करती हुई, संजा पर वारी जाती है । उसका चंपा कलियों से पूजन करने व सिंहासन को हीरों से जड़ने का वचन देती है[४] साँझी हरा गोबर और फूलों की कंचुकी माँगती है तो बालिकाएँ तुरन्त अपने भाइयों का स्मरण कर उनकी सहायता से साँझी को अभीष्ट वस्तुएँ लाकर भी देती है ।[५]

अतएव साँझी की आरती के इने-गिने जो गीत हैं वे बाल सुलभ कल्पनाओं से गुंफित होते हुए भी असम्बद्धतापूर्ण नहीं हैं । यों चित्र छिटके हुए हैं और अल्प मात्रा में सामूहिक लय के निर्वाहार्थ आकल्पि-संयोजना भी एक दो गीत में देखी जाती है ।[६]

---

१. परिशिष्ट—१, गीत संख्या १ ।
२. वही ।
३. मालवी लोक गीत : प्रकाशित : पृष्ट ६१ ।
४. वही ।
५. वही, पृष्ठ ६२
६. परिशिष्ट गीत संख्या ४ ।

२. साँझी ( संजा ) की माँग बहुत थोड़ी है। वह आरती के एक गीत से प्रगट है। उसे हरा गोबर और फूलों की काँचुली ( कंचुकी ) प्रिय है। वह जामुन पसन्द करती है, क्योंकि जामुन का डन्ठल लाल और फूल पीला होता है।

लो संजा बई जामुनियो
जामुनिया की राती डांडी
पीलो फूल, पीलो फूल

साँझी को गुलाबी रंग की छपाई से विशेष प्रेम हैं इसलिये वह रंगरेज के घाघरे की बूटी गुलाबी रंगने की आज्ञा देती है।[2] एक गीत में वह "काली बावड़ा" नामक स्थान के हाट ( साप्ताहिक बाजार ) से छल्ला मुंदड़ी लाने का आग्रह करती है, चाहे वे मंहगे मिलें या सस्ते।[3] संक्षेप में साँझी को रंगों और आभूषणों से प्रेम हैं। वह अधिक वस्तुएँ नहीं माँगती, क्योंकि उसे किसी बात की कमी नहीं। उसका पारिवारिक वैभव ही उसकी समृद्धि का परिचायक है।

३. परिचयात्मक गीतों में के पीहर पक्ष में भाई ( सूरज नारायण ) एवं अन्य छोटे भाई, माता-पिता और भौजाइयों का उल्लेख मिलता है। माता अनुशासन प्रिय है और भौजाइयों रानी जैसी हैं। छोटे भाई पतंग एवं दही जमाने में है। उनका व्यक्तित्व खिलाड़ियों-सा है।

गुड़ी खेलता भई हमारा
राण्या सरखी भौजायां जी[4]

पिता का उल्लेख मात्र हुआ है। इससे यही प्रगट है कि पीहर पक्ष में सांझी का परिवार काफ़ी बड़ा था। इसी बड़े परिवार में साँझी ही एक मात्र लड़की रही होगी जो अपने सम्पूर्ण परिवार का स्नेह पा सकी। उसकी बहनों का कहीं भी उल्लेख नहीं मिलता।

श्वसुर पक्ष में पति के अतिरिक्त "दूतड़ली" सास, देवर-देवरानी, जेठ-जेठानी और कुंवारी नंनद है। देवर का स्वभाव भी सास की भाँति है।[5]

साँझी (संजा) बड़े बाप की कन्या है। बचपन में वह खाजा और रोटी खाती थी। माणिक मोतियों से उसका शृंगार होता और उसकी वेणी नागिन सी लहराती रहती। वयस्का हुई तो उसके माथे पर कलश और दाहिने हाथ में मोतियों की राशि आ

१. मालवी लोक गीत : प्रकाशित, पृष्ठ ६३।
२. परिशिष्ट गीत संख्या २६।
३. वही, गीत संख्या २१।
४. वही, पृष्ट ६६।
५. परिशिष्टः गीत संख्या २६।

गई ।[1] उसकी नासिका ऊँची और माथे में मोतियों से माँग भरी गई ।[2] मालवा की सांझी चोरा (वस्त्र) पर रंगीन बे ा बूटे की छपाई पसन्द करती है जब वह ससुराल बिदा हुई तो घाघरिणा झमकाती और चूड़े चमकाती हुई चली ।[3] उस समय उसकी "नथ" (नासिका का आभूषण) झूल रही थी, इस वर्णन ने साँझी प्रधानतः मध्य युगीन समृद्ध परिवार की कन्या प्रतीत होती है । ब्रज की सांझी, यद्यपि मालवा की भाँति मोतियों से मांग तो पुराती है ही है पर उसे मिसरू का पहनना और सालू का ओढ़ना भी पसन्द है वह सोने से अपना सीस गुथाना चाहती है ।[4]

ससुराल ने सांझी को लेने के लिये (खोड़या ब्राह्मण) के अतिरिक्त हाथी, घोड़े, पालकी, म्याना आदि भेजे गये हैं पर अपने बालसुलभ स्वभाव के कारण अपने पिता से कहती हैं कि मैं ससुराल नहीं जाऊँगी । इसलिए हाथी हाथीखाने में, घोड़े घुड़साल में, पालकी छज्जे पर और म्याना महल में धराने की सलाह देती है ।[5] वह अब बड़ी हो गई है । अतः उसे जाना तो है ही । सांझी के परिचायक गीतों के साथ उसकी विदाई के क्षणों की पीड़ा संकेत उभरने लगते हैं ।

आज म्हारी संजा बई जावणा
चलो सखी आरती सजाओ
दो दन पावणा ने तिसरा दन सून
म्हारी संजा बई ने लेवा आया पावणा
भोजन जिमाऊँ म्हारी संजा ने
बारा महिना में पाछी आवेगा
सूरजनारायण बीरो लेवा जावेगा
सोला दन रिया म्हारी संजा बई
पालकी में बैठी अब जावेगा
आज म्हारी संजा बई पावणा[6]

वह मुंडेर पर बैठी चिड़ियाँ हो गई है । पिता को उसे उड़ाना ही होगा । आँगन में मेहमान आ गये हैं क्योंकि सांझी अब सुसराल जायेगी ।[7]

---

१. मा० लो० (प्रकाशित) पृष्ठ ६२ ।
२. परिशिष्ट गीत संख्या १०
३. मा० लो० (प्रकाशित) पृष्ठ ५६ ।
४. ब्रज भारती, फाल्गुन, २०११' पृष्ठ ४६ ।
५. मा० लो० (प्रकाशित) पृष्ठ ६७–६८ ।
६. वही पृष्ठ ६८ ।
७. वही पृष्ठ ६६ ।

परिचायक गीतों में गीतितत्त्व का सौन्दर्य अपेक्षाकृत अधिक उभरा है। स्नेह सम्बन्धियों के उल्लेखों से उनमें पारिवारिक उष्मा का संचार हुआ है। लोक गीतों की परम्परात्मक वर्णन शैली का आश्रय लिये होते हुए भी कंठ़ौर्य की गरिमा उनमें उजली होती दीखती है।

अन्य गीतों की दो धाराएँ हैं। (१) कुतुहलात्मक-हास्य प्रधान और (२) संवादात्मक।

कुतुहलात्मक हास्य प्रधान गीतों में "केल" नामक एक गीत है जिसमें लघु कथा सूत्र के आधार पर देवर की अपेक्षा अपने "बीरा" (भाई) के प्रति शुभ कामनाओं के साथ देवर के प्रति हास्यात्मक स्थिति की संयोजना की गई है।[१] "खोड्या ब्राह्मण" और सासू "दूतड़ली" भी हास्यपूरित गीत है।[२] अन्य गीतों में "चिरकली" और "कागेला" संवादात्मक है जिनमें पुच्छलवत् टेक लगती है।[३]

आवश्यक रूप से गाये जाने वाले गीतों में "हिरनी" बहुत महत्त्वपूर्ण है। प्रारंभ में इस गीत का उल्लेख किया गया है "हिरनी" संपूर्ण मालवा और राजस्थान में प्रचलित है।

संजा बई तम हमारे घर जाव
कि तमारी मा मारेगी
कि तमारी मा कूटेगी
चाँद गयो गुजरात
कि हिरनी उगेगी-बई उगेगी ।।[४]
हिरनी का बड़ा बड़ा दांत
कि छोरा छोरी डरपेगा-बई डरपेगा

इस प्रकार दोनों ही प्रान्तों में प्रचलित 'ऊँदा चाटा'[५] का गीत भी उल्लेखनीय है। मामा-पक्ष के प्रति सांझी के माता का रोष एवं उसकी वृत्ति का परिचय है।

अतः सांझी के गीत संक्षेप अपनीमें निम्नलिखित विशेषताओं को समाहित किये हैं:—

(१) सामूहिक गेयतत्त्व (सामूहिक लय)
(२) लघु चरण एवं द्रुत गति।
(३) संवादात्मकता।

---

१. वही पृष्ठ ६४–६५
२. वही पृष्ठ ६६–६७।
३. परिशिष्ट गीत संख्या २७ एवं १३।
४. 'किरती माथे ढल गई, हिरनी लूंबा खाय'
(एक राजस्थानी गीत की पंक्ति)
५. वही : गीत संख्या १२।

(४) लघु-कथा-सूत्र।

(५) टेक पूर्ण (दुहरा दुहरा कर गाये जाने वाले)।

सांझी गीतों का मूल स्वभाव ( बालवृत्तियों के युक्त होकर भी ) आदर्श के प्रति श्रद्धापूरित है। विनोद उसमें गौण है। रस परिपाक की दृष्टि से कुतुहल की सृष्टि उनमें होती है। अलंकारों का एवं खेल गीतों की अकल्पित संयोजना और असम्बद्धता का सांजी के गीतों में अभाव है।

## परिशिष्ट

### सांझी के गीत

'आरती'

( १ )

हर्यो[1] सो गोबर पीली सी माला
करो संजा की आरती
तमारा मई भतीजा रो जोग
माता, बई संजा की आरती
पाना-फूलां भरीरे चंगेर[2]
केसर भरियो बाटको
संजा बई की मां, संजा ने भेजो
करे संजा की आरती[3]

( २ )

छोटी सी संजा बेन्या
ले फुलड़ा आरती करी रिया
छोटा सा सूरजनारायण बीरा
ले घोड़ी उड़ाय रिया जी...

---

१. हरा, २. नीला।

३. अंतिम चार पंक्तियों का दूसरा रूप :—

संजा की मां संजा ने भेजो
करो संजा की आरती
भई पाना फूलां भर्यो कचोलो
केसर भरियो बाटको

( ३ )

पेली आरती, पेली आरती
रई रमझांल
भई बाप की इमरत जोड़
वारी है संजा,
म्हने पूजूँ चंपा कलियाँ
सिंघासण घालूँ हीरा
तम दो संजाबई मीरा

( ४ )

संजा की आरती संजा को फूल
रोलो मामी रोलो, दई को कचौली
संजाबई का हाथ में बेल्या बेलू
तन तन ताजा उजली भतीजी
ओर पोरनी चा पाया, ऊँचा पाया
राज करे भौजाया का जाय
चुगली पर चोर अहग्यो नारायण सुनार
घड़े रे म्हारी माला
माला में का मोती, चमके म्हारी चोटी
चोटी में का हीरा, संजाबई का बीरा

( ५ )

म्हारा वीराजी जीमण बैठा
नी कलसा में पाणी जी
चलो देरानी, चलो जिठानी
वापण चालां पाणी जी
ऐली सरवर तम भरो
पेली सरवर हम भरांजी
भरते भरते अंई लचकाना
वंई लचकाना
आदी कलका[1] अटका बटका

---

१. लचक।

आदी कनका मोती जो
मोती लई ने चलवा लाया
लाड़्लो ललकारे जी
ऊबोरे लाड़्ला म्हारा भई-जिरा से केवादे
भई बीरा की सातर[1] राणी
साती कामण[2] गावेजी
'दांतन तारो'

( ६ )

आंबा मोर्‌या, लींबू मोर्‌या
लींबू डाड़म दाख
श्रीकिशनजी सेवा बैठा
उठो राणी पियो पाणी
झालर बाजे, घड़यावल बाजे
ऊगा तारा, संजा फूली
छोड़ो मुन सीताफल लाग्या
मुनीजी की मुन छूटी
केशवजी का कवाँड़ खुल्या
मुनी बाबा राम-राम[3]

(७)

संजा तो माँगे हर्यो हर्यो गोबर
कां से लऊं बई, हर्यों-हर्यों गोबर ?
म्हारा बिराजी गवली घरे बैठा
ले ओ संजा, हर्यों हर्यों गोबर ।
संजा तो मांगे फूले कांचलो
कां से लऊँ बई कांचली ?
म्हारा बिराजी माली-घरे बैठ
ले ओ संजा, फूले कांचली ।

---

१. सात २. इस प्रकार का गीत ।
३. मुनी ( मोनी ) का व्रत समाप्ति के समय कहा जाता है ।

(८)

लो संजा बई जामुणियो
जामुणिया की राती[1] डांडी
पीली फूल, पीलो फूल

(९)

संजा तू बड़ा बाप की बेटी
तू खाय खाजा रोटी
तू पेरे मानक मोती
संजा एवड़ो हो
माथे बेवड़ो हो
म्हारा डावा हाथ करेलो हो
म्हारा जिमणा हाथे मोतो हो
म्हारी चोंटो लेरिया लेती हो
"सोवेट्या"[2]

(१०)

कुवा पिछाड़ी चार कबूतर कौन सो बीरो गोरो रे
——सोवेट्या
चांद-सूरज बीरो गोरो रे ——सोवेट्या
चांद-सूरज बीरो ने मूंदड़ी पायो
जाय बऊँ ने सांप्यो रे ——सोवेट्या
बऊ सतूतन ओढ़न जाने पेरन जाने
कौन सी नंनद बुलाऊ रे ——सोवेट्या
संजा नंनद बुलाऊँ रे ——सोवेट्या
संजा की तो ऊँची नाक-नीची नाक
कमल की चोंटी
मोत्या मांग भराऊँ ——सोवेट्या

---

१. लाल २. सूआ (तोता)।

(११)

"हिरनी"

संजाबई तम तमारा घरे जाव
कि तमारी माँ मारेगी
कि तमारी माँ कूटेगी
चाँद गयो गुजरात
कि हिरनी[1] ऊगेगी—बई उगेगी
हिरनो का बड़ा बड़ा दाँत
कि छोरा छोरी डरपेगा—बई डरपेगा

(१२)

कोरी कोरी कुलड़ी में
बालोरेया बगार्‌याजी
अई म्हारी संजा बेन्या
जीभी चूंठी ने घरे पधार्‌याजी
वाकी माता धम्-धम् धमकार्‌याजी
काये माता क्यों धमकार्‌या?
तमारा मामा घणा सपूता
ऊँदा[2] चाँटा मार्‌या जी

(१३)

जीरो लो भई जीरो लो
जीरो लई ने संजा ने दो
संजा का पीहर साँगा सोल
परण पधार्‌या, घोड़ा डकार्‌या

---

१. किरती माथे ढल गई
हिरनी लूंबा खाय—झीमा चारणी (रानी उमादे और राव अचलदास के गीत से) मृगशिरा नक्षत्र।

२. उलटे।

राम थारी चाकरी गुलाम त्हारो भेस
छोड़ो म्हारी चाकरी, पधारो त्हांका देश[1]

(१४)

ये मां कोन सी बेन्या रो दूरो सासरो
ये मां कोन सो बीरो लेवा जाय
ये जमण म्हारी कोयल होती तो उड़ी जाती
ये मां संजा बेन्या रो दूरो सासुरो
ये मां सूरज नारायण बीरो लेवा जाय रमण
म्हारी कोयल होती तो उड़ी जाती

(१५)

दो सोना री चिरकली
दो रूपा री चिरकली
उड़ती उड़ती संजा का सासरे जाय
संजा बई बीरो पिचाण लो
पिचाणू बीरो लाम्बो, घोड़ो पातलो
सेर गली में खेल रे एक लो
दंई जमावे चोखलो

---

१. पाठान्तर :—

माला लो बई माला लो
माला लई म्हारा संजा नें दो
संजा को पीहर सांगा में
पद्म पधार्या घड़ियक मैं
श्याम त्हारी चाकरी, कल्याण त्हारो देस
छोड़ो म्हारी चाकरी, पधारो त्हांका देस

———

"रखड़ी लोरी बाई रखड़ी लो
रखड़ी 'ले' र म्हांका संझ्या बाई ने दो
संझ्या बाई को सासरियो गड़ अजमेर
परण पधार्या सांगानेर
राणाजी की चाकरी, कल्याणजी को देस
छोड़ो म्हांकी चाकरी, पधारो थांका देस"

—लोक कला, भाग १, अंक १ पृष्ठ २९।

( १६ )

संजा बई का सासरे जावांगा
खाटो रोटो खावांगा
संजा बई की सासू दूनड़ली
ऐसी दूं दारी के नमका की
काम कराऊँ तड़का से
हूँ बैठूँ गादी पे
उके बिठाऊँगा खूंटी पे

( १७ )

कारे तू खोड़्या बामण
सांझी लेवा आयो रे
म्हारी संजा वास्ते कई कई लायो
झम्मर लायो, टीका लायो
माला भूली आयो रे
माला बेंच तमाखू लायो
गुड़-गुड़ करतो आयो रे

( १८ )

बई संजा ए, थारा सासरिया से
हाथी भी आया ने घोड़ा भी आया
पालकी भी आयी ने म्याना भी आया
तम तो जाव बई संजा सासरे
हम तो नी जावां दादाजी सासरे
हाथी ठहाने बंधऊँ, घोड़ा पायग बंधऊँ
पालकी छज्जे धरऊँ, म्हाना मेले धरूऊँ
तम तो जाव बई संजा, सास रे

( १९ )

आज म्हारी संजाबई पावणा
चलो सखी आरती सजावो
दो दन पावणां ने तिसरा दन सूना
म्हारी संजाबई ने लेवा आया पावणा

भोजन जिमाऊँ म्हारी संजा ने
बारा महिना में पाछी आवेगा
सूरजनारायण बीरा लेवा ने आवेगा
सोला दन रिया म्हारी संजाबई
पालकी में बैठी ने जावेगा
आज म्हारी संजा बई पावणा

( २० )

चांदे बैठी चिड़कली
उड़ाव म्हारा दादाजी
आंगन बेठा पावणा
जिमाव म्हारा दादाजी
संजाबई चाल्या सासरे
मनाव म्हारा दादाजी

( २१ )

नानी सी गाड़ी रड़कती जाय
जीमे बैठा संजा बई
घाघरिया झमकाता जाय
चूड़लो चमकाता जाय
बई की नथनी झोला खाय

( २२ )

संजुलालजी ने बटुआ रंग्या
संजा बई रा चीरा जी
चीरा ओड़्या पनघट चाल्या
जल जमना रा नीर जी
भरत भरत पर डोर टूटे
अब घर कैसे जाऊँजी
घरे जऊँ म्हारी सासू लड़े
कुवे जऊँ पनिहार जी

( २३ )

इलक तिलक का तोर्‌या
बई, बेकल की तलवार जी
कां को बीरो बाग लगावे
कांकी बेन्या सींचे जी
सूरजनारायण बीरा बाग लगावे
संजा बेन्या सींचे जी
बई तो चाली सासरे
म्हारो बाग सूखेजी
रूपया लई लो रोकड़ा
म्हारी बई ने पाछी लावोजी
बई तो आया गोयरे
म्हारो बाग लेरायेजी

( २४ )

'केल'

म्हारा आंगणे केल उगी
केल उगी-केल उगी
हूँ जाणू पपइयो बोल्यो
बड़ा जेठजी जीमण बेठा
नई कलस्या में पाणी जी
घूंघट खोली सान बताई
चलो जिठानी पाणी जी
येले घांटे हम भरांजी
पेले घांटे तम भरो
भरते भरते मोती पायो
जाँ बैठे थी बाबूड़ो
बाबूड़ा रे बाबूड़ा,
कंई, सुनो बात हमारी जी
गुड्डी खेलता भई हमारा
राण्या सरखी भोजायांजी

( २५ )

म्हारा पिछवाड़े केल उगी
—केल उगी
हूँ जाणू पपइयो बोल्यो
म्हारा बीराजी चढ़वा लाग्या
चड़जो अच्छी सी डाली
म्हारा देवरिया चढ़वा लागा
चडजो टूटी सीं डाली
म्हारा बीराजी जिमवा बैठा
दऊँ रे ताजा-सा भोजन
म्हारा देवरिया जीवण बेठा
दऊँ रे सूखा-सा टुकड़ा
म्हारा बीराजी घरे छोरो हुयो
लई जऊँ झगल्या ने टोपी
म्हारा देवरिया घरे छोरी हुई
दऊँ रे सिल्ला पे दचकी

( २६ )

रंग रंग रे गुलाबी छीपा
धावरारी बूटी छे
रंगू छे ये डावड़ी
त्हारा कितना भई छ
पंचम पच्चीस म्हारे
सूरजनाराण भई छे
तारा बिजली लाल,
म्हारी संजा बई बेन छे

( २७ )

किका किका घर को नोतो रे—कागेला
संजा बई का घर को नोतो रे—कागेला
कंई कंई नोत जिमावे रे—कागेला
लबसी का लोंदा, ऊपरे घी का झारा रे—कागेला

( २८ )

संजा जीमले हो-चूंठले हो
चीरेलो चिराय ले
चीरा ऊपर मोर नाचे
डेढ़ घड़ी ए रात
चमक चांदनी-सी रात
फूलाँ भरीरे परात
एक फूल गिरयो
म्हारी संजा बई उदास

( २६ )

काली बावड़ा का हाट जइयो में
छल्ला मुंदड़ी लइयो जी
मूंगा हो तो लइयो जी
घर में ननदल कुंवारी जो
देवर है दूतारो जी

टिप्पणी १

# चतुर कवि शामल की पद्य-कहानी : पद्मावती

## प्राचीन गुजराती साहित्य

गुजरात के लोकप्रिय चतुर कवि और पद्यकहानीकार श्री शामल भट्ट का जन्म सन् १६७० के आसपास अहमदाबाद के समीप बसे हुए गाँव गोमतीपुर में हुआ था। उनकी मृत्यु सन् १७३० में मानी जाती है। उन्होंने संस्कृत और हिन्दी का काफी अभ्यास किया था। वे गुजरात के महान् आख्यानकार प्रेमानंद के अनुगामी थे।

उनकी कल्पना अति तीव्र और उनकी पद्य कहानियाँ बहुत रसमय हैं। उनकी भाषा और शैली ग्राम्य होते हुए भी संस्कारी दिखलाई देती है। उनके जमाने में अहमदाबाद में मुग़ल शासन था। इससे उनकी रचनाओं में फारसी तथा उर्दू शब्दों की प्रचुरता दृष्टिगोचर होती है। प्रधानतः उनकी रचनाएँ कथात्मक और बोधात्मक होती हैं। गुजराती वाङ्मय के इतिहास में व्यावहारिक भाषा को कहावतों—मुहावरों से आभूषित तथा सुसज्जित करने का सबसे बड़ा काम 'शामल' ने ही किया है। जनता के मनोरंजनार्थ उनकी कहानियों में पहेलियाँ खूब आती हैं। हम यहाँ आज उनकी एक कहानी 'पद्मावती' को ले रहे हैं।

'पद्मावती' की कथा वस्तु संक्षेपतः इस प्रकार है—

बहुत पुरानी बात है।

चंपावती नगरी में चंपकसेन नामक एक राजा था। उसके पुष्पावती नामक एक रानी तथा पुष्पसेन नामक एक राजकुँवर था। राजकुँवर बत्तीस लक्षणों से युक्त एवम् चौदह विद्याओं का ज्ञाता था। छत्तीस रागों को वह गा सकता था। वह बड़ा मेधावी था। सोलह साल के पूरे होते ही वह धनुर्विद्या में पारंगत हो गया!

एक दिन वह घोड़े पर सवार होकर शिकार के लिये चला, साथ में मंत्री भी था। बसंत ऋतु के दिन थे। कोकिलाएँ मधुर स्वर में गा रही थीं। चारों ओर की

प्रकृति भी मानों आनंद विभोर थी। राजकुँवर ने एक दुर्दान्त शेर का शिकार कर लिया। शिकार के बाद दोनों राजनगरी की ओर रवाना हुए।

नगरी के समीप एक सरोवर था। तृषा के कारण दोनों जल पीने के लिये वहाँ गये। शीतल जल पीकर दोनों संतुष्ट हुए। इतने में दोनों की नजर पानी भरने के लिये आती हुई एक सुन्दरी पर पड़ी। उसके साथ कई सहेलियाँ भी थीं। सब हास-परिहास करती हुईं चली आ रही थीं। सुन्दरी का नाम था सुलोचना। सुलोचना ने राजकुमार को देखा। वह उसके सौंदर्य पर मोहित हो गई। वह अपनी सहेलियों के साथ कटाक्ष और वार्त्तालाप करती हुईं आगे बढ़ीं। राजकुमार सुलोचना के मधुर कटाक्षों को समझ नहीं पाया। राजकुमार की यह लापरवाही देखकर सुलोचना मन ही मन कुपित हो उठी। उसने क्रोधित स्वर में राजकुमार से कहा—'कुमार, व्यर्थ ही हाथों में इस धनुष का बोझ उठाये क्यों फिरते हो?'

सुन्दरी के शब्दोच्चार सुनकर राजकुमार हैरान हो उठा। उसने सूचक दृष्टि से मंत्री की ओर देखा। मंत्री ने सुन्दरी से पूछा—"हे स्त्री! तुम कौन हो? तुम्हारी क्या जाति है? क्या तुमको मालूम नहीं कि यह राजकुमार है?"

यह सुनकर सुलोचना खिलखिला कर हँस पड़ी। उसकी सहेलियाँ भी हँस उठीं। सुन्दरी ने मंत्री को उत्तर दिया—'मैं राजकुमार की धनुर्विद्या की परीक्षा लेना चाहती हूँ।'

राजकुमार ने कहा—'खुशी से लीजिये।'

सुन्दरी ने कहा—'किन्तु आप मेरी परीक्षा में असफल हो जायेंगे तो आपको मेरी एक शर्त माननी पड़ेगी।'

'जरूर मानूँगा। क्या है आपकी शर्त?'

'आप असफल रहेंगे तो आपको मेरे साथ विवाह करना होगा।'

'अवश्य! लीजिये परीक्षा।'

'अच्छा तो छोड़िये एक तीर। निशाना लगाइए मेरे सिर पर रखे घड़े का।' राजकुमार ने तीर छोड़ा। सुलोचना ने उसे बीच में ही पकड़ लिया और तोड़ डाला। राजकुमार ने दूसरा तीर छोड़ा। सुलोचना ने उसे भी तोड़ डाला। तीसरा···चौथा··· आठवाँ······! सबके सब सुलोचना ने तोड़ डाले। सुलोचना की विजय हुई। सब सहेलियाँ गाने लगीं और आनंद से नृत्य करने लगीं। अपनी पराजय से राजकुमार क्षुब्ध हो उठा। किन्तु मंत्री ने उससे कहा—'कुमार अब क्षुब्ध होना व्यर्थ है। क्योंकि शर्त के अनुसार आपको उससे विवाह करना होगा।'

यह सुनकर राजकुमार शांत हो गया। उसने सुलोचना से कहा—'मैं आज रात्रि को विवाह की बातचीत के लिये तुम्हारे घर आऊँगा। तुम्हारा घर कहाँ है?'

सुलोचना ने पहेलियों के रूप में अपने घर का पता बताया। राजकुमार पहेलियाँ बूझाता चला गया—

१. जहाँ रहे सदा अग्नि जलती
मृत संजीवन होते जहाँ
उस स्थान के पास ही
महल खड़ा है मेरा।

उत्तर—लोहार की दूकान।

२. जिसे देखते ही लोग मोहित हों
और उसके शीशों का छेदन करें
उसके भीतर से चले आओ
सामने ही महल खड़ा मेरा।

उत्तर—फूलों का बगीचा।

३. जिसके कारण तू रुपहरा
और उसे जो करे रुपहरा
उसके स्थान के पास ही
महल खड़ा है मेरा।

उत्तर—धोबी का घर।

४. जिसके खाने से जहर चढ़े
उसको छोड़ूँ प्रवेशद्वार के पास।

उत्तर—मयूर।

५. सोने-सा छोटा एक कुरंग
जो पूँछ से पीये पानी
उसे रखूँ द्वार के पास।

उत्तर—दीपक।

६. मुँह से बोले मधुर-मधुर, और
जो चतुर के ही वश हो
उसकी ध्वनि सुनके
चले आइयो महल के भीतर।

उत्तर—सारंगी।

राजकुमार सुलोचना से उसकी जाति के संबंध में पूछता है। सुलोचना उत्तर देती है—

७. अठारहों जातियों में जो है रंक
और जिसकी बुद्धि से चलता—
है, राज तुम्हारे पिताजी का !

उत्तर—बनिया।

राजकुमार सुंदरी से उसके पिता का नाम पूछता है। सुंदरी उत्तर देती है—

८. आपके पास अमूल्य दो चीजें हैं
और जो चीज जल में पैदा हो
दोनों को इकट्ठा करो
मेरे पिता का है वही नाम

उत्तर—नैन कमल।

रात्रि होते ही राजकुमार सुलोचना के घर गया। अति रूपवान कुमार को देखकर सुलोचना ने उससे कहा—'हम इसी समय विवाह कर लें।' राजकुमार ने उत्तर दिया—'सुंदरी इस प्रकार छिपकर विवाह करना हमारे लिये हितकर नहीं होगा। कल प्रात: लाखों लोगों की उपस्थिति में हम विवाह करेंगे।' सुलोचना ने इसके लिए सहमति प्रकट की। राजकुमार रात भर सुलोचना के घर ही सोया।

रात में एक और घटना घटी। चंपकसेन राजा ने किसी कारणवश रात को राज-सभा बुलाई जहाँ से संगीत ध्वनियाँ प्रसारित होने लगीं। वारांगनाएँ शुद्ध शास्त्रीय नृत्य करने लगीं। विद्वान् ज्ञानगोष्ठी करने लगे। इतने में नगर में कोलाहल हुआ। कुछ देर के बाद दो आदमी दौड़ते हुए राजसभा में आ पहुँचे। राजा ने उनसे पूछा कि नगर में कोलाहल क्यों हो रहा है ? उन आदमियों ने उत्तर दिया—'नगर में दो शेर आ गए हैं। वे आदमियों को मारे डालते हैं।' यह सुनकर राजा खड़ा हो गया और हथियार लेकर राज-सभा से बाहर आया। लशकर भी तैयार हो गया। राजा ने सारे नगर में ढिंढ़ोरा पिटवा दिया कि सब जवान तैयार होकर राजा के लशकर में शामिल हो जावें ! राजा के उस निर्णय से मंत्री दु:खी हुआ। उसने राजा से कहा—'ऐसा हुक्म कभी नहीं देना चाहिये। क्योंकि आपका राजकुमार ही यदि किसी कारणवश लशकर में शामिल नहीं हो सकेगा तो स्वयं आपके ही हाथों उसे दंडित होना पड़ेगा।' राजा ने कहा—'राज-हित के लिये सबकी सहायता आवश्यक है। मैं अपनी आज्ञा का पालन ही चाहता हूँ।'

बहुत प्रयत्न के बाद शेरों का नाश हुआ। राजा लशकर सहित वापिस लौटा। नगर के समीप जाकर राजा ने देखा कि राजकुमार फौज में शामिल नहीं था ! वह तुरंत

कुपित हो उठा। उसी समय आज्ञा दी 'राजकुमार का प्रातः ही वध किया जाय।' यह सुनकर लोग हतप्रभ हो गए। सबके मन में चिंता होने लगी।

सुबह होते ही पुष्पसेन जगा। सुलोचना से मिलकर वह अपने महल में गया। जब वह अपनी माता से मिला तो उसकी माता ने उससे कहा—"कुमार, शेरों का क्या हुआ?"

राजकुमार ने हैरान होकर पूछा—"कैसे शेर?"

रानी ने समझ लिया कि कुँवर रात की घटना से बिलकुल अनभिज्ञ है तो उसन उससे शेर संबधी सारी बातें कहीं। यह सुनकर राजकुमार तुरंत घोड़े पर सवार होकर जंगल की ओर चल पड़ा। कुछ दूर जाकर उसका लशकर से सामना हो गया। राजकुमार ने राजा को प्रणाम किया। किन्तु राजा की आंखों में क्रोध देखकर वह हतप्रभ हो गया और लशकर के पीछे चला गया।

राजमहल में आकर राजा ने राजकुमार को बुलाया और पूछा—'रात्रि को तुम कहाँ थे?'

राजकुमार ने तथ्य को छिपाते हुए कहा—'पिताजी, जो होना था, हो गया। अब आप जो दण्ड चाहें मुझे दे सकते हैं।' यह सुनकर राजा ने मंत्री से कहा—'जाओ, इस नालायक राजकुमार का सिर काट डालो। मैं इसका मुँह तक नहीं देखना चाहता हूँ। साथ-साथ यह भी कहे देता हूँ कि राजकुमार की ओर से दलीलें करने वालों का भी यही हाल होगा!'

राजा की उस आज्ञा का रानी को पता चला। वह अति कुपित हो उठी। अपनी सात सौ सहेलियों को लेकर वह खुली तलवार के साथ राजसभा में राजा के सामने जा डटी। उसने राजा से प्रार्थना की—'महाराज! आप अपनी आज्ञा वापिस ले लें, क्योंकि वह हमारा इकलौता राजकुमार है। उसकी मृत्यु के बाद हमारी क्या हालत होगी? अगर आप राजकुमार को जीवित नहीं रखेंगे तो हम ७०१ नारियाँ यहाँ आत्मघात कर लेंगी। आपको बाल और स्त्री दोनों हत्याओं का पाप लगेगा।

राजा ने यह सुनकर मंत्री से कहा—'राज पंडित को बुलाने की व्यवस्था करो।' राज पंडित आये। राजा ने उनसे कहा—'विप्रवर! शास्त्रों के आधार पर कोई ऐसा मार्ग खोज निकालिये कि जिससे मेरी आज्ञा भंग न हो और राजकुमार जीवित रह जाय।' पंडित ने कुछ सोचा, फिर कहा—'राजकुमार को बारह साल का बनवास दे दीजिए।'

पुष्पसेन वनवास के लिये तैयार हुआ। अपना धनुष लेकर वह घोड़े पर सवार हुआ। वनवास के लिए जाने से पूर्व वह राजा को प्रणाम करने गया। राजा को प्रणाम करके वह वहीं खड़ा रहा। राजा के समीप ही मंत्री बैठा था। मंत्री ने राजा से कहा—'महाराज! आपकी आज्ञा तो भंग नहीं हुई किन्तु वनवास जाने के कारण राजकुमार का एक वचन भंग हो रहा है।'

यह सुनकर राजा ने कहा—'अर्थात् ?'

मंत्री ने राजा को राजकुमार और सुलोचना की प्रेम संबंधी सारी बातें कह सुनाईं। इनको सुनकर राजा ने तुरंत नैनकमल को बुलाया। नैनकमल की सहमति के बाद सुलोचना तथा राजकुमार का विवाह कर दिया। शादी के दूसरे ही दिन राजकुमार वन जाने के लिए तैयार हुआ। वह पुनः राजा को प्रणाम करने गया। राजा ने उससे कहा—'यदि तू मेरा सच्चा राजकुँवर है तो वनवास के लिये अकेला ही जाना।' कुमार ने जवाब दिया—'मैं किसी को साथ में नहीं ले जाता हूं। केवल मेरा घोड़ा ही मेरे साथ रहेगा।' राजा के बाद वह अपनी माता से मिलने गया। और आखिर सुलोचना की अनुमति के लिये उसके पास पहुँचा। सुलोचना ने भीगी आँखों पति को बिदा करते हुए कहा—'मैं आपकी पूरे बारह साल राह देखती रहूँगी। बारह साल पूरा होने के दूसरे दिन आप मेरे सामने उपस्थित नहीं हो सकेंगे तो मैं उसी दिन आत्मघात कर लूँगी। क्योंकि प्रोषितपतिका नारी की हमारे समाज में क्या हालत होती है, यह आप अच्छी तरह से जानते हैं।"

पुष्पसेन वन के मार्ग पर आगे बढ़ने लगा। वन में कुछ दूर जाते उसकी एक यक्षिणी से भेंट हो गई। उसके हाथ लम्बे और मोटे थे। बाल भूरे थे। आँखें बड़ीं और भयंकर थीं। यक्षिणी ने राजकुमार से कहा—"मैं तुझे और तेरे घोड़े को खा जाना चाहती हूँ।" यह सुन कर राजकुमार ने उत्तर दिया—"मैं तो दुःखी आदमी हूँ। विपत्ति से कभी नहीं डरता हूँ।" यह सुनकर यक्षिणी प्रसन्न हो गई। उसने प्रसन्न वदन से राजकुमार से कहा—"राजकुमार, जब तुम किसी कठिनाई में हो तो मेरा स्मरण करना। तुम्हारा काम हो जायेगा।" यह कह कर यक्षिणी अंतर्धान हो गई।

कई दिन के बाद राजकुमार एक नगर में पहुँचा। वहाँ कुंतीभोज नामक राजा राज्य करता था। पुष्पसेन कुंतीभोज की राज सभा में गया। वहाँ पाँच सौ सुंदर वारांगनाएँ नृत्य करती थीं। पाँच सौ विद्वान् विचार गोष्ठी में भाग ले रहे थे। राजा के एक ओर धनराज नामक मंत्री बैठा था, और दूसरी ओर राजकुमार बैठा हुआ था। राजकुमार के आगमन के कारण कुंतीभोज अत्यंत प्रसन्न हुआ। उसने उससे पूछा—'आप कहाँ से आ रहे हैं? आपके पिता का क्या नाम है?'

पुष्पसेन ने उत्तर दिया—'मेरे देश का नाम है पृथिवी। और मेरे पिता का नाम है ईश्वर!' कुंतीभोज यह उत्तर सुनकर दंग रह गया। सब विद्वान भी हैरान हो उठे। राजा ने कहा—'तुम्हारे उत्तर से मैं अत्यंत प्रसन्न हुआ। आप यहाँ आनन्द से रहें।'

कुंतीभोज के पद्मावती नामक सोलह वर्ष की सुन्दर राजकुमारी थी। उसका चंद्र-सा मुँह था। हिरन की आँखों से उसके दोनों नयन थे। एक दिन उसकी सहेली सुलेखा ने उससे कहा—'हे सहेली, हमारी राजसभा में एक राजकुमार बैठता है। वह अति सुन्दर राजकुमार आपका पति होने योग्य है।' यह कहकर दोनों हँसने लगीं। कुछ देर के बाद पद्मावती ने कहा—'सखि, उस राजकुमार को मैं देखना चाहती हूँ।

दूसरे दिन तड़के ही दोनों राजकुमार के दर्शनार्थ अपने महल के झरोखे में जा बैठीं। पुष्पसेन स्नान करके घोड़े पर सवार होकर नगर में प्रवेश करता था। दोनों ने राजकुमार को देख लिया। बहुत सोचविचार के बाद पद्मावती ने अपनी सखी से कहा—

'बहिन, चाहे जो उपाय करो किन्तु उस राजकुमार को मेरे पास बुला लाओ। उसके बिना मुझसे नहीं रहा जाता है। साथ साथ में उसकी चतुराई की भी परीक्षा करना चाहती हूँ।'

सुलेखा किसी युक्ति के द्वारा पुष्पसेन को पद्मावती के पास ले आई। पद्मावती ने राजकुमार से पूछा—'आप कहाँ से आ रहे हैं? आपका नाम क्या है? आपके पिता का नाम क्या है? और आप कौन-सी जाति के हैं? परदेस क्यों आये हुए हैं?'

इतने अधिक प्रश्न सुन कर राजकुमार अचम्भे में पड़ गया। उसने उत्तर दिया—"राजकुमारी प्रश्न पूछने का क्या कारण हो सकता है, निश्चय ही विवाहाकांक्षी ही ऐसे प्रश्न पूछा करते हैं।" यह सुन कर तीनों खिलखिला कर हँस पड़ीं।

फिर पद्मावती ने राजकुमार की चतुराई की परीक्षा के लिये कुछ पहेलियाँ पूछीं। राजकुमार ने उन पहेलियों का ठीक ठीक उत्तर दिया—

१. नारी बोली प्रेमसे आप हैं चतुर सुजान
पाँच 'प' पुरुषको प्यारे, कीजिये उनके बखान।

उत्तर—पान, पगडी, पद्मिनी, परिमल, पोशाक।

२. धन्य धन्य तेरी बुद्धि धन्य हे राजकुमार
पाँच 'क' कामिनी के प्यारे, कीजिये उनके उच्चार।

उत्तर—काजल, कुंकुम, कंचुकी, कंथ, कसुंबा।

३. पाँच 'क' नहीं हैं भुज के पास :
सुजान, वह कौन हैं खास?

उत्तर—कुड (द्वेष), कपट, कुलच्छन, कुजाति, कुनारी।

४. कहते हैं आप : हूँ मैं अकेला
किन्तु हैं तुम्हारे साथ चीजें सात
प्रकट देखती हूँ मैं जिन्हें
कहिये, हैं वे क्या?

उत्तर—तीर, धनुष, तलवार, भाला, घोड़ा, ढाल और चाबुक।

५. पंछी उड़े, मृत्यु हो बैठे जिसकी शाखा पे
शामत आ जाये देखते कहिये, क्या, भूपाल?

उत्तर—तीर।

६. उत्तम कुल में पैदा हुई, बाप का जो बाप--
उसके साथ की शादी : कहिये सज्जन बात !

उत्तर—छाछ, तक्र ।

फिर कुछ पहेलियां राजकुमार ने कहीं । पद्मावती ने उनके उत्तर दिये—

७. शत नर बंधित हुए बंधन से एक नर बना
वह नर तेरे पास है, कहिये राजकुमारी ।

उत्तर—हार ।

८. चलता है पर चरन नहीं, उड़े पर नहीं पंख
चाहे करो प्रसरित न रहे : सब देखत है आंख ।

उत्तर—धूम्र

९. चोंच है पर चिड़िया नहीं, मांजारी मुखश्याम
दो जीभें, नहीं नागिन, उसका है क्या नाम ?

उत्तर--लेखिनी ।

विनोद गोष्ठी के बाद पद्मावती ने राजकुमार से कहा—"स्वामी, चलो भोजन करने ।" यह सुनकर राजकुमार हैरान रह गया । उसने राजकुमारी से पूछा—"आपने किससे विवाह किया है क्योंकि मैं परनारी के साथ अधिक समय तक बातचीत नहीं करता हूँ ।" राजकुमारी ने हँसते हुए कहा—'मैंने मन ही मन आपको वर लिया है । यदि आप विवाह के लिये मना करेंगे तो मैं आत्मघात करलूँगी ।'

राजकुमार ने कहा—"तो बुलाइये ब्राह्मण को, हम गुप्त रीति से विवाह कर लें ।" ब्राह्मण आया । वह पैसों का भूखा था । राजकुमारी से अधिक धन लेकर उसने दोनों का विवाह कर दिया ।

बहुत महीनों के बाद राजाकुंतीभोज को, उस गुप्त विवाह का पता चला । राजकुमारी के महल के चौकीदार ने जाकर राजा से कह दिया कि राजकुमारी ने गुप्त विवाह कर लिया है । दूसरे दिन राजा ने ब्राह्मण को बुलाया । बहुत दक्षिणा देकर पूछा कि राजकुमारी का अभ्यास कहाँ तक आगे बढ़ा है । वह ब्राह्मण राजकुमारी का गुरु भी था । ब्राह्मण ने जवाब दिया—"मैं पिछले छै मास से काशी की यात्रा पर था । इससे मुझे मालूम नहीं है कि कुमारी का अभ्यास कहाँ तक आगे बढ़ गया है ।' राजा ने तुरंत अपने मंत्री को बुलाया । मंत्री से उसने कहा--'जाओ, राजकुमारी से कहो कि मैं उससे मिलने आ रहा हूँ ।......'

राजा राजकुमारी से मिला । बातचीत के मध्य में उसकी यह शंका दृढ़ हो गई कि राजकुमारी ने राजकुमार के साथ गुप्त लग्न कर ली है । राजा ने राजकुमारी के

इर्दगिर्द विश्वासपात्र आदमियों का कड़ा पहरा लगा दिया । राजकुमारी के प्रत्येक कार्यकलाप पर दृष्टि रखी जाने लगी । फिर भी राजकुमारी ने अपनी एक विश्वासपात्र दासी के द्वारा राजकुमार को एक संदेसा भेजा : 'आप शीघ्रातिशीघ्र इस नगरी को छोड़ जाइये । क्यों कि हमारी गुप्त लग्न की बात मेरे पिता जी को मालूम हो चुकी है । कुपित हो कर वह आपका वध करवा डालेंगें । ......'

राजकुमारने हिम्मत से उत्तर दिया—'भय के कारण मैं तुम्हें त्याग कर चला जाऊँ तो मुझे धिक्कार है ।' वह दूसरे दिन भी प्रति दिन की भांति राजसभा में उपस्थित हुआ ।

राजाने मंत्री से एकान्त में कहा "मंत्री, राजकुमार को किसी बहाने जंगल में ले जाओ । जंगल में चार चांडालों को भी उसकी हत्या के लिये तैयार रखो । जब राजकुमार जंगल मे पहुँचे तो अप्रत्याशित वारों के द्वारा उसकी हत्या करवा डालो !" मंत्री ने राजा की आज्ञानुसार चार चांडालों को जंगल में भेज दिया । राजकुमार और स्वयं भी जंगल में पहुँचे । उस समय रात्रि हो चली थी । पृथ्वी पर अंधकार छाया हुआ था । उस भयंकरता में यह भयंकर हत्या होने जा रहा था । किन्तु किसी कारणवश मंत्री का हृदय बदल गया । उसने चांडालों से कहा—राजकुमार की हत्या नहीं करनी चाहिये । क्योंकि आखिर वह राजकुमारी का पति है । लो ये मुद्राएँ और यों ही चले जाओ । किसी मृगके दो लोचन ले जाकर राजा को दिखा देना । चांडाल और मंत्री चले गये ।

राजकुमार जंगल की भयंकरता में बिना भय के खड़ा हुआ था । इतने में पद्मावती की भेजी हुई एक वारांगना चंद्रावलि वहाँ जा पहुँची । चंद्रावलि राजकुमार को अपने घर ले गई । राजकुमार वहाँ दिन बिताने लगा ।

राजा एक दिन अपनी रानी से कहने लगा—'रानी, तुम जाकर राजकुमारी को कुछ शिक्षा दो । क्योंकि गुप्त विवाह करके उसने हमारी इज्जत को बट्टा लगाया है !' रानी राजकुमारी के पास गई । उसने राजकुमारी को समझाया । किन्तु यह सुनकर राजकुमारी फूट-फूट कर रोने लगी और कहने लगी 'मेरे पिताजीने अपने जामाता का ही वध कराकर बड़ा पाप किया है···उन्होंने···'

एक दिन कुंतीभोज राजा अपन मंत्री के साथ बैठे हुए राजपंडित से चर्चा कर रहे थे कि राजकुमारी की जन्मकुण्डली के अनुसार उसका किसके साथ लग्न कर देना चाहिये । इतने में एक दास ने आकर कहा कि एक वारांगना आपसे मिलना चाहती है । राजाने वारांगना को प्रवेश की अनुमति दी ।

चंपक देश की एक सोलह वर्ष की वारांगना ने नृत्य करते हुए ही प्रवेश किया । शुद्ध नृत्य की भंगिमासे उसका अंग-अंग बल खा रहा था ! उसे देख कर राजा दंग रह गये ।

राजसभा में भी उसका नृत्य हुआ । अनेक लोग उसके शुद्ध नृत्य को देखने के लिये आए । नृत्य के बाद राजा प्रसन्न हुआ । उसने लाखों स्वर्ण मुद्राएँ वारांगना को

भेंट की और कहा—'आपके नृत्यको देखकर हम को बहुत प्रसन्नता हुई है। आप कुछ दिनों के लिये यहाँ ठहरें।'

वारांगना नीचा मुँह करके मूक ही ही खड़ी रही।

राजाने यह देखकर पूछा—'आप मूक क्यों खड़ी हैं?'

'आपकी राजसभा में मुझे किसी चतुर पुरुष के दर्शन नहीं होते हैं। यही कारण है कि मेरा दिल यहाँ ठहरने के लिये राजी नहीं होता है।'

'आप बहुत राज्यों में घूमती रहती हैं तो कृपया बताइये कि कौन से राजा का राजकुमार आपकी दृष्टि में चतुर है' राजाने पूछा।

वारांगना ने यह सुनकर पुन: नृत्य आरम्भ किया। मानो उस राजकुमार की स्मृति उठते ही वह आनंदित हो उठी हो और नाचने लगी हो। नृत्य के बाद उसने कहा—'हे नृप, चम्पावती नगरी के राजा चंपकसेन का राजकुमार पुष्पसेन सभी राजकुमारों में अधिक चतुर है।' यह सुनकर राजाने मन ही मन निर्णय कर लिया कि मैं अपनी राजकुमारी का विवाह सजधज के साथ उससे ही करूँगा।

वारांगना दो दिन ठहरी। तीसरे दिन बड़ी सुबह वह अपने नगर की ओर चल पड़ी। राजाने एक भाट को बुलाया, और उससे कहा—'तुम उस वारांगना के साथ चंपावती जाओ और वहाँ के राजा चंपकसेन से कहो कि राजा कुन्तीभोज आपके राजकुमार पुष्पसेन के साथ अपनी राजकुमारी का लग्न करना चाहते हैं।'

राजा की यह बात वारांगना चंद्रावलि ने सुनली वह तुरन्त बोल उठी—'हे नृप! पुष्पसेन को मैं यहाँ उपस्थित कर सकती हूँ!'

'तो मैं तुम्हारा बड़ा आभारी होऊँगा।' राजाने उत्तर दिया।

चंद्रावलि ने कहा—'हे नृप! कुछ दिनों पूर्व आपने जिस राजकुमार का वध कराया था वही राजकुमार पुष्पसेन था!' यह सुनकर राजा बेहोश हो गया। होश आते ही वह पागल की भाँति चिल्लाने लगा—'मैंने अपने हाथों ही सगे जामाता का वध कराया। मैं राजा नहीं हूँ...चांडाल हूँ...राक्षस हूँ!'

राजा का पछतावा देखकर चंद्रावलि ने कहा—'नृप, चिंता मत कीजिए। पुष्पसेन आज भी जीवित हैं। मैं उसे यहाँ हाजिर कर सकती हूँ।' यह सुनकर राजा की प्रसन्नता का पार न रहा। राजाने सज-धज के साथ चंद्रावलि के घर से पुष्पसेन को अपने महल में बुलाया। यह देखकर पद्मावती भी अति आनंदित हुई।

राजाने पुष्पसेन से पद्मावती का विवाह कर दिया। मिलन की प्रथम रात्रि को पद्मावती ने विनोदार्थ पुष्पसेन से कुछ पहेलियाँ पूछीं। राजकुमारने उनके उत्तर दिये—

१. लाल वस्तु की करो प्रशस्ति;
आप हैं विद्यापति!

उत्तर—पावोंकी पैनी लाल, लाल अधर प्रवाल;
लाल रंग मजीठका, शुककी चोंच है लाल ।
२. श्याम, नील, और पीत तथा श्वेत वस्तुका करो बखान;
कहिये इतना कंथजी, आप हैं चतुर सुजान ।
उत्तर—श्याम है आँखकी कीकी, श्याम भ्रमर है सुभग;
श्याम अंजन आंखका, श्याम है जुड़ा, नाग ।
नीली पहनी कंचुकी, नील कमलका फूल है नीला;
कुंकुम चुटियों के साथ नीला गुदना है अमूल्य ।
पीला स्वर्ण शोभित, पीला केसरका त्रिपुंड;
पीला पीतांबर शोभित देखत उपजत मोह ।
श्वेत नयनद्वय शोभित श्वेत शशी-सा मुख;
श्वेत हार मोतियोंका, देखत उपजे सुख !
३. बंधे तंतुमे सधा नर, वैसे नर हैं चार;
यह कहो मुंज रायजी, बनी उनकी एक नारी !
उत्तर—चोरी !

दोनों आनंद से रहने लगे ।

एक दिन पुष्पसेन चिंतातुर बैठा हुआ था । उसे अपने माता-पिता की स्मृति हो आई । सुलोचना की भी याद आ गई । उसी दिन उसके वनवास के ग्यारह वर्ष पूरे होते थे । इतने में पद्मावती ने आकर पीछे से उसकी आँखें बंद कर लीं । हररोज़ तो ऐसे प्रसंग पर पुष्पसेन पद्मावती के दोनों हाथ पकड़ कर उसे अपनी गोद में सुला लिया करता था । किन्तु आज उसने कुपित होकर उसके हाथ जोरसे अपनी आंखों से अलग कर दिये । पद्मावती हैरान हो उठी । कुछ देर के बाद वह समझ गई कि राजकुमार आज किसी चिंता में मग्न हैं । उसने प्रेम से पूछा: 'हे स्वामी, आज आप चिंतातुर क्यों हैं ?'

पुष्पसेन ने कहा—'मुझे अपने माता-पिता की याद आ गई है !' इतने में चंद्रावलि वहां आ पहुंची । पद्मावती ने चंद्रावलि से कहा—'चंद्रावलि, तुम चंपावती नगरी में जाओ । वहाँ चंपकसेन राजा हैं । वह अपने पुत्र की विरह वेदना से दुःखी हैं या नहीं—यह देख आओ ।'

चंद्रावलि चंपावती पहुंची । मंत्री के पास आकर उसने नृत्य किया । नृत्य के बाद उसने कहा—'आपके राजा आनंद से हैं न ?' यह सुनकर मंत्री दुःखी हुआ और बोला—'राजा आनंद में नहीं हैं क्योंकि उनका इकलौता राजकुमार वन को गया हुआ है ।'

---

१. मडपके चारों स्तंभों क बीच लग्न के समय रची जाने वाली एक क्रिया ।

'मैं पुष्पसेन को आपके सामने उपस्थित कर सकती हूँ ।' चंद्रावलि ने कहा । 'तो आपका बड़ा ही उपकार होगा ।' मंत्रीने कहा । मंत्री चंद्रावलिको राजा के पास ले गया । राजा भी अति उल्लसित हो उठा । कहा--'आप पुष्पसेन को शीघ्र ही मेरे सामने उपस्थित करो । मैं तुम्हें प्रचुर भेंट दूँगा ।'

चंद्रावलि और चंपकसेन के मंत्री दोनों कुंतलपुर की ओर रवाना हुए । वहां पहुंचकर मंत्रीने कुंतीभोज से कहा--'पुष्पसेन के बिना चंपकसेन दुःखी हैं । कृपया नये युग्म को घर की ओर रवाना करें ।'···

कुंतीभोज मंत्री की बात सुनकर बहुत प्रसन्न हुआ । उस दिन राज भर में आनंद मनाया गया । वारांगनाओं ने शुद्ध नृत्य किए, गायकों ने बसंत राग गाया और चारों ओर आनंद उमड़ पड़ा ।

पुष्पसेन पद्मावती और मंत्री तीनों चंपावती पहुंचे । वहाँ भी आनंद मनाया जान लगा । सारे नगरने उनका सज-धज के साथ स्वागत किया । वृद्ध राजा-रानी की वृद्धावस्था कई साल कम हो गई ।

पुष्पसेन, पद्मावती और सुलोचना एक महल में रहने लगे । दोनों बहिनों के बीच अति प्रेम हो गया । दोनों प्रतिदिन आपस में विनोदार्थ पहेलियाँ पूछती थीं ।

१. एक नारी है विश्वमें, सबको देती त्रास,
आठ मास गुप्त रहे, आनंदित है चार मास ।
उत्तर--सर्दी । ठंड !

२. एक नारी संसार में, राय-रंक के घर जाये;
जिस पर करुणा करे मृतक-सा हो जाये ।
उत्तर--नींद ।

३. नारी एक नौ खंडों में, लगती है सबके अंग;
सबलको निर्बल करे, करे रंग में भंग ।
उत्तर--भूख ।

तीनों आनंद से रहते हुए दिन बिताने लगे ।

यह कथा कवि शामल भट्टने संवत् १७४४ के माघ महीने की शुक्ल पक्ष की पंचमी और मंगल के दिन प्रचंड बुद्धि और चतुराई से पूरी की ।

श्री शान्ति आँकड़ियाकर

टिप्पणी--२

# क्या श्रीपत्तन नरहड़ है ?

'भारतीय साहित्य' के जनवरी ५७ के अंक में श्री पतराम गौड़ का 'सिद्ध पट्टण' के सम्बन्ध में 'हरिदास और जैनग्रन्थ' नामक लेख प्रकाशित हुआ है। यह बहुत ही भ्रामक है। नरहड़ के संबंध में उनका एक लेख 'मरु भारती' वर्ष ४ अंक ३ में प्रकाशित हुआ था। उसके सबंध में भी मैंने अपने विचार प्रकाशित कराए थे जिसमें मैंने युग-प्रधान गुर्वावली में प्राप्त नरहड़, संस्कृत रूप नरभट्ट के उल्लेख भी अपने लेख में सम्मिलित किये थे। यहाँ इतना कहना पर्याप्त होगा कि गौड़ जी ने निरंजनी हरिदास जी की वाणी से जो तथ्य निकाला है वह सर्वथा भ्रामक है और सिधापन को सिद्धपट्टण का अपभ्रंश व पर्यायवाची तथा तन पाटण से नरहड़ का संबंध, सिधापन का छोटा रूप सिधड़, नरभट्ट को कोई सौभट्ट लिखता है जिसका अपभ्रंश सौहड़ वाणी में प्रयुक्त हुआ है' इत्यादि बातें केवल लेखक का आग्रह मात्र है। किसी प्रकार लेखक की ऐसी धारणा बन गई है कि जिन तत्त्वों का परस्पर कोई संबंध नहीं, उनको भी येनकेनप्रकारेण जोड़ने की चेष्टा की है। मुझे यहाँ केवल एक ही भ्रामक तथ्य पर प्रकाश डालना है जो कि जैन ग्रन्थों से सम्बधित है। उन्होंने लिखा है कि "श्रीपत्तन शब्द नरहड़ के लिए जैन यत्तियों ने प्रयुक्त किया है, अणहिलपुरपाटण के लिए केवल पाटण शब्द ही।" वास्तव में उनकी यह धारणा सर्वथा गलत है। जैन ग्रन्थों में गुजरात के उस अणहिलपुरपाटण के लिए "श्रीपत्तन" शब्द का उपयोग अनेक स्थानों में किया गया है जब कि 'नरभट्ट' के लिए 'श्रीपत्तन' शब्द का प्रयोग कहीं भी नहीं हुआ। युगप्रधानाचार्य गुर्वावली म नरहड़ के लिए नरभट्ट शब्द चार बार प्रयुक्त है, उसी ग्रन्थ में गुजरात के अणहिल्ल पुरपत्तन के लिए कई बार पत्तन और श्रीपत्तन दोनो शब्द प्रयुक्त हैं। इनमें से यहाँ केवल दो ही उदाहरण देता हूं इनमें गुजरात प्रदेश का भी साथ ही में नाम आता है।

१. "श्री गूर्जरत्रा मुकुट कल्पे श्रीपत्तने" श्री विवेकसमुद्र-महोपाध्यायानां पार्श्वे लक्षण-तर्क-साहित्यालंकार-ज्योतिष्क-स्वसमय-पर समयसारनिष्कनिष्कषण निकषोपमे समग्राचार्य गुणालंकृत मात्रस्य स्वशिष्य रत्नस्य पंडितराजराजचन्द्रस्य समाकारणाय प्रेषितौ।

यु० गुर्वावली पृ० ६४-६५

२. "श्री भीम पल्लयां श्री वायडेच श्री महावीर देव यात्रा च गुरूतरप्रभावना पूर्व निर्माय, ज्येष्ठवदि चतुर्दश्यां श्री गुर्जरत्रामुकुट कल्पे प्रभूतम्लेच्छ व्यावहारिक समूह संकुले श्रीपत्तने महाराजाधिराज सैन्यलीलां दधान आवासितः।"

३. पाटण संघवी पाड़ा द्वयाश्रय काव्य की लेखन प्रशस्ति।

संवत् १३३५ वर्षे श्रावण शुदि १५ सोमेऽद्येह श्रीपत्तने श्रीसारंगदेव राज (ज्ये) द्वयाश्रयमहाकाव्यं ठ० लाषणेन लिखितं।

ये सारंगदे बघेला वंश के थे और गुजराज के पाटन के राजा थे। उस अणहिल्ल पाटण के लिए ही यहाँ श्रीपत्तन शब्द प्रयुक्त हुआ, यह निश्चित है।

४. एक चौथा महत्त्वपूर्ण उल्लेख सं० १२६५ में रचित पूर्णभद्रगणि के ग्रन्थ शालिभद्रचरित्र की प्रशस्ति का नीचे दिया जा रहा है—

श्रीमन्गूर्जरभूमि भूषणमणौ श्रीपत्तने पत्तने।
श्री मदुर्लभराजराजपुरतो, पश्चैत्यवासिद्विपान।

इसमें गुजरात भूमि के भूषण व मणि सदृश्य "श्रीपत्तन" नाम के शहर में दुर्लभराजा के समक्ष चैत्यवासियों से विजय प्राप्त करने का उल्लेख है। यह दुर्लभराज अणहिलपुरपत्तन के ही नरेश थे।

प्रमाण और भी अनेक दिये जा सकते हैं पर ऊपर दिये गये प्रमाणों में गुजरात प्रदेश के अणहिल्लराज पुरपत्तन के लिए "श्रीपत्तन" शब्द का स्पष्ट प्रयोग हुआ है। अतः इन तीन प्रमाणों से ही भली भाँति सिद्ध हो जाता है कि श्रीपत्तन नरभट्ट नहीं हैं।

जिनप्रभुसूरिजी के सम्राट के साथ जाने का जो उल्लेख है उसमें भी "गुर्जरधरित्रीं प्रति" चलने और पाटण होकर सौराष्ट्र जाने का जो उल्लेख है वह नरहड़ के लिए नहीं। तपागच्छ के सोमप्रभसूरि नरहड़ कभी नहीं आए थे। वहाँ तपगच्छ के प्रभाव होने का एक भी उल्लेख कहीं नहीं मिलता। जब कि गुजरात के पाटण में उनके जाने या ठहरने एवं प्रभाव के अनेक प्रमाण हैं। लेखक को यह भी विदित नहीं कि पाटण पहले आता है या सौराष्ट्र। वास्तव में गुजराज के पाटण से होते हुए ही सौराष्ट्र जाने का रास्ता है। इसलिए उनकी सारी अन्य कल्पनाएं मिथ्या हैं। मुनि जिनविजय जी जैसे पुरातत्वाचार्य ने "श्रीपत्तन" को गुजरात वाला पाटन माना है उसे भी आपने ठीक नहीं समझा है।

जब श्रीपत्तन गुजरात के पाटण के लिए प्रयुक्त है नरभट्ट के लिए नहीं, तब उसके आस-पास के स्थान भी गुजरात के पाटण से ही सम्बन्धित हैं यह स्वतः सिद्ध हो जाता

है। अतः गौड़ जी ने जो उन स्थानों की संगति नरहड़ से बैठाने का बौद्धिक द्राविड़ी प्राणायाम किया है वह असफल ही माना जाना चाहिए।

मैंने अपने मरुभारती में प्रकाशित लेख में भी स्पष्टीकरण किया था कि नरहड़ शिलालेख को वह ठीक से नहीं पढ़ सके। अतएव उसके आधार से निकाले हुए नहीं निष्कर्ष भ्रमपूर्ण हैं। जब उस शिलालेख की अधूरी छाप मेरे अवलोकन में आई तो शुद्ध पाठ इस प्रकार मिला—

"संवत १२१५ मार्ग्रवदि १५ शनौ नैगमान्वय कायस्थ (स्छ ?) ठकुर श्री श्रीचंद्र सुत वील्हण पुत्र ताल्हण स्वर्ग लोके गयः (तः)।"

"परमभट्टारक महाराजाधिराज परमेश्वर श्रीमद्विग्रहराजदेव राज्ये० (सो)म देन निजभातृ पुःनार्थे (देहा) कारयित शुभं भवतु।"

श्री अगरचंद नाहटा

# विद्यापीठ-संग्रहालय के हस्तलिखित ग्रन्थों का विवरण

( १ )

**अवतार चरित्र** [सं० क्रम संख्या ४६]

| | | | |
|---|---|---|---|
| ग्रंथ नाम, | अवतार चरित्र | भाषा, | अवधी मिश्रित व्रज |
| ग्रंथकार का नाम, | बारहट नरहरिदास | लिपि, | नागरी |
| ग्रंथकार का स्थान, | जोधपुर [?] | अक्षरों की माँप, | ३/८" |
| पत्र संख्या, | १७७ | पूर्ण, | पूर्ण |
| आकार (माँप) | १३" × ११" | अपूर्ण | × |
| पंक्ति संख्या, | ३० | दशा, | जीर्ण |
| परिमाण (अनुष्टुप छंद में), | ५०२१० | लिपिकाल, | सं० १८१३ = १७५६ ई० |
| ग्रंथ का कागज, | पुराना देशी | रचनाकाल | + |
| सचित्र या अचित्र, | अचित्र | लिपिकार का नाम, | पंन्यास गोकलसागर |
| चित्र संख्या (रंगीन, सादे) | × | प्राप्ति स्थान, | हिन्दी विद्यापीठ आगरा |
| विषय, | राम कथा | | |
| गद्य-पद्य, | पद्य, | | |

**ग्रन्थ का प्रारम्भिक अंश**

ॐ श्री रामोजयतिः ।। अथ श्री रामायन बालकंड आरंभते ।।

गाथा:

आरंभ अग्रेसं वदन सिंदुर अरुन विथरीयं ।
बाहन आषु विचत्रं वरदाता बुधि लंबोदरं ।।१
स्वेत गिरवास सकला स्वेत वसनाय विमला ससिबदनी ।
हंस रथ वीना हसता सद विद्यादानि सरस्वती ।।२
मुल सकति महमाया ज्वालानना जोति जालया ।
नगर कोटि निवा निवासं जग जोती वंदि जननी ।।३
सहस करंस प्रहासं उदितं असुर नास तम अषिलं ।
प्रतिमा अक्षय पुरुषं भय हंता देव भासकरं ।।५

अथ संकर स्तुति सेवेयो:

वृषभ का वाहन विछावनौ है लोमरिष,
विषई तुचा कौ वास क्रोध कै निकेत है।
आसीविष भूषन भषन विष विधु भाल,
मंगल तिलक सर्व मंगला सहेत है।
विषय विनास वेष रहत विषै ही रत,
सूल, औ कपाल इति संपति समेत है।
देषौ धौ अभूत भूत भूतनाथ एकौ पल,
भजे रीझ मृत्यु ना मानि अमृत्यु पद देत हैं।१
भोही रे भूलि जात भव भोग दै दै भोरही लौ,
भौरी गोरी भवाकै समान भारीयतु है।
रति हो सौ रत्त औ विरत्त सौ विसैष रत्त,
आरत्त पुकार सुनि कै उधारीयतु है।
तप की पवित्रताई तेज की अतुलाई,
पन की पवित्रताई पार पारीयतु है।
कासीनाथ कासी सावकासी हूँ न होत नैक,
हाथी भजै वासो तै विसासी तारीयतु है।२

कवित:

जटा जूट सिर गंग चन्द्रसेषर वष हुत वह।
गर्ल कंठ अहि हार मुंडमाला विष नष हः।
डवरू सूल कपाल पांनि धनुवान प्रकाशित।
बपू विभूत अवधूति सिंघ गज चरम वासित।
वामंग सिवा बाहन वृषभ जयति जयति संकर अमर।
रघुनाथ चरित्र कृत ध्यान हित सुमति देहु दाहक समर।।१

**अथ स्वायंभू मनु तपसा [स्या] प्रसंगः।। कविरूवाच दुहा।।**

याज्ञ बलक मुनि इक समय उर आनंद सहास।
भारद्वाज सों यह कथा कही जु प्रेम प्रकास।।१

कवित:

स्वायंभू मनु समय पाय तप साधन किन्नो ।
पतिवरता सुपुनीत सत्यरूपा संग लिनो ।
जहा नेमषारण्य परम पावन थल पायो ।
धेनमती सरि तासु तीर मनु ध्यान लगायो ।
तब द्वादस अक्षर मंत्र तहाँ जपत निरंतर सम जुगति ।
मन दंपति महा संतोष मिलि भई मूल पल्लव जुगति ।।१
पुनि छोड़े फल मूल पत्र जुग छुधा सु जितिय ।
येक बार आधारि वरष षट सहस जु वितीय ।
बरष लक्ष इक छोड़ि बारि वातासन किन्नौ ।
अयत बरष रहि निराहार तजि पवन सु दिनो ।
इक पाइ रहै ठाढै अवनि असथि मात्र अवसेष तन ।
सोइ उग्र जोग मनु सधयो मिलि सम काइक बाच मन ।।२

मध्य

कवित

जब यौं कहि जुवराज आप बल सबनि उचार्यो ।
दस तै दस दस गुन दिषाइ विक्रम विसतार्यो ।
मिलि सत जोजन मध्य किहु नक्र उर किन्नौ ।
पुनिरागमन प्रसिद्ध दुगम यह उत्तर दिन्नौ ।
इहाँ कोउ न काज साधक भयो बेठि अधोमुषतोलि बल ।
चाहत स भूमि वृत्त चुकर्यो चकित चित्तअति चल विचल ।। १

जामवंत उ० दूहा

जामवंत बोल्यो जरठ पुत्र सुनहु बल पार ।
मम तरुनपन तिहि समय भो बाँमन अवतार ।१
कृत भूव मंडल तीन क्रम वपु बराट विसतार ।
दये प्रदक्षन प्रहर दुव विमल सप्त अक वार ।२
केसव बामन रूप करि जाच्यौ बलि छल जोग ।
विस्व निबाह्यौ बचन वृत पूरन पुन्य प्रयोग ।३
कलपंतर बीति कइक जरा ग्रसित अब जानि ।
वह जु प्रतिमा देह यह हुइ वल बिक्रम हानि ।४

**अंगद**

नीकै ही कूदहुं नीर निधि अंगद भाष्यौ एह।
आवन बनै क नांबनै यह पै जाय संदेह ॥५

छंद घै अषरी ।। जामवंत बाच ।।

वृध रीछ तब समय विचार्यौ। अंगद सो यह बचन उचार्यौ।
नीति निपुन तु अंगद नामी। स्म सुग्रीब सबनि को स्वामी।
जन कै रहत स्वामि जो जांही। निहचै नीति धरम यह नांही।
जामबंत हनुमंतहि जाना। नीति निपुन बल बुद्धि निदाना।
तू हनूत रूद्र अवतारा। बल विक्रम विसर्यौ इहि बारा।
जात मात्र क्रीड़त तू बालक। कृत अभुत राकस कुल घालक।
प्रात समै दिन कर तै पायौ। अरुन सरूप द्रिष्ट तव आयौ।
मन आरक्त पक्व फल मान्यौ। जीय मह भक्ष भूत सो जान्यौ।
महा बेग कूद्यौ तु मारुति। षिस्यौ पंचसत जोजन तै षिति।
पर्यौ भूमि सिसु अतुल पराक्रम। कुदत फिर्यौ जथा कपि कुल क्रम।
इतने बड़े काजक जे आगम। साधि मौन का रहै अवर सम।
स्वामि काज साधक तुम समरथ। कपि जीय राषि जगत राषहु कथ।

कविरु०

हनुमत बाल अवस्था होइ। कहु संतायो तापस कोइ।
देव काज कारक सो देष्यो। बांनर हर अव ता [र] विसेष्यो।
साधु श्राप मारुतिहि सुनावै। अपनौ बल तोहि न सुधि आवै।
जब कोऊ दुजौ समझैहै। यातै बल तोकहुं सुधि अैहै।
सबै पराक्रम भाल सुनायै। इहाँ बल हनूमान सुधि आयै।
हनूमान तब हर्षित होई। सिंघनाद गरज्यौ कपि सोई।
सिध समाधि टरि तिहि सुर संग। अचल डोल भुगोल कंप अंग।
तन बाढ्यौ कनकाचल सौं तहाँ। ज्यों जगदीस विराट देह जहां।
मारुति तबै प्रकास्यो विक्रम। कारन झंप अतुल सजित क्रम।

मारुतिः

चढ़ि महेंद्र गिरवर उच्चारै। स्वामि काज रघुनाथ संभारै।
सुरभी पद जल भर ज्यौं सागर। करि ही मम सिर पर रघुवर कर।

**अंत**

कवित्त

रामचरित्ररसाल अह··············शिव गायो ।
पूछै सिवा सप्रेम सूगम भूतेस सुनायौ ।
लिये सूने नियंक·················। वप्रकासे ।
जनम सहस कीय अकृतजाल निर्मूल सुनासै ।
सोलहै भगति रहस्सुकवि अरु एकोतर उधरै ।
करूनां निधांन रघुनाथको यहे चरित कृत ऊचरै ।। १
धरम रूप अवधेस वदन सप्रसन बिराजित ।
द्रिगनि सुधा स्रावत दयाल सिर छत्र सुभाजित ।
उर आयत आजानु बाहु सोभित सिघासन ।
प्रगट कोटि दिनकर प्रताप मिलि छवि जु मथन मन ।
अंकुर धरम को भौ उदित रह्यो अटकि मन रूप रस ।
काटे ऋक्रम नरहर सुकवि जथा सकति भाष्यो सुजस ।।२
सघन वृंद रजरेन कवन तपत्र गांन करि ।
अकल पंथ किहि कल्यौ धराधर मनुज करहिं धरि ।
अवधि कवन थाहयौ पांनि किहि धरयो प्रभंजन ।
भावतव्य भव भून कठिन दस कीन्हौ काहुन ।
सत कोटि राम संख्या सुजस कवि सकवन पूरन है ।
सुभ लहै मुकति नरहर सु कवि रामचरन हितचित रहै ।।३

दूहा

दस सहस्त्र सत बरष रहै मनुज तन राम ।
तीन लोक उछव अषिल सुरमुनि लहि विश्राम ।

इति श्री चतुर्विसति श्री अवतारचरित्रे भाषा श्री रामायणे महा-मुकति मारगे भाषा बारहट नरहरदासेन बिरचितं श्री उत्तर कांड सातम सपूरण: ।।७।। श्रीरामोजयति ।।संवत् १८१३ वर्षे चैत्र विद १० मंगलवारेण संपूर्ण ।।५।। लिषतं पंन्यास गोकलसागर लिषंति ।। पटेल भागचन्दजी सुत वषता बाचति ।।बाचवा अर्थे लषावितं ।।

ग्रंथ में कांडों के आधार पर इन शीर्षकों से कथा इस प्रकार दी हुई अगले पृष्ठ पर है ।

**बालकांड**

स्वायंभू मनु तपस्या प्रसंग
रावण पूर्व जन्म,
हनुमत उत्पत्ति
वालि सुग्रीव उत्पत्ति
वली मुख भाल उत्पत्ति
राजा दशरथ उत्पत्ति
रानी केकई बरदान
श्रवण तापसवध
अंग देस अनावृष्टि
शृंगी ऋषि आगमन
रामचंद्र जन्म
सीता जन्म
विश्वामित्र आगमन
ताड़का वध
रामचंद्र विश्वामित्र आश्रम आगमन
धनुष यज्ञ
रावण वाण संवाद
शिव धनुष प्रसंग
रामचंद्र बरात, दशरथ मिथिला आगमन
रामचंद्र शाखोच्चार सूर्यबंश वर्णन
जनक बंश वर्णन
विश्वामित्र वर्णन
कुलदेव पूजा निमित्त राम निवास प्रदेश
भार्गव आगमन
रामचंद्र परशुराम संवाद

**अयोध्या कांड**

नारद आगमन
राम युवराजतिलक
कद्रू विनता प्रसंग
रामतिलकविघनोपदेस
राम लक्ष्मन संवाद
वामदेव पुरजन प्रति उपदेस
राम वनवास गुह समागम
बाल्मीक आश्रम आगमन
वाल्मीक पूर्वप्रसंग
वायस एकाक्ष कृत प्रसंग
मंत्री सुमंत अयोध्या आगमन
राजा दशरथ परलोक प्राप्त
भरत चित्रकूट गमन
राजा जनक आगमन
राम भरतोपदेसन

**बनकांड**

रामचंद्र अत्रि आश्रम आगमन
व्याध वधन
सरभंग आश्रम आगमन
मुनिवृंद समागम राम द्वारा राक्षस वध
पंपासरोवर आगमन
सुतीक्षण आश्रम आगमन
गृद्ध जटायु मिलन
सूपनषा प्रसंग
सीता हरन प्रसंग
जानकी लंका प्रवेश
राम परनसाला आगमन
गृद्ध जटायु समरसज्याथित दरसन
जटायु स्तुति
कबंध प्रसंग
सबरी परलोक प्राप्ति

**किष्किधा कांड**

सुग्रीव राम मिलन
सुग्रीव राम बल प्रतीक्षा
बालि राम संवाद
लछमन तारा प्रबोध
राम प्रवरषनगिरि आगमन
सुग्रीव प्रति दूत प्रेषन
सुग्रीव लछमन प्रति दीनता
जूथप जूथप नाम
सीता सोध कपिगमन

कपि स्वयंप्रभा समागम
पार समूद्र तटे कपिमंत्र बल प्रकासन
संपाती कपि समागम
कपि मंत्र प्रकासन

## सुंदरकांड

सुरसा प्रसंग
मैनाक प्रसंग
मारुती बिभीषन मिलन
मारुती असोक वन आगमन
रावन असोक वन आगमन
त्रिजटा प्रसंग
पूंछ जरावन
अंगदादि मिलन मारुति पुनरागमन
लछमन सीता प्रति संदेह
हनुमत सीता दसावर्नन
राम गवन
विभीषन श्रीराम चरनसरन चिंतवन
विभीषन स्तुति

## युद्धकांड

माल्यवान रावनहि प्रबोध
अंगद वाक्य रामाज्ञा
दूतांगद प्रसंग
रावन मंदोदरी संवाद
सुक दूत उधरन
सुक पूर्व जन्म प्रसंग
लंका विरोधन
हनुमंत अंगद गढ़मध्य युद्ध
अतिकाय अकंपन युद्ध
इंद्रजित जुधागम
धूम्राक्ष अकंपन युद्ध
महोदर मंत्री निति प्रबोधन
इंद्रजीत युद्ध, अमृत मारुति ल्यायै
कपि जीयतव्य प्रसंग
प्रहस्त युद्ध
रावन प्रथम युद्धागम
मेघनाद युद्ध, द्रोणाचल आगमन
इद्रजीत युद्ध
श्री रामप्रलाप
सुमित्रा स्वप्न
हनू द्रोणागिर उधरण
धूम निधूम युद्ध
प्रहस्त युद्ध
राबन पूरव कृत प्रकासन
कुंभकर्ण प्रबोधन
नारद कृत स्तुति
इंद्रजीत वध आगम वर्णन
इंद्रजीत निकुंभिला गूढ़ होम आरंभ
रावन प्रलाप मंदोदरी आगमन
मकराक्ष वध
प्रभंजनी राक्षसी प्रसंग
श्री राम माया मस्तक दर्शन
दूत लोहिताक्ष्य वाक्य
मदोदरी रावन प्रति वाद
रावन गूढ होमादि प्रसंग
रावन मंदोदरी प्रतिज्ञा प्रबोधकरन
रावन गूढ़ कपट होम विध्वंसन
अग्नि वार्णादिक युद्ध
राम वाम दक्षिन भुज संवाद
सीता श्रीराम दर्शन पुनरागमन
सीतापरीक्षा
राम विभीषन दरसान
रामचंद्र विजय रावन वध वर्नन
अयोध्या प्रति गमन
रामचंद्र भरत मिलन प्रसंग
नंदिग्राम आगमन

## उत्तर कांड

राम नाम अधिकार

दानाधिकार
उत्तम दान
त्रिविधि दान प्रकार
नेमित्त नित दान
राम राज्याभिषेक
इंद्रादिक अमर स्तुति
ऋषि स्तुति
दिग्पाल स्तुति
यक्ष स्तुति
पितर स्तुति
उरग स्तुति
शिवग्रथ फल
वीर जय प्रसाद प्राप्त
जूथप जूथ गृह गमन
राम राज्य महिमा प्रताप वर्णन
भरथ प्रश्न श्री राम ज्ञानोपदेश
साध असाध लक्षन
साध असाधु युग्म लक्षन
राम राजनीति धर्म वर्नन
संन्यासी स्वान प्रसंग
द्विजपुत्र जीयतव्य प्रसंग
काक भुसुंडी गरुण प्रसंग
काक भुसुंडी पूर्व प्रसंग
शिवस्तुति
गरुड़ सप्त प्रश्न
मानसिक रोग
औषध
वशिष्ठ आगमन
लवकुश उत्पत्ति
अश्वमेध
लवणासुर वध प्रसंग
काल पुरुष आगमन
लक्ष्मण परित्याग
कौसल्यादि वैकुंठ गमन
सीता महाप्रस्थान
मही प्रस्थान अयोध्या उद्धारण

## टिप्पणी

अवतार चरित्र रामायण के रचयिता बारहट नरहरिदास ने अपना कुछ भी परिचय इस ग्रथ में नहीं दिया है। रचनाकाल भी नहीं दिया है, किन्तु नागरी प्रचारिणी सभा की खोज में सन् १९०२ में इनकी कुछ रचनायें मिली थीं, जिनके आधार पर इनका यह परिचय प्राप्त हुआ था, "बारहट जाति के चारण, टहले गाँव पणना, मेड़ता (जोधपुर) के निवासी, जोधपुर के नरेश महाराज सूरसिंह के आश्रित, ये १७ वीं शताब्दी में वर्तमान थे। इनकी इन रचनाओं का पता अब तक लग चुका है।"[१]

अवतार चरित्र,[२] दशमस्कंध भाषा, अवतार गीता, नरसिंह अवतार कथा, पूर्व प्रसंग, राम चरित्र कथा-काक भुशुंडि गरुड़ संवाद (द्र० रि० ग० ८८, ४८, ४१, ५०, ४९, ज, २१०)

१—हस्तलिखित हिन्दी पुस्तकों का संक्षिप्त विवरण पृ ७५।
२ राजस्थान में हिन्दी के हस्तलिखित ग्रंथों की खोज भा०३. पृ० ३।

एक बार इस ग्रंथ की चर्चा तो हुई पर पता नहीं किस कारण से फिर यह ग्रंथ साहित्य के इतिहासकारों की दृष्टि से ओझल हो गया। स्व० शुक्ल जी ने एवं डा० रामकुमार वर्म्मा आदि ने भी अपने इतिहासों में रामकथा-साहित्य की चर्चा के प्रसंग में इसकी ओर ध्यान नहीं दिया है। इस ग्रंथ का बंधान कथा की दृष्टि से वाल्मीकीय रामायण के अधिक निकट है, कई कथायें जो वाल्मीकीय में सूत्र रूप में हैं उनका इस कवि ने अपनी दृष्टि और कल्पना से विस्तार किया है। उनमें सर्वत्र ऐसी एकरूपता है कि पाठक सहज में यह अनुमान नहीं कर पाएगा कि इस कथानक में मूल कल्पना किसकी और कितनी है।

मूल कथा और अवाँतर कथायें काँडों के अनुसार हैं। कांडों में लाल स्याही से शीर्षक लगा कर कथा विभक्त की गई है। काँडों की समाप्ति के बाद पुष्पिका लगाई गई है। जिसमें कांड की समाप्ति की सूचना देते हुए अगले कांड की भी चर्चा की गई है:—इति श्री पौरुषेय श्रो रामायणो महामुकति मारगेयः श्री अवतार चरीत्रे बारहट नरहरदासेन विरचितं बालकांड प्रथमो संपूर्ण समाप्तः ।।

कथा याज्ञवल्क्य और भारद्वाज के संवाद से आरंभ की गई है "याज्ञवल्क्यमुनि इक समय उर आनंद सहास। भारद्वाज सों यह कथा कही जु प्रेम प्रकास:।" और आरंभ मनु-शतरूपा की तपस्या से किया गया है।

ग्रंथ में निम्नलिखित छंद प्रयोग में आए हैं:—

सवैया, कवित [छप्पय] पद्धरी, दूहा सोरठा, उद्धोर, वेताल, द्व अपरी, कुंडलिया जिस छंद को कवित कहा गया है वह वस्तुत: छप्पय छंद है। जिसमें दो दोहों के बाद एक उल्लाला भी दिया हुआ है।

ग्रंथ के अंत में तीन पत्रों में ३ जन्म पत्रियाँ लिखी हुई हैं। जो क्रमश: संवत् १७१९, १७७८, १८२१ की है। उनमें १ में यादव गोत्रीय पटेल भागचन्द के यहाँ पुत्रोत्पत्ति का उल्लेख है और दूसरे में भागचन्द के पुत्र वषता जी के प्रथम पुत्र का उल्लेख है और तीसरे ने दूसरे पुत्र के जन्म होने का उल्लेख है। ग्रंथ की अंतिम पुष्पिका में लिखा गया है कि यह पुस्तक भागचन्द के पुत्र वषता जो के पढ़ने के लिए लिखी गई है। जिसका लिपिकाल सं० १८१३ है। अर्थात् ये कुंडलियाँ ग्रंथस्वामी के परिवार की हैं जिनमें, बखता जी और उसके दो पुत्रों की जन्मतिथि दी हुई है। इनमें से बषता जी की जन्मकुंडलियाँ तो ग्रंथ पूरा लिख जाने पर कहीं से उतार कर इस में लिखी गयी होंगी। क्योंकि ग्रंथ का लिपिकाल सं० १८१३ है और कुंडलियाँ इससे पूर्व की हैं।

ग्रंथ में दीमक लग जाने से बीच में एक बड़ा छेद हो गया है जिससे ग्रंथ का कुछ अंश नष्ट हो गया है और प्राय: २ पत्रों का अधिक भाग कुछ खंडित होगया है। पर उससे कथाभाग के स्पष्ट होने में कोई विशेष बाधा नहीं पड़ती। लेखन में यत्र तत्र स्खलन हैं जिससे कहीं छंद भंग हो जाता है कहीं भाषा अशुद्ध हो जाती है। वसे लिखावट बड़ी साफ और पक्की है। इस अवतार चरित्र की जितनी प्रतियाँ अब तक

प्राप्त हुई हैं उनमें यह सब से प्राचीन हैं। और इस दृष्टि से यह ग्रंथ रामसाहित्य का एक आवश्यक पूरक है।

ग्रंथ के आरंभ होने से पूर्व एक पत्र में भिन्न स्याही और भिन्न लिखावट में राजस्थानी भाषा में सीता मंदोदरी संवाद लिखा हुआ है जो किसी लोक-कवि की रचना मालूम पड़ती है। यह संवाद १६ कड़ियों में है जिनमें कहीं भी रचयिता का पता निसाँ नहीं मिलता।

( २ )

**महाभारत भीष्मपर्व** **[सं० क्रम सं० ४४]**

| | | | |
|---|---|---|---|
| ग्रंथ नाम | भीष्मपर्व | भाषा | व्रज |
| ग्रंथकार का नाम | भोलानाथ | लिपि | नागरी |
| ग्रंथकार का स्थान | × | अक्षरों की माँप | १/४" |
| पत्र संख्या | २२६ | पूर्ण | पूर्ण |
| आकार (माँप) | १२" × १०१/२" | अपूर्ण | + |
| पंक्ति संख्या | १६ | दशा | उत्तम |
| परिमाण (अनुष्टुप छंद में) | ६७५८ | रचनाकाल | सं० १८३३ = १७७६ ई० |
| ग्रंथ का कागज | देशी बाँसी | लिपि काल | सं० १८८९ = १८३२ ई० |
| सचित्र या अचित्र | अचित्र | लिपिकार का नाम | सूरजमल |
| चित्र संख्या (रंगीन, सादे) | + | प्राप्ति स्थान | हिंदी विद्यापीठ आगरा |
| विषय | इतिहास | | |
| गद्य,—पद्य | पद्य | | |

ग्रंथ का आरंभिक अंश

श्री गणेशायनमः ।।

दोहा

मेघ श्यामल बपुषं सुंदर वदनं विशाल जलजाक्षं।
तडिदंबर वनमालं नंद तनूजं हरिं वंदे ।।१

दोहा

गौरी तनय सरोज से चरन हिये मधि धारि।
विघन हरन सुख के करन मो मन मधुप विहारि ।।२

छप्पै

लसत बाल ससि भाल भव्य सिंदूर विराजत।
झरत मदोदक लुब्ध भौर गुंजत चहुँ छाजत।।
विघन विहंडन नाम चंड दुष दारिद षंडन।
गजमुष गौरी तनय भवन भव अतसिय मंडन।।
गन पति करुनामय अतिसु षद रिद्धि सिद्धि संग मै लसहि।
नित राषि लेत निज भगति कौ सुमुष होत सनमुष जवहि।।३

दोहा

लंबोदर किरपा करौ सिर पै राषो हाथ।
भीषम पर्व कथा करै भाषा भोलानाथ।।४
दशरथ सुत दसकंध रिपु रघुकुल उदय उदार।
सूरज वंस प्रगट कियौ रामचन्द्र अवतार।।५
तिनकें तौ द्वै सुत भये लव औ कुस विख्यात।
कुस के कच्छवाहे भये जिनकी जस अस वात।।६
तिन के कुल परगट भयौ पृथ्वीराज महीप।
दया दान कौ कल्प तर दीपक जंबूदीप।।७
लषी द्वारका गेह मधि दरसे द्वारका नाथ।
भुज दंडन पै छाप दिय आपै हरि निज हाथ।।८
छके रहत हरि ध्यान मधि सुनत कथा सुविवेक।
भक्तराज यह नाम भौ सेवत भूप अनेक।।९
राज कीयो आमेर में अवधिपुरी ज्यौं राम।
रवि सौ जिह परताप नृप सेवत आठौं जाम।।१०

छप्पै

दछिन्नय धरनि अखंड सव्व गव्विय अरि गारिय।
अव्वं खव्वं दियदान पव्वं पग विप्प पषारिय।
भनत सुकवि भुवनाथ सुजस कवि गावत ठट्टिय।
दिस विदिसन धन पूरि भट्ट चारिन हित वट्टिय।
कूरम कुल मंडन कल्पतरु पृथ्वीराज महिप वर।
नित जज्ञ धूम नभ भूमि अति सौरभ सुरभित कीयधर।।११

मध्य

नहीं जुद्ध तैं ते फिरैं कभू औ । वली धर्म लीनै चलै हैं अभू औ ।
परा इंदिरा सौं भरे ते दिषैयें । जहा धर्म है जै तहाँ ही दिषैयै ।।१८
नहीं वध्य ह्वै है रणे ते नरेशा । जयंते लहैंगे न हारैं प्रजेशा ।
सुता तेति दुष्टारु पापिष्ट भारी । सदा निष्ठुरा हीन कर्मातिहारी ।।१९
तिहारैं सही जुद्ध में भूप जानौ । घनै दुष्ट कृत्कर्म ते पुत्र मानौ ।
तिरस्कार ते पुत्र कीनौ घनोई । नरा नीच जैसे कहाँ लौं भनोंई ।।२०
सबै छोंड़ि कै पुत्र ने पाप कीनै । सदा सत्वहीना भये भ्रष्ट हीनै ।
नहीं पंडु के पुत्र ऐसे भयेई । तिन्है मानते ना कभू पुत्र लेई ।।२१
किये पाप कौ भोग लीजे अवै जू । सु आयो महा घोर कीनों तबै जू ।
करो भोग ताको सपुत्रो नरेशा । सुहृत्स्यौं न मान्यौ मनै की विशेसा ।२२
सदा क्षत्तमीषं मनै द्रोण जी कें । तथा मैं मनै कीन द्रोहू सुही कें ।
नहीं चित्त मैं सोधरी तैं कभू जू । हितं वाक्य पथ्यं गदं त्यों अभू जू ।।२३
यथा रोगिया मृत्यु आसन्न होई । भली बात मानै न जानै सु जोई ।
मता पुत्र के पंडु जीते सुमान्यो । सुनै तत्व सो मोहि पूछौ सुजान्यो ।।२४
जये कारणं पाँडवा हीय ल्यावौ । कहौं सो सवै जो सुनी मं सुध्यावौ ।
कही भीषमै सो जु ते पूत पूछी । सबै भाइ जीते भई मेरि छूंछी ।।२५
सुयोधं महाशोक मैं बूडि गोई । निशा के समे भीष्म सौ जानि सोई ।
विनै कीं महा प्राज्ञ सौं सो बषानौ । कही ते सुतं ताहि जानौ सुमानौ ।।२६

अंत

..............................भीषम बोले

जौ नहीं छोड़न जोग है यह वैरु दारूण वीर ।
लरि कर्ण अज्ञा करहुं तुहि हौं स्वर्ग धरि हिय धीर ।।१७
गत मन्युगत संक्षोभ ह्वै कै समर कर्महि लाइ ।
औ यथा शक्ति उत्साह स्यौं ह्वै साधु वृत्त सहाइ ।
हौं तोहिं अज्ञा देत हौं जो चहै सोई होहु ।
जे छत्र धर्म ज लोक ते लहु जिष्णु तै तजि मोहु ।।१८
लरि अहंकारहि छोड़ि कै तै बल पराक्रम पाइ ।
जुध धर्म तै नहि श्रेय औ नृप छत्रियै जिय लाइ ।

नर प्रशम कै किय यत्न वहु मै सत्य व्रत जियधारि ।
नहिं शक्य है यह कर्ण कै संग कही सत्य विचारि ।।१६

संजय बोले

दोहा

गंगासुत ऐसे कह्यौ सुनि दृग आँसू ढारि ।
वंदन कै रथ चढ़ि गयौ तुव सुत ढिग हितकारि ।।२०

| | | | | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|---|---|---|
| जग | अ | नूपलै | वा | सम्रा | प | वहु | दो | लत लहियै |
| ध | नू | धरैग्र | सि | रहिन | हा | फल | ल | मुर तरु गहियै |
| भुव | प | रपरकैव | सिं | स | र | सध्रुव | त | प वल धारहु |
| राज | स | घास्न | ह | स्थग्र | सिं | गहि | सिं | हस मारहु |
| प्रभुव | ह | लसुज | सपु | | | मयौ | ह | ल मह लगा ।। वहरष |

नृप वाघसिंह चहु विदित भुव दिनकर कर कंचन वरष ।
लोचन गुन वसु चंद्र भौ संवत विक्रम नाह ।
भारतसार सुनाम यह प्रगट्यो पुहुमी माह ।।
बाघसिंह षंगार वत कछवाहौ विख्यात ।
रविवंशी रघुनाथ ज्यौं जाको जस अवदात ।।
एक असिय अध्याय भो भीषम पर्व सुगाथ ।
बाघसिंह भुवपाल हित कीनौ भोलानाथ ।।८१

राज्य श्री ठाकुर साहिब श्री सगरामस्यंघ जी तदात्मज ठाकुरा श्री जयमलसिंह जी जीर्णोधार कराई मिति असाढ़ कृष्ण १० सनिवार संमत् १८८६ का ।। दसकत स्योवजीराम तदात्मज सुरजमल का ।।

**टिप्पणी**

**महाभारत (भीष्म पर्व)**

महर्षि व्यास के ग्रंथ महाभारत के भीष्म पर्व का अनुवाद कवि भोलानाथ ने अपने आश्रयदाता राजा बाघसिंह (कछवाहा) के लिए भाषा में सं० १८३३ = १७७६ई

ई० में किया है। इसके पहले अध्याय में कवि ने अपने आश्रयदाता की वंशावली का वर्णन किया है, जो इस प्रकार है:—

रामचन्द्र
- लव
- कुश
  - कछवाहे
  - पृथ्वीराज
  - जगमाल
  - भारामल
  - भापरसी
  - बद्रीदास
  - श्यामसिंह
  - बुद्धिसिंह
  - जयसिंह
  - भावसिंह
  - अनूपसिंह
  - विनयसिंह
  - बाघसिंह

इन्हीं बाघसिंह के बारे में कवि ने लिखा है:—

बाघसिंह भूपाल नै कही जोरि कै हाथ।
भारथ की भाषा करौ कविवर भोलानाथ॥

× × × × ×

भारत की भाषा करों बाघसिंह के हेत।
दूर होइ अज्ञान बहु होइ ज्ञान चित चेत।।
बाघसिंह के हेत किय राजवंश की गाथ।
भयो प्रथम अध्याय यह भाष्यो भोला नाथ।।

बाघसिंह ने आज्ञा देकर संस्कृत से यह अनुवाद प्रस्तुत कराया है। इसके पहले काशिराज महाराज उदितनारायण सिंह के राज्यकाल में गोकुलनाथ के द्वारा एक अनुवाद कराया गया था। इससे पहिले सबलसिंह के अनुवाद को पर्याप्त प्रसिद्ध मिली थी। इन दोनों अनुवादों की अपेक्षा इस अनुवाद में संस्कृत के इन महाभारत के कुछ अध्यायों की उप कथाओं को बड़े अध्यायोंमें सम्मिलित कर दिया गया है। यही कारण है कि संस्कृत महाभारत भीष्म पर्व में ११७ अध्याय और ५८८४ श्लोक हैं। किन्तु इसमें ८१ अध्याय में ही सारी कथायें समाविष्ट कर दी गई हैं।

ग्रंथ के आरंभ के १—७३ पत्र और अंत के ५ पत्र एक लिखावट के हैं, और पत्र ७४ से २२१ पत्र तक दूसरी लिखावट के हैं। ग्रंथ काली स्याही से लिखा गया है। छंदों और प्रकरणों को स्पष्ट करने के लिए लाल रोशनाई का सर्वत्र प्रयोग किया गया है।

ग्रंथ कर्ता ने जहाँ अपने आश्रयदाता की वंशावली वर्णन करने में पूरे एक अध्याय का उपयोग किया है, वहाँ अपने बारे में उसने एक पंक्ति भी नहीं लिखी। केवल अंत में इस दोहे [लोचन गुन वसु चंद्रभौ संवत विक्रम नाह। भारत सार सुनाम यह प्रगटचो पुहुमी माँह] से रचनाकाल सं० १८३३ = १७७६ ई० विदित होता है।

पुष्पिका से यह भी विदित होता है कि इस ग्रंथ का जीर्णोद्धार ठाकुर श्यामसिंह के पुत्र जयमलसिंह ने सूरजमल से कराया। पुष्पिका इस प्रकार हैः—राज्य श्री ठाकुरा साहिब श्री सगरामस्यंघ जी तदात्मज ठाकुरा श्री जयमलहिं जी जीर्णोद्धार कराई मिति असाढ़ कृष्ण १० सनिवार संमत १८८९ का। दसकत स्योबजी राम तदात्मज सूरजमल का।। जैसा कि ऊपर कहा गया है ग्रंथ दो लिखावटों में लिखा है। उसकी भी पुष्टि इसी पुष्पिका से होती है कि संगरामसिंह के पुत्र जयमलसिंह ने इसका जीर्णोद्धार सूरजमल से कराया। तात्पर्य यह कि पूरा ग्रंथ पहले (?) संभवतः संग्रामसिंह के समय में लिखा गया होगा। काल पाकर उसका आदि और अंत का अंश खंडित होगया होगा, उसे संग्रामसिंह के पुत्र जयमल ने सूरजमल से लिखवा कर फिर पूरा कराया। इसीलिए ग्रंथ में दो लिपियाँ स्पष्ट दिखाई देती हैं।

ग्रंथ में निम्नलिखित छंदों का प्रयोग हुआ है—

रसाउला, पद्धरी, मोतीदाम, त्रोटक, नाराच, गीति, लीलावती, पद्मावती, सवैया, दोधक, रोला, कड़रवा, मरहट्टा, गंधान, छप्पे, दूढ़पद, अरिल्ल, सोरठा, संकर, पादाकुल, भुजंगप्रयात, प्लवंगम, वंधु, लक्ष्मीधर, निलका, तोमर, दुवैया, संजुत, मेनावली, हाकरम, झूलना, कउका, दोहा।

ग्रंथकार ने अपने आश्रयदाता का जो वर्णन दिया है उससे प्रतीत होता है कि ये जैपुर शाखा के उसी ठिकाने के स्वामी थे ।

भाषा में यत्र-तत्र राजस्थानी के शब्द आगए जो संभवत: लिपिकार ने अपनी परिचित अक्षरी के लिखते समय लिख दिया है। अन्यथा भाषा साफ सुथरी है ।

# हिन्दी का परिनिष्ठित रूप

भाषा-तत्त्व मण्डल ने ३० नवम्बर १९५७ को "हिन्दी का परिनिष्ठित रूप" विषय पर एक विचार-गोष्ठी का आयोजन किया। विचार-गोष्ठी का सभापतित्व डा० विश्वनाथप्रसाद जी ने किया और विषय-प्रवर्तन हिन्दी के लब्धप्रतिष्ठ समालोचक डा० रामविलास शर्मा ने।

आरम्भ में डा० रामविलास शर्मा ने हिन्दी के ऐतिहासिक विकास का स्पष्टीकरण करते हुए यह बतलाया कि हिन्दी के दो रूपों—पुरानी हिन्दी और आधुनिक हिन्दी में कहाँ तक साम्य है। देखा जाय तो आधुनिक हिन्दी पुरानी हिन्दी का ही विकसित रूप है, पर बहुत कुछ उससे भिन्न। पुरानी हिन्दी के भी हमको कई रूप प्राप्त होते हैं—एक रूप वह जो तुलसी की अवधी के नाम से जाना जाता है तथा जिसका रामचरितमानस के द्वारा हिन्दी जनसमाज में पर्याप्त प्रचार है और दूसरा अवधी का वह रूप जो जायसी ने पद्मावत में अपनाया। तो फिर अवधी के भी दो रूप विद्यमान हैं। पुरानी हिन्दी में—अवधी ही नहीं, ब्रजभाषा में भी प्रचुर और महत्त्वपूर्ण साहित्य विद्यमान है। ब्रजभाषा के भी अनेक रूप विभिन्न प्रदेशों और विभिन्न कालों के कवियों में प्राप्त होते हैं। इन दोनों ही भाषाओं में पर्याप्त साहित्य प्राप्त होता है। एक ही कवि पुरानी हिन्दी के इन दोनों रूपों पर समान अधिकार भी रखता है, साथ ही एक कवि जो ब्रजभाषा में कविता करता है, अवधी के प्रयोगों से बचा नहीं रहता; जैसे पद्माकर की ब्रजभाषा में अवधी के 'जाइबी' 'खाइबी' रूप प्राप्त होते हैं। यह भी विवाद का विषय है कि इन भाषाओं का केन्द्र कहाँ है? सर्वसम्मति से ब्रज का केन्द्र मथुरा माना जाता है। एक सज्जन ऐसे भी हैं जिन्होंने ब्रज को ग्वालियरी हिन्दी माना है और उन्होंने यह भी सिद्ध किया है कि सूर की भाषा ग्वालियरी ही थी।

एक ही भाषा के अनेक रूपों में साहित्य-रचना होना, हिन्दी की ही विशेषता नहीं है, वरन् संसार की अन्य विकसित भाषाओं—जैसे फ्रेंच व अंग्रेजी में भी यही

प्रवृत्ति पाई जाती है। अंग्रेजी में चौसर, शेक्सपियर और आधुनिक कवियों की रचनाओं में एक ही भाषा के भिन्न रूप मिलते हैं। यह प्रत्येक देश का ऐतिहासिक सत्य एवं तथ्य है कि वहाँ अनेक बोलियाँ बोली जाती है और उनमें से एक जनपद आगे बढ़ता है और वहीं की भाषा का रूप मान्य होकर "परिनिष्ठित रूप" बन जाता है।

राहुल जी की तो यह धारणा है कि १३ जातियाँ और १३ ही जनपदीय खण्ड यहाँ विद्यमान थे और उन्हीं के विकसित रूप आज प्रादेशिक भाषाओं के रूप में हमारे सम्मुख हैं। हिन्दी का सीधा संबंध वह 'कुरु जनपद' से जोड़ते हैं। कुछ दिन पूर्व हिन्दी-प्रदेश में बोलियों का जनपदीय आन्दोलन चला था। श्री जयकान्त मिश्र ने यह सिद्ध करने की चेष्टा की कि मैथिली हिन्दी से पृथक् है और भोजपुरी उसकी एक उपभाषा है। यह आन्दोलन पूर्व की भाषाओं : भोजपुरी और मैथिली तक ही सीमित नहीं रहा वरन् पहाड़ी कुमाउँनी तक भी पहुँच गया। राजस्थान का सारा कार्य हिन्दी में होता था, पर जब अगरचन्द नाहटा तथा जयनारायण व्यास प्रभृति नेताओं ने राजस्थानी की आवाज उठाई तो अब राजस्थानी की भी आवाज तेज सुनाई पड़ती है। देश के दो भू-भागों में सुदूर दक्षिण की तमिल और उत्तर की काश्मीरी इस बात के अपवाद हैं कि उनके प्राचीन और आधुनिक रूप में कोई विशेष अन्तर नहीं हो पाया है। इतना तो निश्चित हुआ कि साहित्य के अध्ययन के लिये हमको ब्रज और अवधी आदि प्राचीन रूपों का भी अध्ययन करना होगा, पर बोलने के लिए और भाषा के वर्तमान स्वरूप को समझने के लिए हिन्दी—आधुनिक हिन्दी के परिनिष्ठित रूप को ही मान्य समझा जावेगा।

आधुनिक हिन्दी के परिनिष्ठित रूप पर विचार करने के लिए हमको फिर से एक बार देश के पुराने इतिहास के पन्ने उलटने होंगे। भाषा का संबंध सामाजिक दशा से भी होता हैं। फारसी का ६०० वर्षों तक उत्तर भारत में विशेष प्रभाव रहा। यह राजकाज की भाषा थी। फारसी से प्रभावित उर्दू का भी एक परिनिष्ठित रूप विकसित हुआ जिसका प्रभाव कचहरी, और फौज में देख सकते हैं। फारसी का काफी प्रभाव पड़ा जिसके स्पष्ट प्रमाण हैं। एक भाषा दूसरी भाषा से शब्दों को तो पर्याप्त संख्या में लेती है पर यह शब्द अधिकांशत: संज्ञा या विशेषण ही होते हैं, *क्रिया एक भाषा से दूसरी भाषा में बहुत कम गृहीत हो पाती है।* पर फारसी की क्रिया *'अजमाना'* हिन्दी में बहु-प्रचलित है। तत्कालीन बोलचाल की भाषा के दो बड़े केन्द्र दिल्ली *और आगरा थे। आगरा और दिल्ली के आधार पर ही बोलचाल* की उर्दू विकसित हुई। लेकिन यह ग्रामीण बोलियों से बहुत दूर हटती जा रही थी। उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध से हिन्दी का आधुनिक रूप विकसित हुआ।

यह है संक्षेप में हिन्दी का ऐतिहासिक पक्ष। एक बात और ध्यान में रखनी चाहिये कि उर्दू का प्रभाव पश्चिम में था और पश्चिम के ही तीन बड़े केन्द्र मेरठ, दिल्ली और आगरे की बोली पर आज का रूप आधारित है और दूसरी ओर हिन्दी के पोषक और उसके लिखित रूप को विकसित करने वाले व्यक्ति अधिकांशत:

पूर्व के थे और आज भी हैं। कुछ समय पूर्व से ही आगरा दिल्ली में कुछ अधिक जाग्रति दिखाई पड़ रही है। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, महावीर प्रसाद द्विवेदी, प्रेमचन्द, प्रसाद, रामचन्द्र शुक्ल आदि साहित्यकारों की एक बड़ी संख्या पूर्व के केन्द्रों से ही सम्बद्ध है। इसके दो परिणाम निकले :—

(अ) संस्कृत के शब्दों का आधिक्य।

(आ) पूर्वी बोलियों के बोलचाल के मुहावरों का प्रयोग।

इसके फलस्वरूप पश्चिम में विकसित उर्दू और बोलचाल की हिन्दी से यह काफी दूर पड़ गई। हिन्दी के व्यावहारिक बोलचाल के रूप को सुनना है तो आगरा के गोकुलपुरा और फुलट्टी के व्यक्तियों द्वारा सुना जा सकता है। इस रूप में न उर्दू का बाहुल्य है और न संस्कृत के तत्सम शब्दों का आधिक्य।

इस प्रकार हिन्दी के परिनिष्ठित रूप को प्रभावित करने वाले तीन प्रधान कारण हैं :—

(१) मुगल शासन।

(२) हिन्दी का विशाल प्रदेश।

(३) उर्दू का पूर्व परिनिष्ठित रूप।

उक्त विवेचन से इतना तो स्पष्ट हो ही जाता है कि हिन्दी के बोलचाल के रूप और लिखित रूप में कोई कम अन्तर नहीं और उसके कुछ कारण भी हैं।

आज हिन्दी की अपनी निजी समस्याएँ हैं, जिनमें से प्रधान और पहली समस्या पारिभाषिक शब्दावली की है—आज यह विचारणीय है कि जो शब्द शब्दावली के रूप में गढ़े जायें वे कहाँ तक हिन्दी तथा हिन्दीतर भाषाओं में खप सकते हैं। मान लिया कि हम अपने शब्दों का स्रोत संस्कृत मानते हैं। पर आज संस्कृत के शब्दों का भी तो अपने जातीय विकार के साथ साथ रूप और अर्थ निश्चित हो चुका है[1] आज उन शब्दों को हटाया नहीं जा सकता। सुना है तेलुगु में पुराने शब्द हटाये जा रहे हैं और उनके स्थान पर डा० रघुवीर के नये शब्द लाये जा रहे हैं। कुछ लोगों का यह विश्वास है कि जो लोकप्रिय है वह सुन्दर नहीं बन सकता—इस सिद्धान्त के आधार पर हमको कुछ अप्रचलित शब्द पारिभाषिक शब्द के रूप में रखने पड़ते हैं दूसरी ओर एक ऐसा वर्ग भी है जो संस्कृत से कुछ लेना नहीं चाहता। आज हमको इसका मध्यम मार्ग ग्रहण करना ही श्रेयस्कर है।

---

१. भंडारी का अर्थ हिन्दी में भंडार का स्वामी है पर उड़िया में 'नाई' का द्योतक है। इस प्रकार के अनेक शब्द तामिलादि दक्षिण की भाषाओं में भी पाये जाते हैं जिनका अर्थ बदल गया है। हिन्दी में भी संस्कृत के शब्दों का पर्याप्त अर्थ-भेद मिलता है।

शब्दावली के बाद दूसरा प्रश्न है व्याकरण और उच्चाण के परिनिष्ठित रूप का। इंगलैंड ने यह समस्या बी० बी० सी० रेडियो द्वारा हल की और फ़्रांस ने फ्रेंच एकेडेमी द्वारा। हिन्दी में आज यह समस्या पूर्वी और पश्चिमी के रूपों द्वारा समझी जा सकती है।

सांस्कृतिक आधार पर हमारा पश्चिमी रूप ही अधिक मान्य है। इसको पश्चिम के ही लब्धप्रतिष्ठ लेखक नहीं मानते, वरन् पूर्व के भी सब लेखक स्वीकार करते हैं। फिर पश्चिम में कुछ ऐसे रूप भी विकसित हो चले हैं जिनको प्रामाणिक नहीं माना जा सकता। मैंने उच्चारण में भी सुना है, पश्चिमी हिन्दी वाले 'हकार' का तो लोप ही कर जाते हैं। ब्रज में 'श' का बहुधा 'स' हो जाता है।

शब्दावली और उच्चारण के बाद तीसरी समस्या व्याकरण की है। व्याकरण में पूर्वकालिक रूप में एकरूपता नहीं। हिन्दी-क्षेत्र में 'देख' 'देखकर' और 'देखके' तीनों रूप प्रचलित हैं। "मैं यह मानता हूँ कि द्वितीय रूप हिन्दी में अधिक प्रचलित है और तृतीय रूप उर्दू में। 'अवलोकन करके' के स्थान पर मैंने लोगों को 'अवलोकन कर', ही लिखते देखा है।" कवियों के लिए तो स्वतन्त्रता रहती है पर यह एकरूपता गद्य के क्षेत्र में अवश्य होनी चाहिये। हिज्जों (वर्त्तनी) में एकरूपता न होना सामान्य सा ही है—'लिये' और 'लिए' 'गये' और 'गए' दोनों का ही पर्याप्त प्रचार है। शुद्ध नासिक्य ध्वनियों के चिन्ह ' ँ ' अनुस्वार के चिन्ह ' ं ' में तो एकरूपता बहुत दूर तक नहीं है यह भी निश्चित करना होगा कि उर्दू के प्रचलित शब्दों का कौनसा रूप मान्य है 'जहाज़' 'ज़रूरत' 'बाग़' 'ताल्लुक़ेदार' आदि। यह कोई नई समस्या नहीं, पर दुःख है कि आज तक सुलझ नहीं सकी है।

लिपि में कुछ नवीन ध्वनियों के लिए नवीन ध्वनि चिह्न बढ़ाने होंगे। ।o। के लिए ह्रस्व 'ॲ' का विकास हो ही गया है। अँग्रेजी के प्रचलित शब्दों में उनका बहुप्रचलित रूप रखना ही ठीक रहेगा जैसे लालटेन, पर नवीन तथा कम प्रचलित शब्द यदि शुद्ध उच्चारण के समीप रखे जा सकें तो ठीक रहेगा।

डा० शर्मा के बाद स्थानीय अखिल भारतीय हिन्दी-परिषद् के संचालक श्री रामकृष्ण नावड़ा जी ने दक्षिण भारतीयों को हिन्दी सिखाने की दृष्टि से अपने विचार प्रस्तुत किये। उन्होंने कुछ उन समस्याओं पर भी प्रकाश डाला जो आज वहाँ विकट रूप में खड़ी हुई हैं। लिंग-वचन की समस्या के संबंध में आपने अपने विचार इस प्रकार प्रकट किये :—

उनके मतानुसार 'ञ' का उच्चारण आज ठीक नहीं होता। 'ङ्' और 'ञ' के मध्य कहीं होता है। 'ऋ' का उच्चारण हिन्दी वाले 'रि' के समान करते हैं, पर यही 'ऋ' उड़िया तथा तेलगु में 'रु' उचरित होती है। हिन्दी भाषाभाषी के मुख से 'ऋतु' का उच्चारण 'रितु सुना जाता है। 'स्त्री' 'स्कूल' को तो उन्होंने बड़ों-बड़ों के मुख

से 'इस्त्री' और 'इस्कूल' सुना है। 'स्पष्ट' को तो इतना अधिक 'अस्पष्ट' सुना कि कभी-कभी उन्हें भ्रम में पड़ जाना पड़ा। 'भाषा' को तो 'भासा' कहना आज हिन्दी में सर्व सुलभ है। इस प्रकार 'ष' ध्वनि का उच्चारण प्रायः लुप्त होता ही जा रहा है। 'ओ' और 'ए' के जो शुद्ध स्वर के रूप में उच्चारण विकसित हो गए हैं उसका ठीक-ठीक उच्चारण सिखाना भी दक्षिण भारत में एक समस्या है। उर्दू शब्दों के कारण जो नवीन ध्वनियाँ आई हैं उनका भी शुद्ध उच्चारण शुद्ध हिन्दी बोलने वाले नहीं कर पाते, दूसरी ओर कुछ विद्यार्थी शुद्ध उच्चारण के फेर में पड़कर 'मुझे' को 'मुज़े', 'फाड़ना' को फ़ाड़ना' और 'आज' को भी 'आज़' कहने से बाज नहीं आते।

नावड़ा जी ने यह भी स्पष्ट किया कि दक्षिण में हिन्दी का प्रचार गाँधी जी की नीति के अनुसार हुआ है। उर्दू की शिक्षा से शुद्ध उच्चारण करने में सहायता मिली है। दक्षिण में हिन्दी के शुद्ध लिंग का प्रयोग सिखाना और 'ने' का ठीक-ठीक प्रयोग सिखाना आसान नहीं है। भूतकाल में तो 'ने' के प्रयोग और भी कठिन हैं। अन्त में उन्होंने यह भी स्वीकार किया कि हिन्दी के भावी विकसित रूप में अवश्य ही परिवर्त्तन होगा।

तत्पश्चात् स्थानीय नागरी प्रचारिणी सभा के सभापति तथा कुशल एडवोकेट श्री हरप्रसाद बागची ने इस संबंध में अपने विचार व्यक्त किये। सबसे पहले उन्होंने लिंग की समस्या को उठाया और उसकी कठिनाई को मानते हुए यह स्वीकार किया कि यह आवश्यक है और यदि ठीक से समझा जाये तो कोई विशेष कठिनाई भी नहीं होगी। सभी ईकारान्त शब्द स्त्रीलिंग हैं, पाँच शब्दों को छोड़कर—दही, घी, मोती पानी, हाथी। उन्होंने इस बात का भी खेद प्रकट किया कि कुछ प्रसिद्ध हिन्दी के साहित्यकारों के मुख से 'गुस्सा आई' और 'नाक में दम आ गई' आदि लिंग के अशुद्ध प्रयोग उन्होंने सुने हैं तो फिर जब लिंग संबंधी अशुद्धियाँ हिन्दी के कर्मठ साहित्यकारों से संभव हैं तो यदि कोई अहिन्दी भाषी ठीक प्रयोग न कर सके तो क्षम्य समझा जाना चाहिए।

उन्होंने लिंग की समस्या के साथ कुछ और सुझाव दिये। उनके मतानुसार भाषा को कठिन न बना कर सरल बनाना चाहिए। संस्कृत के शब्दों को अपनाना तो है, पर जनता का ध्यान रखकर। वास्तव में जनसमाज की भाषा को ही विकसित करना चाहिये।

श्री बागची साहब के बाद मराठी, संस्कृत, फ्रेंच, अँग्रेजी आदि विभिन्न भाषाओं के ज्ञाता डा० हर्षे ने अपने विचार प्रस्तुत किए। उनके मतानुसार किसी भाषा के लिए सूक्ष्मातिसूक्ष्म भावों को प्रकट करने के हेतु एक विशाल शब्द भंडार की आवश्यकता होती है। इस ओर अभी हिन्दी की प्रगति पर्याप्त नहीं है। हमको उसके शब्द-भंडार को विभिन्न भाषाओं एवं संस्कृत से शब्द लेकर बढ़ाना होगा।

उन्होंने इस बात पर भी जोर दिया कि भाषा के शुद्ध आचरण के लिए फ्रांस की भाँति एक 'एकेडेमी' का होना भी नितान्त आवश्यक है जो लेखकों के अशुद्ध प्रयोगों को अवांछनीय ठहरा सके और प्रत्येक दस वर्ष बाद भाषा में व्याप्त अशुद्धियों का पर्यवेक्षण कर कुछ छूट प्रदान कर सके । हिन्दी के परिनिष्ठित स्वरूप को जीवित रखने के लिए यह अति आवश्यक है ।

डा० हर्ष के पश्चात् स्थानीय सेन्ट जॉन्स कालेज के हिन्दी-विभाग के अध्यक्ष डा० हरिहरनाथ टंडन ने अपने सारगर्भित भाषण में इस बात पर जोर दिया कि भाषा के शब्द-भंडार में हम अभी तक अपनी बोलियों में प्रचलित शब्दों को भी नहीं ले सके हैं । हिन्दी शब्दसागर तो इस दिशा में हमारा प्रथम प्रयास मात्र था । उन्होंने विश्वास दिलाया कि हिन्दी का शब्दभंडार बड़ी तेजी से बढ़ रहा है और शीघ्र ही वह एक सम्पन्न भंडार का रूप ले सकेगा । हमको अथक् परिश्रम से अपने लोक-जीवन में प्रचलित सभी शब्दों को ढूंढ़-ढूँढ़कर एकत्रित करना होगा ।

मैंने भाषा-तत्व के अध्ययन के आधार पर कुछ महत्वपूर्ण बातें बतायीं । कोई भी भाषा बनती नहीं, विकसित होती है । हिन्दी के किसी भी परिनिष्ठित रूप को गढ़ा या बनाया नहीं जा सकता वह तो स्वत: विकसित होगा और हो रहा है ।

लिंग समस्या पर विचार प्रस्तुत करते हुए मैंने हिन्दी में लिंग का रखना अनिवार्य माना । हिन्दी से लिंग को हटा देना उसके स्वरूप पर आघात करना है । 'हिन्दी से लिंग हटा दिया जाये' जो लोग ऐसा विश्वास करते हैं उन लोगों को इंगलेंड और फ्रान्स का उदाहरण दिया जा सकता है । आजतक किसी अँग्रेजी भाषा-भाषी ने यह प्रश्न नहीं उठाया कि वह फ्रेंच तब सीखेगा जब उसमें से लिंग हटा लिया जाय । भाषा की अपनी कुछ निजी प्रवृत्तियाँ होती हैं और उनका हनन करना भाषा की प्रकृति का विनाश करना है । मैंने परिनिष्ठित उच्चारण सीखने के लिए विशेष बल प्रदान किया और इस कार्य के लिए हिन्दी भाषा-भाषियों को ही इस योग्य माना कि वे हिन्दीतर प्रदेशों में हिन्दी सिखाएँ ।

अन्त में मंडल के सभापति तथा भाषाविद् डा० विश्वनाथप्रसाद ने अपने अध्यक्षीय भाषण में समस्या का समन्वित रूप और उसके हल प्रस्तुत किये । आपने बड़े स्पष्ट शब्दों में यह स्वीकार किया कि आज हिन्दी के परिनिष्ठित रूप की आवश्यकता है । पर साथ ही प्रत्येक भाषा की विकास की प्रवृत्ति होती है और वह काल तथा जनसमाज की अनुकूल प्रवृत्ति के अनुसार जनप्रवाह में विकसित होती है । समय का प्रवाह उसमें से पुराने रूपों को हटाता जाता है, जीर्ण पत्र गिरते हैं और परिनिष्ठित रूप स्थिर होते जाते हैं । एक समय था कि हिन्दी में उसकी प्रारम्भिक अवस्था में 'गिड़गिड़ाय', और 'गिड़गिड़ाकर' दोनों ही रूप चलते थे और मान्य भी थे । कालान्तर में 'गिड़गिड़ाय' रूप लुप्त हो गया । स्पष्ट है कि समाज ने दो तीन रूपों में से एक ही रूप को स्वीकार किया और वही परिनिष्ठित या मान्य समझा गया ।

विकास के साथ भाषा में जो व्यापकता की प्रक्रिया होती है, उससे उसमें एक और आवश्यक तत्त्व समाहित हो जाता है और वह तत्त्व है भाषा की केन्द्राभिमुखी प्रवृत्ति, जिससे व्यापकता के साथ-साथ भाषा में एकरूपता बनी रहती है। शिष्ट प्रयोग अर्थात् शिष्टों का प्रयोग ही केन्द्रीकरण का आदर्श माना जाता है। इसी आधार पर इंगलैंड में रिसीव्ड इंगलिश (Received English) या स्टैंडर्ड इंगलिश (Standard English) का मर्यादित रूप अंगीकृत किया गया है।

भाषा के विकास के साथ-साथ उसमें सामाजिक स्तर और देशगत भेदों के द्वारा नवीन रूपों की समस्या खड़ी होजाती है। इस प्रकार जब विकास के साथ-साथ भाषा का प्रसार दूर-दूर तक होजाता है तो उसके परिनिष्ठित, शिष्ट या साधु रूप को निश्चित करने के लिए मध्यम मार्ग का ही अनुसरण करना पड़ता है। इसमें समझने की सीमा या बोधगम्यता की मर्यादा (Limit of intelligibility) विशेष सहायता देती है। प्रथमतः हमको एक ही साथ कई प्रयोग स्वीकार करने पड़ते हैं और कालान्तर में उनमें से कुछ स्वतः हट जाते हैं और फिर एक ही प्रयोग स्थिर, मान्य या परिनिष्ठित समझा जाने लगता है? कहीं-कहीं स्थानीय प्रयोग भी मान्य समझे जायेंगे। प्रान्तीयता अथवा स्थानीयता भी हिन्दी पर स्वभावतः कुछ-न-कुछ अपना रंग चढ़ायेगी। समाजगत तथा पेशेगत विभिन्न रूप भाषा में चलते रहेंगे। समाज के विभिन्न क्षेत्रों में परस्परिक आदान प्रदानचलता रहेगा। भाषाई व्यवहार चलते रहेंगे—हिन्दी और हिन्दी क्षेत्र की अन्यान्य बोलियों और भाषाओं के मध्य, हिन्दीतर क्षेत्रीय भाषाओं के मध्य और हिन्दी तथा शिक्षित जनसमाज में व्यवहृत विदेशी भाषाओं के मध्य। इस प्रकार के सम्पर्कों के द्वारा भाषा का रूप विकसित होता चलेगा और सुबोधता, सुगमता, तथा भाषा की केन्द्राभिमुखी प्रवृत्ति ही उसके परिनिष्ठित रूप के विकास में प्रेरक शक्ति का काम करती रहेगी।

**गोलोक बिहारी धळ**
मंत्री
भाषा-तत्त्व मंडल आगरा।